अंक 284 वर्ष 58

भाषा

मई–जून 2019

साहित्यिक परिसंवाद विशेषांक
'साहित्य एवं साहित्येतर अनुवाद'

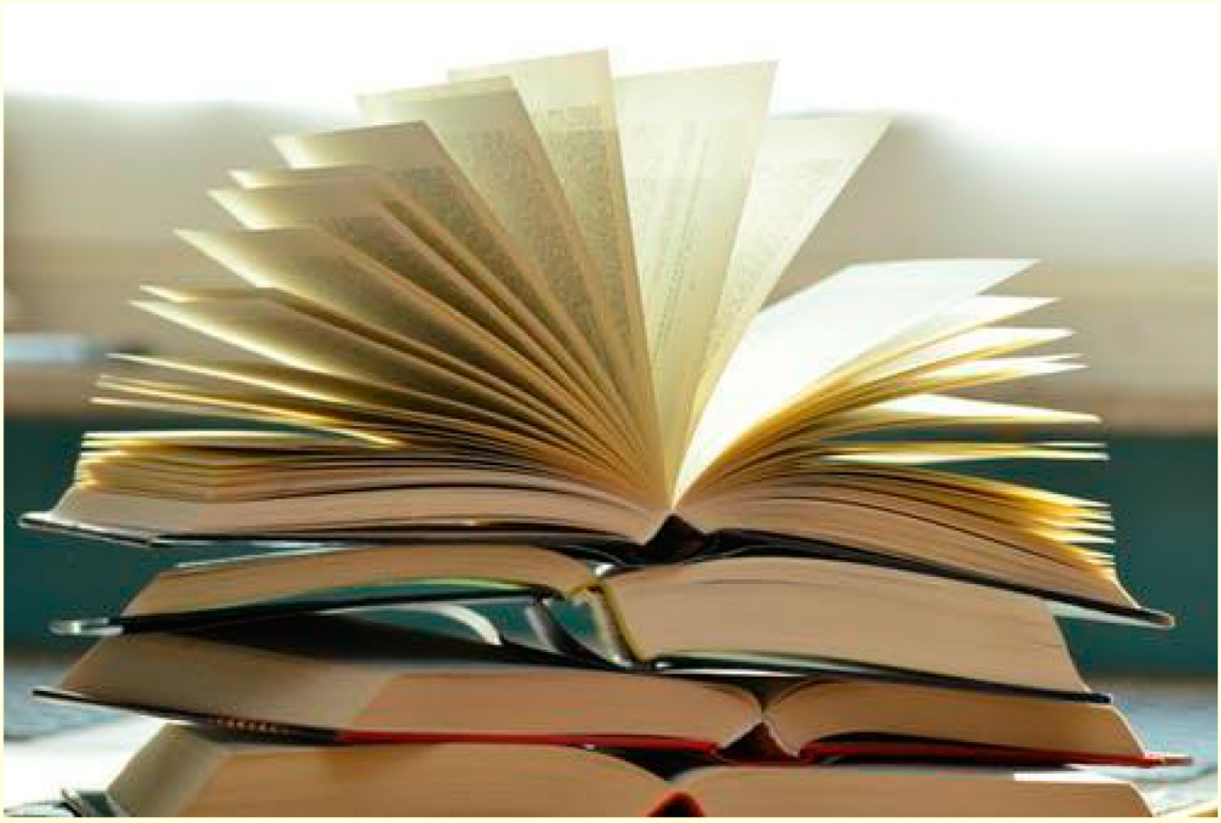

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

Skill India

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

भाषा

मई–जून 2019

(विशेषांक)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक 16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर अवनीश कुमार

परामर्श मंडल

श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
प्रो. एम. वेंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
श्रीमती अर्चना श्रीवास्तव

प्रूफ रीडर
इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **58** **अंक : 3 (284)**
मई–जून 2019

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	**(डाक खर्च सहित)**
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या
संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
संपादकीय

आलेख

1. अनुवाद : तात्पर्य निर्णय	डॉ. गार्गी गुप्त	9
2. भारतीय भाषाओं के बीच संवाद	प्रो. गंगा प्रसाद विमल	16
3. वैश्वीकरण के परिदृश्य में अनुवाद की भूमिका	प्रो. एम. वेंकटेश्वर	22
4. भारतीय साहित्य परंपरा में अनुवाद का इतिहास तथा वर्तमान स्वरूप एवं स्थिति	प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल	28
5. स्पंदन, संवेदना एवं भावना का अंत:संबंध अनुवाद के धरातल पर	डॉ. अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी	34
6. क्षेत्रीय भाषा साहित्य परंपरा और अनुवाद	प्रो. सी. अन्नपूर्णा	40
7. धार्मिक साहित्य एवं अनुवाद : वैश्विक परिदृश्य	डॉ. विदुषी शर्मा	49
8. तकनीकी साहित्य का अनुवाद : समस्याएँ एवं समाधान	शिवानी कोहली	55
9. साहित्यिक अनुवाद-परंपरा में क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों की महत्ता एवं स्थिति	डॉ. मदन सैनी	59
10. साहित्यिक अनुवाद की समस्याएँ	डॉ. अरविंद कुमार उपाध्याय	61
11. अनुवाद के महत्व एवं प्रकार	डॉ. जी. शांति	66
12. डॉ. हरिवंशराय बच्चन कृत 'ओथेलो' का हिंदी अनुवाद: एक विश्लेषण	डॉ. रमाकांत आपरे	72
13. साहित्यिक अनुवाद	डॉ. गिरीशसिंह बालाजीसिंह पटेल	75
14. साहित्यिक अनुवाद की समस्याएँ : थाई रचनाओं के संदर्भ में	डॉ. करुणा शर्मा	80
15. साहित्येतर अनुवाद	डॉ. प्रियंजन	85
16. साहित्येतर अनुवाद और अनुवाद-उपकरण	डॉ. हरीश कुमार सेठी	89
17. तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद	डॉ. राजेश कुमार	96
18. भारतीय साहित्यिक परंपरा में अनुवाद	डॉ. संध्या वात्स्यायन	99
19. अनुवाद के क्षेत्र एवं आयाम	डॉ. अर्चना झा	103
20. साहित्येतर साहित्य में अनुवाद और हिंदी...	अशोक मनोरम	107
21. वर्तमान तकनीकी और अनुवाद	डॉ. नितीन कुंभार	110
22. हिंदी और अनुवाद में रोज़गार के अवसर	प्रो. पूरनचंद टंडन	112

23. संस्कृति संवर्धन में अनुवाद की भूमिका	डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड	123
24. अनुवाद : एक परिचर्चा पूर्वोत्तर क्षेत्र की भाषाओं के संदर्भ में	प्रो. दिनेश कुमार चौबे	127
25. स्वर्गीय इ. के. दिवाकरन पोट्टी : अनुकरणीय अनुवादक व्यक्तित्व	डॉ. पी. लता	131
26. अनुवाद विधा और आधुनिक हिंदी साहित्य प्रयोजनमूलक हिंदी में अनुवाद : स्वरूप एवं संभावनाएँ	डॉ. अनुराग सिंह चौहान	134
27. साहित्यिक अनुवाद : संवेदनशीलता एवं भावना के स्तर पर	डॉ. प्रियंका कुमारी सिंह	139
28. काव्यानुवाद : प्रक्रिया, समस्याएँ और संभावनाएँ	डॉ. दिनेश चंद्र दीक्षित	145
29. अनुवाद व्यवसाय : दिशाएँ और संभावनाएँ	प्रो. दिलीप सिंह	153

संपर्क सूत्र

निदेशालय के महत्वपूर्ण प्रकाशन **परिशिष्ट - 1**

भाषा पत्रिका के महत्वपूर्ण विशेषांक **परिशिष्ट - 2**

सदस्यता का फार्म

निदेशक की कलम से

इक्कीसवीं सदी अनुवाद की प्रगति और उसके विस्तार की सदी है। अनुवाद के महत्व और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी आवश्यकता को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जा चुका है। समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी के रूप में आज अनुवाद ने अपनी एक ठोस पहचान बना ली है। आज स्थिति यह है कि भारतीय तथा अंतरराष्ट्रीय साहित्य और भावात्मक एकता की परिकल्पना के संपर्क सेतु के रूप में अनुवाद की भूमिका असंदिग्ध है। अनुवाद भारतीय साहित्य की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। ज्ञान-विज्ञान की गूढ़ समझ इस कार्य हेतु आवश्यक है।

संचार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जिस तेजी से विकास हो रहा है, नित्य नए परिवर्तन हो रहे हैं उससे सभी आश्चर्यचकित हैं। सामान्य जन-मानस को इस विकास से परिचित कराने और इसे अपनी भाषा में जानने का एक मात्र साधन अनुवाद ही है। कंप्यूटर और इंटरनेट ने समस्त विश्व को समेट कर हमारे घरों तक ला तो दिया है लेकिन अनुवाद के बिना उसकी यह पहुँच अधूरी ही है। विश्व में हो रहे विकास और नवीनतम आविष्कारों की जानकारी अनुवाद के बिना संभव नहीं है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही प्रगति ने जहाँ हमें विकास के नए आयामों से परिचित कराया वहीं दूसरी ओर यह अनुवादकों का ही प्रयास था जिसके द्वारा अन्य भाषाओं में रचित ज्ञान-विज्ञान तथा चिंतन-मनन को जानने-समझने का अवसर सुलभ हुआ है।

भाषा के इस विशेषांक के माध्यम से हमारा यह प्रयास रहा है कि अनुवाद के अधिकाधिक पहलुओं को समेटते हुए इस क्षेत्र से संबंधित, वैविध्यपूर्ण लेखकीय विचारों को स्थान दिया जाए। इस विशेषांक में 'साहित्य एवं साहित्येतर अनुवाद' विषय के अंतर्गत उल्लेखनीय एवं पठनीय आलेखों का संग्रह किया गया है। डॉ. गार्गी गुप्त के 'अनुवाद : तात्पर्य निर्णय' को विशेष आलेख के रूप में अनुवाद बोध से साभार लिया गया है। साहित्यिक एवं साहित्येतर सभी क्षेत्रों में डॉ. अरविंद कुमार उपाध्याय एवं डॉ. हरीश कुमार सेठी के आलेख तथा व्यावसायिकता एवं रोजगार के क्षेत्र में अनुवाद से संबंधित प्रो. दिलीप सिंह एवं प्रो. पूरनचंद टंडन के आलेख पाठकों को विचार सामग्री प्रदान करते हैं।

भाषा पत्रिका के 'साहित्य एवं साहित्येतर अनुवाद' विषय पर केंद्रित इस विशेषांक में भाषा-परिवार ने जो दुर्लभ सामग्री अनुवाद कर्मियों और अनुवाद सेवियों के लिए जुटाई है उसे विशेषांक के रूप में प्रस्तुत कर मैं अपने को गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ तथा इसके लिए भाषा-परिवार बधाई का पात्र है।

आपके रचनात्मक सुझावों की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

प्रोफेसर अवनीश कुमार

आज अनुवाद विशेषकर के हिंदी-भाषियों को ही करना होगा और वह केवल भारतीय भाषाओं से ही नहीं, संसार की दूसरी भाषाओं के ग्रंथों को भी लेकर करना आवश्यक होगा। यह तभी हो सकता है जब कुछ हिंदी के विद्वान दूसरी भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान और उनके साहित्य से इतना परिचय प्राप्त कर लें कि वे उनमें से अच्छे और उच्चकोटि के ग्रंथों को चुनकर निकाल सकें और उनको पढ़कर रसास्वादन केवल स्वयं न कर सकें, बल्कि इतनी योग्यता रखें कि मौलिक ग्रंथ की रचना और खोज को अपने अनुवाद में भी कुछ हद तक ला सकें। एक प्रकार से मौलिक लेख लिखना आसान है, पर किसी दूसरी भाषा से अनुवाद करना बहुत कठिन होता है। मेरा निजी अनुभव है कि मैं अंग्रेजी से हिंदी में अथवा हिंदी से अंग्रेजी में उतनी आसानी से अनुवाद नहीं कर सकता जितनी आसानी के साथ इन दोनों भाषाओं में लिख या बोल सकता हूँ। गहन विषयों का तो अनुवाद और भी कठिन होता है। अनुवादक को केवल उन दोनों भाषाओं का, जिनमें कि एक से दूसरी में अनुवाद करना है, अच्छा ज्ञान होना ही अनिवार्य नहीं, बल्कि उस विषय पर भी उसका अधिकार होना चाहिए जिस विषय से वह अनुवाद किया जाने वाला ग्रंथ संबंध रखता है। इसलिए किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि अगर वह दो भाषाओं को मामूली तौर से जानता है तो वह एक भाषा से दूसरी में अनुवाद कर सकता है।

-डॉ. राजेंद्र प्रसाद

संपादकीय

पॉल ऐंजल ने 'कंटेंपरेरी फ्रेंच पोएट्री' की प्रस्तावना में 1965 में लिखा था "जैसे-जैसे दुनिया सिकुड़ती जा रही है अनुवाद की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। ऐसा लगता है मानो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हर देश में एक नहीं बल्कि दो-दो साहित्य होंगे। एक साहित्य उसके अपने लेखकों द्वारा रचित होगा और दूसरा विश्व-भाषाओं में अनूदित साहित्य होगा।"

प्राचीन सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन की गाथाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि यदि तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान कला तथा साहित्य का संरक्षण अन्य भाषाओं के अनुवादकों द्वारा न किया गया होता तो समस्त गौरव-गाथाएँ विस्मृति के गर्भ में समा गई होती। साहित्य चाहे कहीं का भी रहा हो लेखक और अनुवादक के बीच शताब्दियों से ऐसा अटूट और अंतरंग संबंध रहा है जिससे हर युग और हर भाषा का पाठक लाभान्वित हुआ है। सभ्यताओं और संस्कृतियों के विकास तथा परस्पर आदान-प्रदान में अनुवाद के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। विश्व के श्रेष्ठ विचारकों, चिंतकों, दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों की उपलब्धि, ज्ञान तथा स्थापनाओं से संपूर्ण विश्व को परिचित कराने तथा उससे लाभान्वित कराने का एक मात्र माध्यम अनुवाद ही है। अनुवाद वास्तव में संवेदनाओं और स्पंदनों को जोड़ने वाला सूत्र है।

आधुनिक युग संचार क्रांति तथा सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। भूमंडलीकरण की अवधारणा, मीडिया आंदोलन तथा संचार क्रांति ने विश्व ग्राम की परिकल्पना को साकार कर दिया है। वास्तविकता यह है कि अनुवाद का संबंध दो भाषाओं से नहीं है वरन् दो संस्कृतियों से है। साहित्य तथा साहित्येतर क्षेत्रों में हो रहे अनुवाद कार्य ने एक नई अनुवाद क्रांति को जन्म दिया है।

भारत में अनुवाद की यह बहुआयामी परंपरा प्राचीनकाल से अनवरत चली आ रही है। वैदिक, औपनिषदिक तथा पौराणिक साहित्य से होती हुई अनुवाद की यह परंपरा मध्यकाल और फिर आधुनिककाल तक आते-आते साहित्यिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और सामाजिक विकास का अपरिहार्य अंग बन चुकी है।

अनुवाद के बहुआयामी विस्तार को भाषा पत्रिका के इस विशेषांक के माध्यम से आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। भाषा पत्रिका के तत्वावधान में इस वर्ष आयोजित किए जाने वाले परिसंवाद का विषय 'साहित्य एवं साहित्येतर अनुवाद' था जिसकी पृष्ठभूमि पर भाषा का यह विशेषांक तैयार किया गया है। भाषा के माध्यम से मैं सभी लेखकों का आभार व्यक्त करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में भी आपका सहयोग मिलता रहेगा। साथ ही, मैं यह सूचित करना चाहता हूँ कि भाषा की सदस्यता का कार्य भी निदेशालय से प्रारंभ हो गया है। सदस्यता हेतु आवेदन प्रपत्र भाषा के प्रत्येक अंक के साथ संलग्न किया जा रहा है तथा ऑनलाइन www.chdpublication.mhrd.gov.in पर भी उपलब्ध है।

धन्यवाद।

(डॉ. राकेश कुमार)

स्वाध्याय से अधिक प्रयाससाध्य होने पर भी अनुवाद अंततः अपूर्णता की अनुभूति ही देता है। कारण स्पष्ट है।

भाषा विचारों और मनोभावों का परिधन है और इस दृष्टि से एक विचारक या कवि की उपलब्धियाँ जिस भाषा में व्यक्त हुई हैं उससे उन्हें दूसरी वेशभूषा में लाना, असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य रहता है।

अपरिचित परिधन कभी-कभी उनके व्यक्तित्व की विशेषता को आच्छादित कर उसे अपरिचित या कौतुकमात्र बना देता है।

इसके अतिरिक्त युग विशेष कृतिसृष्टा की अनुभूतियों की पुनरावृत्ति सहज नहीं होती। कवि जब अपनी अनुभूतियों की भी यथातथ्य आवृत्ति करने में असमर्थ रहता है, तब युगांतर के किसी कवि की अनुभूतियों की आवृत्ति के संबंध में कुछ कहना व्यर्थ है। परंतु अनुवादक के लिए ऐसी तादात्म्यमूलक आवृत्ति आवश्यक ही रहेगी, जिसमें वह देशकाल के व्यवधान पार करके किसी कवि की अनुभूति को नवीन वाणी दे सके।

किसी कवि की कृति के अध्ययन के समय उसकी अनुभूतियों के साथ पाठक का जो तादात्म्य होता है वह कभी पूर्ण, कभी अंशतः पूर्ण और कभी अपूर्ण हो सकता है। इस तादात्म्य की मात्रा के न्यूनाधिक्य पर केवल उसके अपने आनंद की मात्रा निर्भर है; किंतु जब वह किसी की अनुभूति को मर्मतः दूसरों तक संप्रेषणीय बनाने का कर्तव्य अंगीकार कर लेता है, तब उसका तादात्म्य या उसका अभाव दो पक्षों के प्रति उत्तरदायी है।

-महादेवी वर्मा

अनुवाद : तात्पर्य निर्णय

डॉ. गार्गी गुप्त

'अनुवाद' शब्द का अर्थ आज वह नहीं है जो प्राचीन संस्कृत साहित्य में था; एक लंबी यात्रा करता हुआ वह अपने आज के अर्थ तक पहुँचा है।

भारतीय इतिहास के प्रारंभिक काल में संस्कृत विद्वान अपने मौलिक चिंतन एवं लेखन के लिए विश्वविख्यात थे। वेद-पुराण, उपनिषद, काव्य-महाकाव्य, नाटक-नाटिकाएँ-भाष्य, शास्त्र आदि अनेकानेक ग्रंथों की रचना आर्य ऋषियों एवं विद्वानों ने की थी। विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत अग्रणी था और गणित, ज्योतिष, संगीत, सर्पविद्या, आयुर्वेद आदि अनेक विज्ञान यहाँ उदित, पुष्पित एवं पल्लवित हुए थे। भारतीय वैज्ञानिकों को देश-देशांतरों के शासकों एवं विद्वानों द्वारा ससम्मान आमंत्रित किया जाता था। उन दिनों संवाद और चिंतन दोनों का माध्यम संस्कृत था। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि विदेशों के साथ व्यापारिक तथा कूटनीतिक संबंधों के बावजूद, किसी भी विदेशी भाषा के शिक्षण के उल्लेख प्राचीन भारत के साहित्य अथवा अभिलेखों में नहीं मिलते। संभवत: प्राचीन काल में एथेंस की शिक्षा प्रणाली की भाँति यहाँ भी विदेशी भाषा का पठन-पाठन अमान्य रहा होगा। प्राचीन ग्रीक जीवन में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था। सभी ग्रीक लोग सुशिक्षित तथा विद्या संपन्न होते थे। कोई ग्रीक ऐसा नहीं था जो पढ़ना-लिखना न जानता हो और जिसे अंकगणित के प्रारंभिक तत्वों का अच्छा ज्ञान न हो। परंतु ग्रीक लोग किसी विदेशी भाषा को पढ़ना जरूरी नहीं समझते थे। हो सकता है इसी प्रकार भारतीय आचार्य एवं शिक्षा शास्त्रियों ने भी अपने यहाँ किसी विदेशी भाषा का शिक्षण आवश्यक न समझा हो।

धीरे-धीरे संस्कृत के दो रूप बन गए- पंडित समुदाय की भाषा और सामान्य जन की भाषा। शिक्षित तथा कुलीन वर्ग शुद्ध संस्कृत का व्यवहार करता था और सामान्य तथा सेवक वर्ग प्राकृत का। निश्चय ही दूसरा वर्ग संस्कृत समझता था परंतु भाषा के दो अलग-अलग रूप हो चुके थे। स्पष्ट ही, सामान्य जन को नितांत शुद्ध तथा विचार-बहुल अलंकृत संस्कृत को समझने में कठिनाई होती होगी और बौद्धिक वर्ग जनभाषा को अवमानना की दृष्टि से देखता होगा। जो भी हो, यह भाषा-भेद ही वस्तुत: अनुवाद का बुनियादी तत्व है। इस भेद के कारण प्रारंभ में परस्पर वार्तालाप हेतु अनुवाद का सहारा लेना पड़ा होगा।

समय के साथ-साथ प्राकृत, अपभ्रंश, पालि आदि कई भाषाओं का उद्भव, विकास और ह्रास हुआ। बौद्ध धर्म के अभ्युदय काल में पालि-शासन, धर्म और जनता की भाषा बनी तथा इसमें बौद्ध साहित्य की विपुल रचना हुई। तत्कालीन शासन की स्वीकृति मिल जाने के बाद बौद्ध धर्म अपनी जन्मभूमि की सीमाओं को लांघता हुआ देश-देशांतरों तक पहुँचा और साथ ही अनुवादों की एक लंबी और सुनियोजित प्रक्रिया आरंभ हो गई।

उन्नत ज्ञान-विज्ञान, समृद्धि और शांति के प्रतीक रूप में भारत की ख्याति उन दिनों भी दूर-दूर के देशों

तक पहुँची हुई थी। अनेक ज्ञान-पिपासु लंबी-लंबी, विकट एवं कष्टसाध्य यात्राएँ करते हुए अपने स्वप्नों के इस देश में आकर यहाँ की पवित्र भूमि को प्रणाम करते। कई-कई वर्ष यहाँ रहकर संस्कृत एवं पालि भाषाओं तथा उनके साहित्य का अध्ययन करते। स्वदेश लौटते समय वे ऊँट और खच्चर भर-भरकर भारतीय ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ बनाकर अपने साथ ले जाते और अपने देशवासियों के हितार्थ इस विपुल ज्ञान साहित्य का स्वदेशी भाषाओं में अनुवाद करते। अरब तथा चीन देश इस कार्य में अग्रणी थे और इन दोनों के शासक प्राय: अपने विद्वानों को भारत भेजते तथा भारतीय पंडितों को अपने यहाँ अनुवाद कार्य में सहायता करने के लिए आमंत्रित करते। उनके निर्देशन में अनुवाद कार्य की सुनियोजित योजनाएँ चलती।

अनूदित ग्रंथों की इस शृंखला में एक बात द्रष्टव्य है। अनुवादों का यह सारा उपक्रम संस्कृत से अन्य भाषाओं में तो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है परंतु स्वयं संस्कृत में अन्य भाषाओं से किए गए अनुवादों के उल्लेख नहीं मिलते। यह एक खोज का विषय है परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मुख्य कारण संस्कृत पंडितों का बढ़ा-चढ़ा श्रेष्ठता का भाव ही रहा होगा। संभवत: संस्कृत साहित्य के अत्यंत समृद्ध होने के कारण अन्य भाषाओं के साहित्य को वे अपनी भाषा में लाने योग्य नहीं समझते होंगे। शायद यही कारण है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में अनुवाद शब्द का प्रयोग तो मिलता है परंतु अनूदित साहित्य अथवा उसके सिद्धांत की कोई चर्चा नहीं मिलती।

वैदिक संस्कृत के प्राचीनतम रूप में 'अनुवाद' के 'अनु' और 'वद्' शब्दों का अलग-अलग प्रयोग मिलता है ऋग्वेद (2.13.3) में आया है-- 'अन्वेको वदति यददाति।'

यहाँ 'अनु और वदति' का अर्थ 'दुहराता है' या 'बाद में कहता है।' ऋग्वेद में एक अन्य स्थान पर कहा गया है-- रोचनाधि (8.1.18)।

इस पर सायण कहते हैं--

'अधि' पंचम्यार्थानुवादी।'

अर्थात्: 'अधि:' पंचमी के अर्थ को ही दुहराता है। यहाँ सायण ने भी इसका प्रयोग दुहराने के लिए ही किया है। ब्राह्मण ग्रथों में 'दुबारा कहना' या 'पुन: कथन' के अर्थ में अनुवाद शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है।

उपनिषदों में भी अनु और वद् शब्दों का प्रयोग कई व्याकरणिक रूपों में मिलता है। वृहदारण्यक उपनिषद् (5.2.3) में 'अनुवदति' का प्रयोग दुहराने के अर्थ में हुआ है जैसे--

'तद् एतद् एवैषा देची वाग् अनुवदति
स्तनयित्नु: द द द इति।'

यास्क के निरुक्त में उल्लेख है -- कालानुवादं परीत्य (12-13)

यहाँ 'अनुवाद' का अर्थ कहना या ज्ञात को कहना है।

निरुक्त में अन्यत्र (1.16) इसका प्रयोग 'दुहराने' के अर्थ में ही हुआ है, जैसे--

यथा एतद् ब्राह्मणेन रूपसंपन्ना। विधीयन्त इत्युदितानुवाद: स: भवति। पाणिनी ने अष्टाध्यायी में 'अनुवाद' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है--

'अनुवादे चरणाम् (2.4.3)

The word 'AUNVAD' means repetition by way of explanation illustration of corroboration, that is to say when a speaker demonstrates for some special purpose, a preposition which had already been demonstrated before, that is called 'ANUVAD'

इसी प्रकार के 'अनुर्त्यत्समया' (2.1.15) के अनुसार 'अनु' शब्द का प्रयोग near to, along side of अर्थात् समीपवाची अर्थ में हुआ है, उदाहरणार्थ --

अनुगंगम् वाराणसी-	Along the Ganges
अनुरथं पादातम्-	The infantry after the chariots
अनुरूपम्-	In a corresponding manner
अनुज्येष्ठम् प्रतिशन्तु- भवन्त:	Let your honors enter in the order of seniority

इस प्रकार अनुवाद के प्रसंग में 'अनु' का अर्थ हुआ किसी कथन से मिलता हुआ या समरूपी कथन,

पूर्वकथन, के अनुसार अथवा पश्चाद्वचन। उपर्युक्त उदाहरणों से इतना स्पष्ट है कि अनुवाद करने से पहले एक कथन का होना अनिवार्य है और इसके बाद उससे मिलते-जुलते, उस पर आधृत अथवा उसके स्पष्टीकरण के लिए व्याख्यात्मक वचन को अनुवाद कहा गया। चूँकि अभी तक वाद और अनुवाद की (कथन और अनुकथन) इस प्रक्रिया में किसी अन्य भाषा अथवा विजातीय भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है, इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि यह अनुवाद अथवा पश्चाद्वचन संस्कृत से संस्कृत में ही पुनरुक्ति, व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण के अर्थ में प्रयुक्त होता था। भाषा के अंतर का आधुनिक अर्थ अभी इसमें नहीं आया है।

इसी प्रकार न्याय दर्शन पर लिखे वात्स्यायन भाष्य के शब्द विशेष की व्याख्या के संदर्भ में परीक्षाप्रकरणम् में कहा गया है कि निरर्थक अभ्यास अथवा आवृत्ति पुनरुक्त होता है परंतु सार्थक अभ्यास अनुवाद कहलाता है ब्राह्मण वाक्यों में तीन विभागों (विधि, अर्थवाद तथा अनुवाद वचन) में एक अनुवाद भी है। विधि का तथा विहित का अनुवचन अनुवाद कहलाता है। इसमें प्रथम शब्दानुवाद तथा द्वितीय अर्थानुवाद है। जिस प्रकार पुनरुक्त दो प्रकार का (सार्थक तथा निरर्थक) होता है, उसी प्रकार अनुवाद भी दो प्रकार का (शब्दानुवाद तथा अर्थानुवाद) होता है। निरर्थक अभ्यास होने से पुनरुक्त दोष है और अनुवाद सार्थक अभ्यास होने से समीचीन है। उदाहरण के लिए इस देश का ग्राम-ग्राम रमणीय है, डाल-डाल पर फूल खिले हैं, त्रिगर्त देश से परे-परे वर्षा हुई जैसे वाक्यों में ग्राम-ग्राम, डाल-डाल, परे-परे में पुनरुक्ति है परंतु सार्थक होने से ऐसी पुनरुक्ति अनुवाद के अंतर्गत आती है।[1]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'अनुवाद' शब्द का अर्थ सार्थक आवृत्ति अथवा पश्चात् कथन या समरूप कथन, आधुनिक अर्थ से दूर दिखाई पड़ते हुए भी वस्तुतः इतनी दूर नहीं है क्योंकि अनुवाद में आज भी एक पूर्व-कथन, अथवा पाठ का विद्यमान होना तो आवश्यक है ही। इन दिनों वेद-पुराण, ब्राह्मण, उपनिषद् जैसे ग्रंथ तथा कालिदास-भवभूति जैसी अद्वितीय प्रतिभाएँ किसी भी विदेशी भाषा में न थी और न ही हमारे यहाँ विदेशी भाषाओं के पठन-पाठन की कोई व्यवस्था थी, इसलिए, 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग अन्य भाषाओं के प्रसंग में व्यवहृत नहीं होता था। परंतु जब से हमारे यहाँ विदेशों से संपर्क बढ़ा और विदेशी भाषाओं का प्रयोग आरंभ हुआ, अनुवाद शब्द के अर्थ का विकास होने लगा।

मुसलमानों के भारत में सत्तारूढ़ होने के पूर्व अनुवादों का यह सिलसिला अधिकांशतः एकांगी रहा। संभव है इसी कारण संस्कृत के रीति-ग्रंथों में जहाँ साहित्य की सभी विधाओं के बारे में अनके लक्षण ग्रंथों की रचना हुई, वहाँ अनुवाद के संबंध में किसी भी ग्रंथकार ने किस रीति-नीति का निर्देश नहीं किया। प्राचीन संस्कृत साहित्य में अनुवाद शब्द का उल्लेख तो यत्र-तत्र मिलता है परंतु अनुवाद विधा अथवा अनूदित साहित्य के मूल्याकंन के संबंध में किसी भी शास्त्रीय रचना का प्रमाण नहीं मिलता। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है संस्कृत में अनूदित ग्रंथ या तो थे ही नहीं और यदि थे तो बहुत कम। हाँ, भाव-साम्य के सिद्धांत के मानदंडों को लेकर भेद-उपभेदों का शास्त्रीय निरूपण अवश्य मिलता है। उदाहरण के लिए, आनंदवर्धनाचार्य ने अर्थापहरण अर्थात् दूसरे के भावों पर आधृत रचनाओं के तीन भेद माने हैं-- (1) प्रतिबिंबित, (2) आलेख्यवत, (3) तुल्यदेहिवत। आचार्य राजशेखर ने इनमें परपुर प्रवेश नामक एक भेद और जोड़ दिया है।[2]

इस अर्थापहरण अथवा परपुर प्रवेश का भाव आधुनिक अनुवाद के अर्थ से काफी निकट है। निश्चयपूर्वक तो कुछ कहना कठिन है परंतु ऐसा अवश्य सोचा जा सकता है कि दूसरे की रचना के भावों (अर्थ) को अपनी भाषा में लाना हमारे विद्वान अपहरण या परपुर प्रवेश जैसा अवांछित कार्य मानते थे। (आज के अनेक अनुवाद शास्त्री इसे परकाया-प्रवेश मानते हैं।)

प्राचीन काल में एथेंस और भारत दोनों में शिक्षा की परंपरा मौखिक थी। गुरु छंद अथवा श्लोक बोलते थे और उच्चारण तथा संगीत की शुद्धता की दृष्टि से उसे शिष्य से बारंबार दोहरवाते थे। गुरु द्वारा कहे गए पाठ की शिष्य बारंबार पुनरुक्ति करते थे। आरंभ में इसे ही अनुवाद, अनुवचन अथवा अनुवाक् कहते थे। कालांतर में जैसे संस्कृत का गहन-गंभीर ज्ञान रखने वालों की

संख्या घटने लगी और संस्कृत ग्रंथों की टीकाएँ भारतीय भाषाओं में लिखी जाने लगी, इन टीकाओं को भाषा टीकाओं का नाम दिया जाने लगा। धीरे-धीरे टीका अथवा अन्वय के स्थान पर अनुवाद शब्द का प्रयोग होने लगा और भाषानुवाद शब्द का प्रचलन हुआ जैसे 'न्यायदर्शनम्' का हिंदी भाषानुवाद 'संपन्नम्'। हो सकता है कि समय के साथ 'भाषा' शब्द का लोप होकर भिन्न भाषाओं में लिखी गई टीकाओं, व्याख्याओं अथवा अन्वय के लिए मात्र अनुवाद शब्द रह गया है। हिंदी में सबसे पहले प्रयोग भारतेंदु ने किया है नाटक के उपक्रम में भारतेंदु लिखते हैं, 'मुद्राराक्षस का जब मैंने अनुवाद किया।'

या

पै सब विद्या की कहूँ होई जपै अनुवाद।

या

आल्हा विरहहु को भयौ अंग्रेजी अनुवाद।

परंतु भारतेंदु से पहले बंगाल में इस शब्द का प्रचलन हो चुका था और संभव है हिंदी में भी यह शब्द बंगला प्रभाव के कारण ही आया हो।

जैसा मैंने पहले कहा; एथेंस के शिक्षाशास्त्री किसी विदेशी भाषा को अपने यहाँ पढ़ाना जरूरी नहीं समझते थे। भारत भी एथेंस के समान विधा का बहुत बड़ा केंद्र था और यहाँ दूर-दूर से विद्यार्थी भारतीय गुरुओं की चरण सेवा करते हुए विद्यार्जन करते थे। परंतु ये सभी संस्कृत एवं पालि साहित्य का अध्ययन करते थे। किसी विदेशी भाषा के पठन-पाठन का इस विश्वविद्यालय में कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिला है।

एथेंस के बाद सिकंदरिया साहित्य, कला और विज्ञान का एक महान केंद्र बना और एक ग्रीक शासक टाल्मी साटर तथा उसके उत्तराधिकारियों के राज्यकाल में अनेक उन्नत देशों के विद्वान सिकंदरिया में रहने लगे। सिकंदरिया के विद्वान केवल ग्रीक साहित्य से ही संतुष्ट न रहे बल्कि उन्होंने प्राचीन मिस्र और भारतीय साहित्य का भी ग्रीक भाषा में अनुवाद करने का विशेष प्रयत्न किया। उस समय छापेखाने नहीं थे फिर भी सिकंदरिया के पुस्तकालय में विविध भाषाओं के ग्रंथ तथा उनके अनुवाद उपलब्ध थे। वहाँ पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ रखने की एक सुनिश्चित योजना थी। एक कमरे में सैकड़ों लेखक एक साथ बैठाए जाते थे और उन्हें बोलकर पूरी-पूरी पुस्तकें लिखवाई जाती थी। इस तरह सैकड़ों पुस्तकें अल्प समय में तैयार कर विद्वानों को सुलभ की जाती थी। एथेंस में केवल विद्यार्थी ही नहीं बड़े-बड़े दार्शनिक, गणितज्ञ, ज्योतिषी, कवि, वैज्ञानिक और चिकित्सक सुदूरवर्ती प्राच्य तथा पाश्चात्य देशों से आया करते थे। सम्राट उन्हें बड़ी प्रतिष्ठा और आदर के साथ रखते थे और उनका संपूर्ण खर्च राज्य की तरफ से किया जाता था।

प्राचीन विश्वविद्यालयों में भारत के तक्षशिला विश्वविद्यालय का नाम लोक प्रसद्धि है। कहा जाता है कि यहाँ अनेक संसार प्रसिद्ध आचार्य शिक्षा देने का कार्य करते थे, परंतु यह कहना कठिन है कि ये आचार्य भारत के ही दूरस्थ प्रदेशों के वासी थे अथवा भारत के बाहर के देशों से भी आकर यहाँ अध्यापन करते थे। जो भी हो प्राचीन काल में हमारे यहाँ विदेशों से आए हुए अतिथि प्राध्यापकों, विदेशी भाषाओं के शिक्षण तथा संस्कृत से इतर भाषाओं की (प्राकृत तथा अपभ्रंश तो संस्कृत के ही परिवर्तित रूप हैं।) पुस्तकों के संस्कृत अनुवादों के किसी योजनाबद्ध कार्यक्रम का कोई उल्लेख नहीं मिलता। भारत ने विदेशी भाषाओं के साहित्य को बहुत कुछ दिया परंतु स्वयं भारत की तत्कालीन राष्ट्रीय भाषा संस्कृत ने दूसरी भाषाओं से कितना लिया और किन ग्रंथों का अनुवाद किया, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना कठिन है।

'अनुवाद' शब्द की व्युपत्ति जानने और संस्कृत में अनूदित कृतियों के अभाव के कारणों से इसका संबंध जोड़ने के लिए इस संक्षिप्त पृष्ठभूमि का देना आवश्यक था। अनुवाद शास्त्र की रचना के लिए अनिवार्य था कि पहले पर्याप्त मात्रा में अनूदित कृतियों का अस्तित्व होता। संस्कृत कवियों तथा वैज्ञानिकों ने चूँकि मौलिक लेखन एवं चिंतन पर इतना बल दिया इसलिए काफी समय तक अनुवाद को केवल वाद का (सार्थक) पुनर्वाद माना जाता रहा। दूसरों के भाव या अर्थ का अनुसरण अथवा अनुकरण अपनी असमर्थता या चौर्य कर्म माना जाता था। इसीलिए शायद इसे परपुर प्रवेश की अनधिकार चेष्टा कहा गया था। मध्य-काल तक आते-आते जब भारतीय भाषाओं का पर्याप्त विकास हो

गया तो अनुवादों का एक नया रूप विकसित हुआ। मध्यकालीन साहित्यकार पहले कवि थे, बाद में अनुवादक अर्थात् ये दूसरे के भावों का अपहरण करने वाले न थे बल्कि मेधावी, बहुपठित, भावप्रवण और जनभाषा के प्रेमी तथा पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य से सुपरिचित महाकवि थे। यह युगानुरूप बदलती हुई सामाजिक व ऐतिहासिक स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में पुरातन साहित्य को आधुनिक बनाकर जन सुलभ बनाना चाहते थे, पुरानी कई मदिराओं से (नए भाषा-पात्रों में ढालकर) नई मदिरा बनाने का प्रयास कर रहे थे। उनका आधार कोई एक विशेष रचना न थी, बल्कि पूर्वलिखित संपूर्ण वाङ्मय उनके सामने हस्तबद्ध खड़ा था और उन्होंने उसमें से पुष्प-पुष्प का मधुसंचय करने वाले मधुप के समान अपनी आवश्यकतानुसार प्रसंगों का चयन कर अपनी भाषा में उन्हें इस प्रकार संजोया कि उससे एक नितांत नवीन और मौलिक रचना की उत्पत्ति हो गई। यह अनुवाद सहज और अधिकांशत: तल्लीनता की मन:स्थिति में होते थे। इनका एक निश्चित प्रयोजन, निमित्त अथवा उद्देश्य होता था और इनमें अनेक रचनाओं से भाव ग्रहण करने के बाद एक ऐसी नवीन रचना तैयार करने की प्रवृत्ति थी जिसमें एक स्वकीय (मौलिक) रचना का संपूर्ण सौंदर्य एवं रस होता था। कई-कई संस्कृत ग्रंथों के अंशों पर आधृत यह अनुवाद कहीं मूलनिष्ठ होते, कहीं स्वतंत्र, कहीं छाया मात्र और कहीं अनेकानेक स्थानों से भावों को मिलाकर एक छंद में प्रस्तुत कर दिया जाता। तुलसी, सूर, बिहारी, केशव आदि इसी प्रकार के अनेक सारग्राही कवि-अनुवादक थे। उस समय भी वाचन की मौखिक परंपरा चल रही थी और सृजनात्मक क्षणों में किसी भी बहुश्रुत कवि के मानस-कक्ष में पूर्ववर्ती कवियों की उक्तियों एवं अभिव्यक्तियों का अनायास प्रवेश कर जाना स्वाभाविक था।

महाकवि तुलसीदास के बारे में डॉ. विद्या मिश्र ने लिखा है:

"आपने विविध राम-काव्यों से ही नहीं अपितु अन्यान्य काव्य ग्रंथों की सूक्तियों एवं मनोरम वाक्यावलियों को अपने मानस में रत्न-सम-प्रभा प्रदान की है- कहीं अविकलांग अनुवाद के रूप में, कहीं भावानुवाद के रूप में, कहीं कथा-संक्षिप्ति के रूप में और कहीं कथा-विस्तार के रूप में।[3]" रामनरेश त्रिपाठी उनके संबंध में कहते है:

खोजने से संस्कृत ग्रंथों में 'रामचरितमानस' के बहुत से दोहों, सोरठों, छंदों और चौपाइयों के मूल मिल जाएँगे। इसके सिवा संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रंथों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर उन्होंने उनका रूपांतर करके 'मानस' में भर दिया है। कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं और उसके भी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीतिग्रंथ के भाव हैं। ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है। मानो संस्कृत के दो-ढाई सौ ग्रंथों के लाखों श्लोकों पर उनका एक सम्राट की तरह अधिकार था और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं बुला लेते थे।

तुलसी ने मुस्लिम संस्कृति से भारतीय संस्कृति की रक्षार्थ संस्कृत साहित्य से मनकों को चुनकर मानस रूपी सुमरनी तत्कालीन समाज को दी, परंतु केशव का उद्देश्य इससे भिन्न था। उस समय तक काव्य का जितना शास्त्रीय अध्ययन हुआ था, नए विद्यार्थियों के लिए अर्थात् संस्कृत काव्यशास्त्र का अल्प ज्ञान रखने वाले शिक्षार्थियों के लिए दुर्बोध और जटिल था। मुगलों के राजसत्ता में आ जाने से शिक्षा नीति बदल गई थी। आजीविका के क्षेत्र में अरबी-फारसी का प्रभाव बढ़ रहा था और विद्यार्थियों का संस्कृत ज्ञान पहले की तरह गंभीर और व्यापक न रह गया था। आचार्य वर्ग सदैव यही प्रयत्न करता है कि वह गूढ़ एवं दुर्बोध तथ्यों एवं संकल्पनाओं को साधारण भाषा में इस तरह लिखे कि विद्यार्थी उसे सहज ही आत्मसात कर सकें। वह अपने पूर्ववर्ती अधिकारी विद्वानों के उद्धरण लेकर अपनी भाषा में प्रस्तुत करता है, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि उस प्रकार का साहित्य अपनी भाषा में उपलब्ध नहीं होता है। जिस प्रकार आज हम लोग अनुवाद विषय का सैद्धांतिक अध्ययन करने के लिए पाश्चात्य, विशेष रूप से अंग्रेजी ग्रंथों का आधार लेते हैं और अपने तर्कों एवं मतों की पुष्टि के लिए उनके उद्धरणों का प्रयोग मूल अथवा अनूदित रूप में करते हैं, वैसे ही केशव ने भी संस्कृत ग्रंथों के आधार पर 'कविप्रिया' व 'रामचंद्रिका' जैसे लक्षण ग्रंथों की रचना की।

केशव ने पूर्ववर्ती ललित काव्य और लक्षण ग्रंथों को मिलाकर एक अनुपम प्रयोग किया है। रामचंद्रिका में

उन्होंने रामकथा और छंदों तथा अलंकारों के प्रयोगों का बड़ा सुदर सामंजस्य किया। राम कथा का वर्णन केशव का मुख्य लक्ष्य नहीं है, परंतु छंद तथा अलंकार शास्त्र को अधिक रोचक बनाने के लिए उन्होंने छंदों तथा अलंकारों के उदाहरण राम कथा को माध्यम बनाकर दिए हैं। कथा एवं सिद्धांत इन दोनों का सतत निर्वाह वास्तव में बहुत कठिन कार्य था। केशव की अनुवाद कला, यहाँ हमारा मुख्य विषय नहीं है परंतु दो-एक उदाहरण देकर केवल यही बताने का प्रयत्न किया गया है कि केशव ने भी तुलसी के ही समान, (यद्यपि विभिन्न उद्देश्य से) विभिन्न संस्कृत ग्रंथों से भावों तथा उक्तियों का अनुवाद कर अपने लक्षण ग्रंथों में संजोया है। कुछ उदाहरण-

1. बाल्मीकि रामायण- जगाम सीतानिलयं महायशः।
   रामचंद्रिका - तब गए जनक तनया निकेत।
2. भरत - मातस्तातः क्व यतः सुरपति भुवनं, हा कुतः?
   पुत्रशोकात्, कोऽसौ पुत्रञ्चतुर्णा? त्वमेवरजतया यस्य, जातः किमस्य?
   प्राप्तोऽसौ काननान्तं, किमिति? नृपगिरा, किं तथाऽसौ बभाषे।
   मद्वाग्वद्धः फलं ते किमिह? तब धराधीशता। हा हतोऽस्मि।।
   (हनुमन्नाटक)
   भरत-मातु कहाँ नृप? तात गए सुरलोकहिं, क्यों? सुत शोक लये।
   सु कौनसु? राम, कहाँ है अबै? वन लक्ष्मन सीय समेत गए।।
   वन काज कहा कहि? केवल मो सुख, तोकों कहा सुख यामे भये?
   तुमको प्रभुता, धिक तोकों कहा अपराध सिगरेई हये।। (रा.चं.)[4]

अनुवाद शब्द में अपहरण का भाव

संस्कृत के प्राचीन शास्त्रों में दूसरे के भावों को आधार बनाकर साहित्य रचना का उल्लेख हुआ है, परंतु जैसा कि मैंने पहले कहा, संस्कृत पंडितों ने इसे सम्मानजनक नहीं समझा। मूल पर आधृत इस प्रकार की अपहृत रचनाओं का सर्वाधिक विकास अंग्रेजी राज्यकाल में हुआ। भारत के जिस ज्ञान-विज्ञान की तूती किसी समय विश्वभर में बोलती थी, वह अब अंग्रेजी साहित्याभिमुख होने लगा था। हमारे देश में अंग्रेजी सत्ता के साथ उसका साहित्य भी आया और अनेकानेक लेखकों के स्वर में स्वर मिलाकर भारतेंदु जैसे लेखक भी कहने लगे-

जहाँ जोन जो गुन लहयो जहाँ सो तोन।
ताही सों अंग्रेज अब सब विद्या के मौन।

भारतीय विद्यालयों में अंग्रेजी के पठन-पाठन के साथ ही अंग्रेजी साहित्य को हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में लाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। अंग्रेजी एक विजातीय भाषा थी और उसका साहित्य सामान्य विद्यार्थी की पहुँच और समझ दोनों के बाहर था। इस स्थिति का लाभ उठाकर कुछ साहित्यकारों तथा प्राध्यापकों ने सचमुच अपहरणकर्ता की भूमिका निभायी और मूल स्रोतों का कोई उल्लेख किए बिना अपनी रचनाएँ कहकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की।[5]

इस प्रकार अनुवाद कार्य में अर्थापहरण की उस निदिंत वृति का समावेश हुआ जिसे पूर्व आचार्यों ने कभी एक निकृष्ट कार्य कहा था।

काव्य मीमांसाकार राजशेखर ने दो प्रकार के अवांछित कवि बताए थे- अर्थ-चोर और शब्द-चोर। 'एतयो शबद चौरः निकृष्टः' उन्होंने भाव की चोरी की अपेक्षा शब्दों की चोरी को अधिक निकृष्ट माना था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तो जैसे हमारी भाषाओं में अनुवादों की बाढ़-सी आ गई है। हिंदी को राजभाषा और प्रादेशिक भाषाओं को राज्य भाषाओं के रूप में विकसित करने की सरकारी नीति के कारण त्वरित अनुवादों की आवश्यकता भी बढ़ गई है और स्थान-स्थान पर अनुवाद के पाठ्यक्रम चलाए जाने लगे हैं। इससे पहले हमारी भाषाओं में अनुवाद तो हो रहे थे परंतु किसी सैद्धांतिक अनुशासन के अभाव में उनमें एक प्रकार की स्वच्छंदता और मनमानी थी। हमारे यहाँ अनुवाद का सिद्धांत साहित्य पश्चिम से आया है और उसी को आधार बनाकर हमने भी अनुवाद शब्द में मूल-निष्ठ, मूल-मुक्त, आंशिक अनुवाद, रूपांतरण, स्वच्छदं, अपहरण आदि सभी अर्थों को स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार पुनरुक्ति से आरंभ होकर 'अनुवाद' शब्द की अर्थपरिधि का विकास हो गया है।

संदर्भ सूची

1. Astadhyayi of Panini. Vol I, Srisa Chandra Vasu P. 308.

2. द्र. श्लोक 61, 63, 66, 97

अनुवादक एवं संपादक, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, पृष्ठ 129

3. द्विवेदी युगीन साहित्य समीक्षा : संकटाप्रसाद मिश्र, पृष्ठ 270

4. विशेष विवरण के लिए देखें लेखिका कृत 'राम-काव्य परंपरा में रामचंद्रिका का विशिष्ट अध्ययन' में प्रबंध काव्य तथा रामचंद्रिका में प्रबंध काव्यत्व अध्याय, पृ. 246

5. विशेष विवरण के लिए देखें डॉ. इद्रकांत द्वारा लिखित 'कुम्भिलोपाख्यान'

'अनुवाद बोध' से साभार

❑❑❑

भारतीय भाषाओं के बीच संवाद

प्रो. गंगा प्रसाद विमल

भारतीय संस्कृति के बीच संवादहीनता की स्थिति एक ऐसा विचारणीय कारक है जिस पर उन्मुक्त होकर बहस बहुत जरूरी है। यह बहस लेखकों के बीच एक ऐसे अदृश्य पुल का निर्माण संभव बना सकती है जिससे संवादहीनता का ठंडापन खत्म हो। इसलिए नहीं कि संवादहीनता हमारा कोई जातीय गुण है। हम एक दूसरे की परवाह न करने के लिए ही पैदा हुए हैं बल्कि इसलिए जरूरी है कि उससे हम अनेक भ्रांतियों को निर्मूल कर भारतीय साहित्य के सकारात्मक स्वरूप का अनुमान कर सकें। इस निबंध में एक लेखक की हैसियत से मैं अपनी व्यवस्थाओं या संस्थाओं या शिक्षा प्रणालियों की आलोचना की स्वतंत्रता नहीं प्राप्त करना चाहता। वह तो हमें संवादहीनता की स्थिति में स्वयं ही प्राप्त है किंतु केवल एक प्रस्ताव के रूप में भारतीय भाषाओं के पाठकों की ओर से अनुवादकों के समक्ष कुछ प्रश्नों का समुच्चय है जिसे जानना कई दृष्टियों से बहुत ही अनिवार्य है।

पहली बात तो यह है कि हम भारत के बारे में एक भारतीय होने के कारण भी बहुत कम जानते हैं। हैरानी होती है कि हम भारत की बुराइयों को जानते हुए भी उन्हें समझने की कभी कोशिश नहीं करते। हमारे आचरण की असंख्य ऐसी व्यवहारगत कोटियाँ है जो हमारे जीवन की उच्चता के परिमाप को बहुत नीचा साबित कर डालती हैं। तब हम प्राचीन और आदिम और निम्नकोटि के दिखाई देते हैं।

असल में अगर हम भारत के बारें में थोड़ा ज्यादा जानने की कोशिश करें तो उसके लिए भी हमारे पास साधन पश्चिमी प्रशासन तंत्र और संचार माध्यम ही हैं। दुर्भाग्य है कि वे हमें असली भारत का परिचय देने से कतराते हैं या वैज्ञानिक आधारों पर परखें तो उनमें इतनी सामर्थ्य ही नहीं है कि वे बदलते हुए विश्व के संदर्भ में बदलते हुए भारत को समझ पाएँ, वे जब स्वयं नहीं जानते तो हमें किस विधि से समझा सकते हैं?

गौर करने वाली बात यह है कि भारत को ठीक तरह से भारतीय भाषाओं के द्वारा ही समझा जा सकता है। यह आधार बहुत ही जटिल है। भारतीय भाषाओं का ऐसा परिज्ञान संभव नहीं कि हम सभी भाषाओं में पारंगत हो। इसके लिए हमें अपनी लोक परंपराओं के दरवाजे खटखटाने पड़ेगें, वहाँ ऐसे दूत मौजूद हैं। उनसे हम भारत को जानने की आसानी पा सकते हैं। कम से कम यह तो जान ही सकते हैं कि भारत को भ्रष्ट रूप से जानने की पद्धति पश्चिम ने विकसित की है। उससे भारत को एक न मानने का दंभ पैदा और विकसित हुआ है। रवींद्रनाथ जैसे शुद्ध कवि ने पश्चिम के इस भाव को जानकर भारत की बहुलता को उसके एक होने की शर्त के रूप में स्वीकार किया था, और अपने ही ढंग से कहें तो उसे सत्यापित करने का भी यत्न किया था। विश्वभारती उसी परिकल्पना की एक कड़ी है।

पश्चिम ने पहले हमें भाषाओं के बारे में बाँट कर कुछ ऐसी सैद्धांतिक भ्रांतियों को जन्म दिया जिनका निराकरण आज तक संभव नहीं हुआ। भारत को जैसा विभक्त किया गया था आज वही विष वृक्ष अदृश्य रूप से हर क्षेत्र और हर क्षेत्रीय इकाई के बीच फैल गया है। वह ज्ञान के अनुशासन में शिक्षा की दुनिया में भी फैल

गया है। अब चाहे जो करें उससे मुक्त नहीं हो सकते। दक्षिण के कतिपय विद्वानों ने इस संबंध में कुछ प्रयत्न जरूर किए थे किंतु वे भी फलदायी नहीं हुए क्योंकि विष बीज ज्यादा सुदृढ़ हो गए प्रतीत होते हैं।

भारत के ऐतिहासिक अतीत के बारे में भी भारतीय मस्तिष्क की भागीदारी को पश्चिम ने ज्यादा जगह नहीं दी है, अतीत का इतिहास भी राजवंशों के इतिहास की पद्धति पर लिखा गया है। वह भी पश्चिमी इतिहास पद्धति के ज्यादा अनुकूल पड़ता है इसलिए शिक्षा का हिस्सा बना दिया गया। वही पढ़कर हमारे विद्यार्थी भारत को जानते हैं। यह अर्ध सत्य है जिसे मानकर वे आधे-अधूरे भारत का ही बिंब पढ़ सकते हैं।

भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की चर्चा चलती जरूर है किंतु संकीर्णतावादी मानसिकता के चलते उसमें वस्तुनिष्ठता संशय की वस्तु रह जाती है। एक ही रास्ता बच जाता है कि हम अपनी भाषाओं की मार्फत भारत को जाने क्योंकि उसे जाने बिना अन्य आधार नहीं है। इसी आधार से हम भारत को पूरी तरह जानने की कुंजी पा सकते हैं लेकिन हमारे लिए वर्तमान परिस्थितियों में वह भी संभव नहीं है क्योंकि प्रमुख भारतीय भाषाओं का लोक कदाचित भाषाओं से भी ज्यादा विस्मृत है। हम अटक कर यही बहकते हुए कह सकते हैं या पूछ सकते हैं कि हम क्यों उस लोक के द्वारों पर दस्तक दें? मुख्य कारण तो यह होगा कि हम आधुनिकता की दौड़ में इतने आगे बढ़ आए हैं कि हमें अपनी भाषाओं का लोक एक पिछड़ी हुई बस्ती की तरह दिखाई देगा। इसलिए कि हम अपने आज के जीवन में लोक को न अपनाए जाने वाली सामग्री मान बैठे हैं। यदि हमारा स्थानीय लोक पश्चिमी या विदेशी दृष्टि को ठीक दिखता है तो हम थोड़ा बहुत समझौता कर उतना ही मानने को तैयार हैं मसलन हम फैशन के तौर पर अपने लोक का महिमामंडन कर सकते हैं। किंतु उसे आधुनिक या अत्याधुनिक दौर की समूची जारात के रूप में नहीं देख सकते। यह तो तय लोकोपयोगी चीजों के बारें में अपनी मान्यता से समझौता करने की तैयारी से जुड़ा प्रसंग हैं किंतु इसे हम सार्वभौमिक सत्य के निकट जैसी स्थिति मानने के लिए तैयार नहीं होंगे। खासतौर से हम अपनी भाषाओं की लोक संपदा के बारे में या तो जानते कम हैं या उसे स्मृति के पिछवाड़े किसी सर्विस लेन के कूड़े की मानिंद समझते हुए उसका व्यावहारिक उपयोग नहीं करते हैं। वस्तुतः हम नैसर्गिक संगीत से अपनी संगति न बिठा पाने की वजह से वंचित रह जाते हैं। हम भाषा के अतृप्त तत्व से, भाषा के नैसर्गिक विज्ञान की आमचूलों से अपरिचित रह जाते हैं।

इसे समझने के लिए हमें यह मानना होगा कि हमारे लोक जीवन की भाषिक संरचनाएँ हमारे उस नैसर्गिक अनुराग से पैदा हुई हैं जिसे पश्चिम की चमक दमक के संदर्भ में हम एकदम पिछड़ा हुआ समझकर विचित्र प्रकार की हीन ग्रंथि से ग्रस्त हो जाते हैं। पर्वतों में किसी इलाके में बहुदयनीय प्रथाएँ हैं तो कुछ इलाकों में बहुपतित्व की परंपरा स्वीकृत है। उन मान्यताओं को आज हम स्वीकार करें या न स्वीकार करें यह अलग प्रश्न है। इतना जरूर है कि हम अब अंधानुकरण की वृत्ति के मुताबिक उन्हें जस का तस नहीं स्वीकार कर सकते। हुलिया बदल ही रही हैं। बहुपतित्व की प्रथा को जहाँ प्राचीन काल के गौरव के रूप में स्वीकृति प्राप्त थी। आधुनिक शिक्षा ने उस प्राचीन मान्यता को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया है। अब एक पत्नी पर चार या पाँच पतियों का स्वामित्व हमारी संवैधानिक मान्यताओं के भी विपरीत जा पड़ता है। इसलिए उन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं है। किंतु इससे हमारी भाषिक व्यंग्यताओं में जो शब्द आ घुले मिले थे या हमारी तत्कालीन आवश्यकताओं ने भाषा के साथ अर्थात् मुख्य भाषा के साथ घुल मिलकर जो नई कल्पनाएँ बनाई थी वे हमारे लोक मासिक कोश में सुरक्षित हैं। मैं पिछले दिनों एक जौनसारी विद्वान से मिला था तो मुझे उनकी वार्ता में अपनी पर्वतीय भाषाओं की उस शक्ति का परिचय मिला तो मुझे लगा हमारी प्राचीन बोलियों के पास एक अभूत खजाना हैं। हम उसका आधुनिक संदर्भो में तो उपयोग नहीं कर पा रहें हैं। किंतु उसका शब्दकोशी महत्व तो है उसका एक महत्व उपयोगिता की दृष्टि से भी है और उसकी उसी बहुक्षमता का उपयोग अन्यत्र भी किया जा सकता है।

जौनसारी बोलियों के पास संरक्षित इस शक्ति का उपयोग गढ़वाली, बंगाली, माच्छ्र्ा बोलियों में तो उपलब्ध होगा ही यह उत्तराखंड की कुमांउनी और (गढ़वाली मानक) में भी अवश्य ही होगा।

मेरा आशय अंर्तभाषायी संवाद के लिए बोलियों के बीच संप्रेषण के लिए जिस सर्वमान्य संपर्क सूत्र के अस्तित्व का प्रश्न उठ रहा है, वह भारतीय लोकभाषाओं व भारतीय मुख्य भाषाओं के बीच अनुवाद जैसी किसी परिपाटी से उभरने वाली समर्थनुवाद की परंपरा को पुनः जीवित करने से जुड़ा भाव है। आप पाएँगें कि जिस तरह हम भाषाओं के अपने, हमारे आधुनिक संपर्क वैश्विक मान्यताओं के संबंध में परिर्वतन के प्रयोगों में ढल रहें हैं। वैसे ही हम उन संपर्क सूत्रों की कल्पनाओं को साकार कर सकते हैं। हम आधुनिक मनुष्य बन तो रहे हैं परंतु उसकी एक क्षति हम अपने भाषा प्रयोगों में पा रहें हैं। यहाँ पर संदेह हो सकता है कि जैसे-जैसे हम आधुनिक हो रहें हैं हम दूसरी जीवन पद्धतियों से कुछ नयापन तो स्वीकार कर रहे हैं किंतु नैसर्गिक प्रकार के मूल्य विधान से हमारा नाता खत्म हो रहा है और हम अपनी भाषाओं के अखिल भारतीय स्वरूप से वंचित हो रहें हैं या अपरिचित हो रहें हैं या कहें हम उससे दूर होकर उसकी प्राकृतिक ताकतों से अलग हो रहें हैं इसमें हम जिस मुख्य चीज से अलग हो रहें हैं वह है हमारी भाषाओं की शब्द निर्माण, वाक्य निर्देश और भाषिक सार्वजनिकता से एकदम अलग पड़ जाना इसका अर्थ है कि हम अपने जातीय, संधीय जुड़ाव से भी अलग किए जा सकते हैं। क्योंकि भाषिक संपंनता से अलगाव अर्जित भाषाओं में हमारी कामचलाऊ कार्यक्षमता की पद्धति को तो जीवित रखेगा किंतु हमारे भीतर से उन मौलिक सृजनात्मकता की शक्ति को प्राणहीन कर डालेगा जो हमें हवा पानी की तरह प्राकृतिक रूप से उपलब्ध हैं।

क्या हम ऐसी किसी आसन्न स्थिति का स्वतंत्र रूप से सामना करने के लिए तैयार हैं? ऐसे में तो यही समझ में आता है कि कोई विजातीय हाथ हम पर हमारी समग्र सृजनात्मकता पर हमला कर हमें दोयमकोटि के कामगारों की तरह जीवित रहने देगा। यह एक ऐसा प्रश्न है जो सिर्फ हमें हमारी जड़ों से काट देने से ही संभव होगा। अतः लोक भाषाओं से विलगाव का अर्थ होगा हम एक सक्षम प्रजाति के रूप में सक्रिय न रहें। इसलिए इस प्रश्न पर बार-बार सोचना पड़ेगा कि हमारी लोक भाषाओं या लोक बोलियों में नैसर्गिक रूप से शब्द निर्माण या व्यंजना संप्रेक्षषण की जो विकसित विधि है उसे अपनी मुख्य भाषाओं में भी पल्लवित होने दें।

यहाँ पर जानना जरूरी है कि प्रत्येक भाषिक भाषा अपने लोक संसार से अपने लिए ज्ञान की आधारभूत सामग्री लेती हैं। विचित्र लग सकता है किंतु हमारी लोकभाषाओं के पास वह शक्ति उपलब्ध है जिससे व्यावहारिक ज्ञान की बहुतेरी सामग्री स्वतः हमारी भाषाओं में हमें ध्वनित दिखती है। उसके लिए हमें किसी अन्य वैकल्पिक विज्ञान की जरूरत नहीं होती बल्कि वह हमारे लिए उच्च ज्ञान के भी द्वार स्वतः खोल देती है। जैसा हमने अपनी प्रस्तावना में यह विचार रखा ही है कि हमारी लोकबोलियों में उन पारिभाषिक सहजताओं की उपस्थिति है जो उच्च ज्ञान के काम भी आ सकते हैं। हमने तो संबंधवादी शब्दावली के कारण उपलब्ध उस लचीलेपन की ओर संकेत किया है जिसमें नए संप्रेषण और नए सार्वजनिककरण की क्षमताएँ हैं। थोड़ा पीछे की और देखें तो हमें खुद से ही यह प्रश्न चाहिए कि हमारी प्राचीन भाषा में तो शब्दों, व्यावहारिक शब्दों तथा पारिभाषिक शब्दों का अतुल्य खजाना हमारे पास है। अचरज इस बात पर भी होना चाहिए कि वही सामर्थ्य हमारी अन्य भाषाओं में भी हैं। जिसे या जिन्हें हमने प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाओं के खाते में डालकर राष्ट्रीय दायित्व से अलग कर उन्हें क्षेत्रीय दायित्व का हिस्सा बनाकर अपने भाग्य के सहारे छोड़ दिया है। जबकि एक सामान्य सा भाषा संबंधी अध्ययन यह बतलाएगा कि तेलुगु कितनी प्राचीन है, तमिल संभवतः प्राचीनतम् भाषा के रूप में दिखाई दे। बांग्ला और पंजाबी के प्राचीन संस्कृत के रिश्तों पर तो नई भाषा रची ही जा सकती है। प्रांतीय भाषा कहकर मराठी, गुजरात को क्षेत्र की ही भाषाओं के रूप में दर्जा देने की कृपणता विद्वानों के हिस्से में गिनी जाती है। परंतु एक बात तथ्यात्मक है कि प्रत्येक भारतीय भाषा का अपना एक अलग लोक संसार है। यहाँ तक कि जिस पर खुद अपनी भाषा वाले यकीन नहीं करते उस उर्दू भाषा का भी लोक संसार है। भारतीय मुसलमान, चाहे संख्या में जितने भी हों वे सीधे मध्यपूर्व से आई कथाओं, अंतरकथाओं और प्रसांगनुकूल कथाओं में मननीय कथा

संरचना का ही रस बाँटते हुए उनमें प्रवाहित अर्थक्षमता को एकदम भारतीय शैली में ही उभरता देखते हैं। तात्पर्य मात्र यह है कि सभी भारतीय भाषाओं का यह लोक एक तरह का अविभाजित भारतीय लोक है जो भीतर और बाहर से हमारी परंपराओं को एक दूसरे के निकट भी रखता है और उन्हें समृद्ध भी करता है। अब अगर हम मननीय भाषाओं के इस अतिसमृद्ध खजाने को एक मानें तो यह विश्व का अपने ढ़ंग का अलग कोश होगा। सामान्यत: भाषाओं के इस अर्न्तलोक को एक मानने की भूल नहीं करनी चाहिए। अपने वैविध्य में ही इसे एक माना जा सकता है या फिर व्यवहारिक स्तर पर इसे एक जानने की वैज्ञानिक विधि निर्मित करनी पड़ेगी किंतु परस्पर भारतीय भाषाओं की क्षमता के संदर्भो में यह अविचित्र रूप से एक ही होगा। ऐसा जानने के अतिरिक्त हमारे पास कोई अन्य विकल्प भी नहीं है। परस्पर भाषाओं के एक-दूसरे में हैरतअंगेज मूलताएँ या समताएँ हैं। थोड़े से उच्चारण भेद के साथ उनकी स्वायत्त शब्द निर्मात्री शक्ति या कला में भी आपको विलक्षण समताएँ दिखाई देंगी।

मुख्य आधार मननीय भाषाओं की प्राचीनता से निर्मित होता है वह भी किसी अवैज्ञानिक विश्वास के सहारे नहीं अपितु अति प्राचीनकाल से प्रकृति की सन्निकटता के कारण ही ऐसा हुआ होगा, ऐसा मानने के अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं जिनपर अलग से चर्चा होनी चाहिए।

कुल मिलाकर यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारतीय भाषाओं का यह लोक स्थानीय बोलियों में सुरक्षित है। बोलियों में स्थानीय उच्चारण वैशिष्टम अपने ही ढंग से उपस्थित है उसकी अभिव्यक्ति अब तब लोकगीतों, लोकगायन शैलियों और लोकसंगीत में व्यंजित होती ही रहती है। और यह सरमाया बहुत महीनता से सुसंस्कृत होते हुए मुख्य भाषाओं व अन्यप्रांतीय संवादों के जरिए भिन्न-भिन्न भाषाओं के बीच अपनी स्तरीय आकृति स्वयं प्राप्त कर लेता है। इस अर्थ में लोक भाषिक गतिविधियाँ बिना शोर-शराबे के एक दूसरे के बीच संचरण करती रहती हैं। यह दुर्भाग्य ही है कि भारतीय लोक की इस बेमिसाल वृत्ति को भारतीय सौदंर्य में वैज्ञानिक रूप से रेखांकित करने की चेष्टा हुई ही नहीं है।

एक दुर्लभ सी वृत्ति भी अभी तक पूरी तरह पहचान में नहीं आ सकी है। वह हमारे आज के वर्तमान यानी आधुनिक अर्थात् उत्तर आधुनिक जरूरतों को पूरा करने में भी सहयोगी है परंतु उसकी पहचान वैज्ञानिक कारक के रूप में भी नहीं की गई। वह क्या है-इसे समझना ही होगा।

पहले एक गणितीय संभावना कल्पित करनी होगी कहना होगा कि मान लें प्राचीन भाषा के किसी शब्द की धातु के भीतर ही कोई ऐसा सूत्र है जो धातु के सभी वैज्ञानिक प्रकारणों की पहचान करने में सक्षम हो अर्थात् हम जिस ढंग से आधुनिक संसार में अनेक अनुशासनों में विभक्त हो गए हैं कि मनोविज्ञान की परिभाषित शब्दावली जीव विज्ञान या धातुविज्ञान या संगणक विज्ञान का परिबोध कराने वाली परिभाषित समझ की एकता के सूत्रों पर विश्वास नहीं कर सकते किंतु संस्कृत में यह प्राचीन काल से संभव था और एक ही टेक्स्ट या पाठ उसके बहुस्तरीय अर्थों को उद्घाटित करने में सक्षम था और है। ज्यादा दूर जाने की जरूरत नहीं है। संस्कृत के ज्योर्तिविज्ञान संबंधी गणित से जुड़े पाठ को देखे तो गणना की अद्भुत वैज्ञानिक पद्धति का विकासात्मक रूप दिखाई देगा तथापि उसे फलित वाले हिस्से में अनुष्ठानों के आडंबरों का विचित्र रूप से दिखाई देगा। यही हाल आयुर्विज्ञान संबंधी पाठ कर रहा है। जहाँ योग की निराकरणीय पद्धतियों का विस्तृत विवेचन मिलता है जो मानवजाति के लिए अमूल्य सामग्री के रूप मे उपलब्ध है। इसी तरह अपने समय से अन्य उपयोगी या कहें लोकोपयोगी शास्त्रों के विपर्श से ध्वनित होने वाले निष्कर्ष हैं जिनकें लोकभाषिक संस्करण भी विभिन्न मठों या संतो की संस्थाओं द्वारा जनहितार्थ प्रस्तुत किए गए हैं। अत: मूल संस्कृत या जनबोलियों अर्थात् लोकभाषाओं में रचित ऐसी सामग्री का विधिवत अध्ययन अपेक्षित है। कम से कम लोक भाषाओं में क्या कुछ है आज उसका अता-पता रखना भारत को जानने के लिए आवश्यक है।

साथ ही साथ हमारी लोक भाषाएँ जिस गहरे अपनत्व के साथ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। वह अचरज में डालने वाला तत्व है। हम स्वयं को समझाने के लिए यह तर्क स्वीकार कर सकते हैं कि हमारा जो कुछ

अदृश्य-सा, बहुत भीतर बैठा हुआ है। उसे हम केवल यह मानकर ही जान सकते हैं कि वह गहरी जड़ों के रूप में हमारे पूरे भूगोल में अदृश्य रूप से उपस्थित है। यदि हम इस तथ्य को सिद्ध कर सकें तो हम उन जड़ों से मिलने वाले भाषिक रस से तो परिचित हैं ही, हम उसके दूसरे प्रभावों के बारे में भी अपनी दृष्टि विकसित कर सकते हैं।

एक तो सत्य हमारे आज का ही सत्य है कि किसी अनुवाद निरपेक्ष संसार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए भी कि जिस तरह का विश्वनिर्मित हो गया है उसमें सामुदायिकता ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है। उत्तर आधुनिक दुनिया थोड़ी बड़ी हो गई है। प्रचार माध्यमों ने थोड़ा बड़ा ही आकार ले लिया है फल यह हुआ है कि किसी एक प्रश्न पर भी बहुत बड़ी जनसंख्या विचार करने के लिए तत्पर हो गई है।

ज्ञान के हर क्षेत्र में अनुवाद ही वह आसान रास्ता है जिस पर चलकर हमारी चेतना हर भाषायी इकाई अब दूसरों की उपलब्धियों के संदर्भ में आगे बढ़ने के लिए अपनी तैयारी करती है।

अनुवाद की जरूरत के विस्तृत होते क्षेत्रों में हमें अब भाषाओं के बीच संवाद की तीव्र अनिवार्यता दिखाई देती है इसीलिए यदि भारत जैसी इकाई अपनी बहुभाषिक प्रवृति के बीच संवाद की तैयारी में सफल होती है तो वह अपनी मनीषा से स्वयं अपनी और विश्व की समस्याओं के निदान का रास्ता निकाल सकती है। यह एक ऐसा पक्ष है जो अनेक हस्तियों से जरूरी और रेखांकित करने वाले सत्य से जुड़ा है।

शीतयुद्ध के दिनों दोनों बड़ी शक्तियाँ अपनी ज्यादा ऊर्जा इस बात पर लगाती थीं कि दूसरा क्या कर रहा है। सारा जासूसी तंत्र दूसरे की गणितीय उपलब्धियों के सुराग पाना चाहता था। आज भी ठीक वैसी ही स्थिति आर्थिक स्पर्धा के रूप में जन्मने लगी है। ऐसे विश्व समय में भारत को अपनी लोक भाषाओं की ओर मुड़कर नए विश्वास को अर्जित करना बहुत जरूरी है कि हम अपनी बड़ी भाषाओं और लोक भाषाओं के बीच एक सकारात्मक सक्रिय और अर्थवान संवाद कायम करें। विज्ञान के जिन क्षेत्रों में हम पश्चिम से पिछड़ रहे हैं उन्हीं क्षेत्रों में आगे बढ़ने में कदम गोपनीय स्तर पर उठाने पड़ेंगें। अन्यथा दूसरी शक्तियाँ हमारे ज्ञान को आदिम सिद्ध कर हमें अपने साथ से विरत कर देंगी। पश्चिम की ओर पीठ कर आगे बढ़ते और विश्व में अपना वर्चस्व कायम करने की कुंजी भारतीय भाषाओं और लोक भाषाओं के बीच संवादहीनता खत्म करना ही है।

भारतीय लोक भाषिक संवादों का अनुवाद इतना ही संभव है और उसके जारी होते ही हम सृजनात्मकता के नए आधारों पर स्वयं को आरूढ़ देखेंगे।

भारतीय भाषाओं के बीच संवाद के पश्चिमी तौर तरीके से ज्यादा मुफीद भारत पद्धतियाँ ही हैं किंतु संभावना दिखाई देती हैं ऐसी परिस्थितितों में छोटी राष्ट्रीय इकाईयों के गणित से परिचित होना पड़ेगा और देखना पड़ेगा कि अपनी राष्ट्रीय इकाईयों की बहुभाषिकता कैसे सब जगह लागू हो। वैसे भी कोई सामान्य अध्ययन कर उन निष्कर्ष पर टिप्पणी कर सकता है कि भारतीय जन नैसर्गिक रूप से अपने क्षेत्र में भी बहुभाषी हैं। हम खुद अपने स्तर पर सोच सकते हैं कि ठेठ आंचलिक संबोधन मोटेतौर पर अखिल भारतीय प्रकृति के हैं। यहीं से अपनी यात्रा आरंभ करें तो हमें दिखाई देगा कि हमारी भाषिक समानताओं का संसार एक समृद्ध संसार है आए भेद के ज्यादातर रूप हमारी स्थानीयता से प्रभावित गुण हैं। यहाँ उन्हें गुण मानने का एक मात्र कारण यह है कि इस प्रकार के वैविध्य से निर्मित शब्द स्थित वैचारिक निष्कर्ष की फलश्रुति भी है।

हमारे आर्थिक विकास का लक्ष्य वास्तव में अनेक भाषाओं की राष्ट्रीय स्वीकृति से जुड़ा प्रस्ताव है परंतु इसके लिए दृढ़ होकर भारत में भारतीय भाषाओं को ही उच्च शिक्षा, प्रशासन और परस्पर संवाद के लिए स्वीकार करना पड़ेगा।

अगर हम यह नहीं कर पाएँगे तो संवादहीनता की स्थिति संज्ञाशून्यता की स्थिति में तब्दील हो जाएगी और हम जिस रूप में भाषायी परतंत्रता से एक दूसरे से अलग-अलग हो रहे हैं तब यह खाई इतनी विशाल हो जाएगी कि फिर कोई भी राजनैतिक विवेक इसे लौटा नहीं सकेगा और हम भविष्य के लिए एक विषम समस्या बन जाएँगे।

अत: समय रहते इस दिशा में सचेत होना ही पड़ेगा।

भारत में भारतीय भाषाओं से ही हम और प्रश्नों, समस्याओं और भ्रांतियों से निपट सकते हैं। इस आधार से ही भारतीय भाषाओं की स्वीकृति का पक्ष हमारे सामने है।

भारतीयों और भाषाविदों को प्राथमिकता से बिंदुओं की पहचान कर उन अधिक चरणों को सूचीबद्ध करना ही चाहिए जिस पर हम भविष्य को स्वावलंबी भारत को आगे बढ़ता देखना चाहते हैं।

– 112, साउथ पार्क, कालका जी, नई दिल्ली-110019

❑❑❑

वैश्वीकरण के परिदृश्य में अनुवाद की भूमिका

प्रो. एम. वेंकटेश्वर

संसार में लगभग तीन हजार भाषाएँ मौजूद हैं। जिनमें से कुछ भाषाएँ तेजी से लुप्त होती जा रही हैं क्योंकि उनका प्रयोग करने वाले भाषिक समुदाय लुप्त हो रहे हैं। भाषा वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम होती है साथ ही यही संस्कृति की वाहिका होती है। किसी भी समाज की पहचान उस समाज की भाषा से ही होती है। संसार में भाषाओं के जन्म के सही काल का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है किंतु निश्चित रूप से इसकी पुष्टि के कोई प्रमाण भाषाविदों के पास उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन इतना सत्य है कि मानव सभ्यता के विकास के समानांतर ही भाषाओं का विकास संसार में हुआ। भाषा ही सभ्यता के विकास का मानदंड है। भाषाओं का मूल प्रयोजन संप्रेषण है। मनुष्य अपने विचारों को, भावनाओं को, आवेग, आवेश और स्पंदन को व्यक्त करने के लिए इस मौखिक माध्यम का सहारा लेता है। भाषा के बिना मानव सभ्यता की कल्पना नहीं की जा सकती।

मानवता की दृष्टि से सभी देशों-प्रदेशों के मनुष्य मूलत: एक हैं पर भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भाषिक सीमाएँ उन्हें एक-दूसरे से अलग कर देती हैं। इनमें भाषा की सीमा सबसे बड़ी सीमा है। विदेशों की बात तो दूर अपने ही देश में विभिन्न प्रदेशों के लोग एक-दूसरे की भाषा न समझने के कारण एक-दूसरे से अजनबी हो जाते हैं। मानव-मन स्वभावत: सीमाओं में बंधकर रुद्ध नहीं होना चाहता, बल्कि वह इन सीमाओं को लांघकर विश्वभर में व्यापने के लिए तड़पता रहता है। भाषा की सीमाओं को लांघने का सबसे बड़ा माध्यम अनुवाद है। अनुवाद के माध्यम से अपनी भाषा में अन्य भाषाओं की कृतियो को पढ़ने का अवसर मिलने पर व्यक्ति सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और भाषागत सीमाएँ स्वाभाविक नहीं बल्कि मनुष्य निर्मित कृत्रिम सीमाएँ हैं। वस्तुत: मानव समाज एक है।

भाषा हमारे विचारों एवं भावनाओं का अनुवाद कही जा सकती हैं। जो हम सोचते हैं, वह शब्दों के माध्यम से लेखन में समेटने का प्रयास करते हैं। भाषा किसी हद तक ही हमारे विचारों को पकड़ पाती है। हम कह सकते हैं कि आमतौर पर मूल कहा जाने वाला लेखन भी मूल न होकर लेखक की भावनाओं का अनुवाद है। यही कारण है कि बहुधा लेखक अपने स्वयं के लिखे को बार-बार पढ़ते हैं, अपनी भावनाओं और उसकी अभिव्यक्ति का मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन करने के बाद ही रचना को मूर्त रूप देते हैं। फिर अनुवाद तो किसी अन्य लेखक की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। जब लेखक के लिए स्वयं की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उचित शब्द नहीं मिलते, तो अनुवादक के लिए तो यह एक तरह से अनुवाद का अनुवाद मात्र होगा।

सुख और दुख की भाँति मनुष्य ज्ञान को भी दूसरों के साथ बांट लेना चाहता है। जो वह स्वयं जानता है उसे दूसरों तक पहुँचाना चाहता है और जो दूसरे जानते हैं उसे स्वयं जानना चाहता है। इस प्रक्रिया में भाषा की सीमाएँ उसके आड़े आती हैं। इसीलिए अनुवाद आज ज्ञान-विज्ञान के विकास और प्रसार का अनिवार्य

साधन बन गया है। सामान्यतया एक भाषा के पाठ को दूसरी भाषा में बदलने की प्रक्रिया को ही अनुवाद कहते हैं। इस संबंध में विद्वानों ने जो परिभाषाएँ दी हैं वे इस प्रकार हैं -

1. अनुवाद कार्य विश्व के एक खंड को प्रतिपादित करने वाले माध्यम से दूसरे माध्यम द्वारा लगभग वैसे ही अनुभव का पुनः सर्जन है। - विन्टर

2. अनुवाद एक जैसे संदर्भ में एक जैसी भूमिका निभाने वाले दो पाठों का संबंध है। -हैलिडे

3. स्रोत भाषा के पाठ में भी दी गई सामग्री को लक्ष्य भाषा के पाठ की समतुल्य सामग्री में बदलना ही अनुवाद है। - कैटफर्ड

4. एक भाषा के प्रतीकों को दूसरी भाषा के भाषिक प्रतीकों द्वारा प्रतिपादित करना अनुवाद है- रोमन याकोब्सन

5. अनुवाद प्रक्रिया के अंतर्गत संग्राहक-भाषा के संदेश को अर्थ और शैली की दृष्टि से निकटतम स्वाभाविक समतुल्यों में बदलना ही अनुवाद है।-नाइडा

अनुवाद को स्वीकृति अथवा मान्यता प्राप्त करने के लिए सुदीर्घ संघर्ष करना पड़ा। आरंभ में लगभग सभी अनुवादों की तीव्र आलोचना की जाती थी और यह माना जाता था कि अनुवाद असंभव प्रक्रिया है। अनुवाद की प्रामाणिकता पर अनेकों तरह के लांछन लगाए गए और आज भी कुछ लोग उसका उपहास करते हैं जैसे अनुवाद एक स्त्री के समान है जो सुंदर होगी तो विश्वसनीय नहीं हो सकती और यदि विश्वसनीय होगी तो सुंदर नहीं हो सकती। अनूदित सामग्री तस्कर की हुई वस्तु समझी जाती थी। अतः अनुवाद को निस्सार और निरर्थक माना जाता था। इस धारणा के बावजूद अनुवाद की प्रक्रिया निरंतर चलती रही। आज विश्व में अनुवाद एक अपरिहार्य भाषिक रूपांतरण का माध्यम बन गया है। वैचारिक, अभिव्यक्तियों का भाषिक रूपांतरण केवल अनुवाद की प्रक्रिया से संभव है चाहे यह प्रक्रिया जटिल हो या सरल।

अनुवाद देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करने वाला एक महत्तर भाषिक साधन है। विशेष रूप से यह एक औजार या उपकरण है जो भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक विभेदों को स्थानीय तथा वैश्विक स्तर पर दूर कर परस्पर संबंध स्थापित कर सकता है। विश्व की अनगिनत भाषाएँ आज अपनी-अपनी संस्कृतियों और जीवन की विधियों को संचालित कर रही हैं। इन विविधताओं में समन्वय स्थापित करने का एक मात्र साधन अनुवाद ही है। भाषिक वैविध्य सांस्कृतिक और सामाजिक वैविध्य को जन्म देता है किंतु इस वैविध्य को दूर कर विभिन्न सांस्कृतिक परिवेश में सादृश्य पैदा करने की क्षमता केवल अनुवाद में ही निहित है। व्यक्ति की अभिव्यक्ति किसी भी भाषा में हो सकती है लेकिन वही अभिव्यक्ति समूचे समाज के लिए उस भाषा विशेष के ज्ञान के बिना संप्रेषणीय नहीं होगी, ऐसी अवस्था में अनुवाद ही एक मात्र उपकरण है जो इस कठिनाई को दूर कर सकता है।

वैश्वीकरण का परिदृश्य

नई सहस्राब्दी के आरंभ के साथ विश्व की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ तेजी से बदली हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के महाविनाश के बाद भी विश्व में स्थायी रूप से शांति स्थापित नहीं हो सकी। आज भी महाशक्तियों के बीच परस्पर वर्चस्व की होड़ लगी है। अमरीका, चीन और रूस जैसे सामरिक बल से लैस देश समस्त विश्व पर अपना प्रभाव जमाना चाहते हैं इसी के परिणामस्वरूप इन देशों ने समस्त विश्व की आर्थिक व्यवस्था को अपने वश में करने के लिए वैश्वीकरण का एक नया सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसके अनुसार राष्ट्रों की संस्कृतियाँ, व्यापार, बाजार, भाषाएँ, संचार माध्यम, शिक्षा व्यवस्था आदि में एकरूपता लाने के प्रयास होने लगे। वैश्वीकरण की सोच ने उत्तर-आधुनिक सोच को जन्म दिया। आज सारा विश्व एक वृहत् बाजार में तबदील हो गया है। मनुष्य की प्राथमिकता केवल धनोपार्जन ही हो गई है।

आज संपन्न देश अपने उत्पाद बेचने के लिए बाजार ढूँढ रहे हैं। आज का वैश्वीकरण का सिद्धांत भारतीय वसुधैव कुटुंबकम् की विचारधारा से नितांत भिन्न है। भारतीय विचारधारा, शताब्दियों से समस्त मानव समाज को भावनात्मक रूप से एकता के सूत्र में बांधने का संदेश देती है। भारतीय मनीषा मानवीय धरातल पर असमानताओं को दूर कर सारे विश्व में सुख, शांति और समृद्धि के प्रचार व प्रसार के लिए तत्पर रही। आज के वैश्वीकरण की सोच ने मनुष्य को

स्वार्थी और आत्मकेंद्रित बना दिया जिससे समाज में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास बहुत तेजी से हुआ। आज विश्व में प्रौद्योगिकी, विज्ञान, जनसंचार, व्यापार, वाणिज्य और प्रबंधन का क्षेत्र सबसे अधिक विकासशील है। निगमित व्यापार और प्रबंधन प्रणालियों ने एक नई नव-धनाढ्य सभ्यता को विकसित किया है। संचार- क्रांति ने विश्व को विश्वग्राम में बदलकर रख दिया है। दूरियाँ सिमट गई हैं। संचार क्रांति ने मनुष्यों को उपग्रहों के माध्यम से जोड़ दिया है। आज घर बैठे हजारों मील दूर स्थित लोगों से पलक झपकते ही सीधे संपर्क साधा जा सकता है। मानव जीवन में एक संपूर्ण क्रांति आ गई है। भौगोलिक दूरियाँ समाप्त हो गई हैं, लेकिन भावात्मक और भावनात्मक दूरियाँ बढ़ गईं, लोग अति व्यावहारिक हो गए हैं। संचार क्रांति ने विभिन्न भाषा-भाषियों को परस्पर जोड़ने के वैज्ञानिक उपकरण तो बनाकर दे दिए लेकिन इनकी सक्षमता भाषिक विभेद को दूर करने लायक नहीं है। इस भाषिक विभेद और भिन्नता को दूर करने का एक मात्र उपाय अनुवाद ही है। अंत: संचार क्रांति का प्राण तत्व अनुवाद ही है। भाषाओं की बहुल स्थिति में सामंजस्य पैदा करने वाला एक मात्र माध्यम अनुवाद है। भाषिक विभेद को अनुवाद के माध्यम से दूर किया जा सकता है। विश्व के सिमटते हुए मानचित्र पर भौगोलिक दूरियाँ जैसे समाप्त हो रही हैं वैसे ही अनुवाद के द्वारा भाषिक दूरियाँ भी खत्म हो सकती हैं।

भावात्मक एकता का माध्यम

विश्व समाज भिन्न-भिन्न राष्ट्रों, भूखंडों, धर्मों, वर्णों और जातियों में विभक्त है। हर राष्ट्र और समाज की अपनी भाषिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पहचान होती है। राष्ट्र की पहचान उसकी अपनी राष्ट्र भाषा से होती है। इस विभाजित मानव समुदाय को भावात्मक और भावनात्मक धरातल पर जोड़कर उनके मध्य बनी हुई विषमता की खाई को पाटना ही अनुवाद का प्रधान लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनुवाद एक सेतु बन गया है। इस विभाजक अंतराल को खत्म कर विभिन्न संस्कृतियों में भावात्मक एकता स्थापित करने के लिए अनुवाद एक सशक्त साधन के रूप में उपलब्ध है। राष्ट्रीय, भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और जातीय अलगाव को खत्म कर भावात्मक एकीकरण के लिए अनुवाद की उपयोगिता आज विश्व स्तर पर सिद्ध हो चुकी है। भाषिक विभिन्नता की दरार भी अनुवाद से ही मिटाई जा सकती है। इसीलिए अनुवाद को एक सशक्त सेतु माना गया है। भावात्मक एकता से मनुष्य में सहृदयता और सदाशयता का विकास और मानव जाति का कल्याण संभव है। अनुवाद के माध्यम से परस्पर एक दूसरे की सांस्कृतिक विरासत को साहित्य के माध्यम से समझकर सहिष्णुता का संवर्धन किया जा सकता है। समाज में व्याप्त भाषिक विभाजन से उत्पन्न खाई को पाटने तथा भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के भावात्मक एकीकरण के लिए अनुवाद एक असाधारण खोज है।

राष्ट्रीय एकात्मकता

राष्ट्रीय एकात्मकता आज की अनिवार्य आवश्यकता है। भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए अनुवाद अत्यंत प्रभावी और उपयोगी माध्यम है जिससे कि देश में व्याप्त भाषिक विभेद को दूर कर जन सामान्य में परस्पर एक दूसरे की भाषा और संस्कृति के प्रति सद्भावना जागृत हो सके। भारत आज भाषिक और सांस्कृतिक विखंडन की प्रक्रिया से गुजर रहा है जिसका एक प्रमुख कारण वैश्वीकरण (बाजारवाद) की प्रक्रिया से उत्पन्न सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास है। अनुवाद जैसे सशक्त और कारगर माध्यम की आवश्यकता सबसे अधिक भारत को ही है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समूचे विश्व को इसकी आवश्यकता है।

अनुवाद की प्रक्रिया लक्ष्य भाषा और स्रोत भाषा दोनों के प्रति समान रूप से संवेदनशील तथा संरक्षात्मक भाव धारण किए रहती है इसलिए अनूद्य और अनूदित दोनों भाषाएँ सुरक्षित रहती हैं। किसी भी भाषा के अस्तित्व पर कोई खतरा नहीं मँडराता। भारतीय संदर्भ में प्रादेशिक और क्षेत्रीय भाषाओं को परस्पर एक दूसरे के निकट लाने का सबसे व्यावहारिक माध्यम अनुवाद ही है। किंतु भारत में अनुवाद की स्थिति संतोषजनक नहीं है। भाषाओं की संख्या को देखते हुए तथा देश के विस्तार तथा आकार के अनुरूप भारत में अनुवाद के माध्यम से देश की संस्कृतियों को जोड़ने का संगठित प्रयास अभी बाकी है। अनुवाद के प्रति देश का शिक्षित वर्ग उदासीन है। अनूदित साहित्य को दोयम दर्जे का साहित्य मानने की मानसिकता अभी भी हमारे शिक्षित वर्ग में व्याप्त है। भाषावैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार हर

भारतीय कम से कम द्विभाषिक होता है। भारत में अनेकों भाषाएँ सरलता से उपलब्ध हैं लेकिन भारतीयों में इतर भाषाओं को सीखने या स्वीकार करने की इच्छा शक्ति का अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। विश्व के अनेक देशों में भारत जैसी बहुभाषिकता की स्थिति विद्यमान है लेकिन वहाँ आम लोगों में सभी भाषाओं के प्रति संवेदना और अपनेपन का भाव सहज रूप में परिलक्षित होता है। रूस, चीन, स्विट्ज़रलैंड आदि देश इसके उदाहरण हैं। भारत में साहित्यिक अनुवाद की परंपरा सशक्त होने के बावजूद पर्याप्त नहीं है। राष्ट्रीय एकात्मकता के लिए भारतीय भाषाओं में उपलब्ध साहित्य का अनुवाद हिंदी और हिंदी साहित्य का इतर भारतीय भाषाओं में अनुवाद राष्ट्रीय हित में आवश्यक है। भारत में संस्थागत अनुवाद कार्य की प्रगति संतोषजनक नहीं है। स्वैच्छिक रूप से भाषा-प्रेमी विद्वान अपनी अभिरुचि के अनुकूल साहित्यिक अनुवाद के कार्य में संलग्न हैं लेकिन अनुवाद के क्षेत्र को सुसंगठित होने की आवश्यकता है। भारत में अनुवाद कार्य राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं के द्वारा संगठित रूप से आयोजित करने की नितांत आवश्यकता है। अनुवाद कार्य को स्वैच्छिक एवं स्वच्छंद रूप से स्वीकार करना चाहिए तभी इस कार्य को सही दिशा प्राप्त होगी। शिक्षित वर्ग यदि इस कार्य को नैतिक दायित्व के रूप में स्वीकार करे तभी देश की साहित्यिक धरोहर विभिन्न भारतीय भाषाओं में सामान्य जनता को उपलब्ध होगी।

बाजारवाद और अनुवाद

भारत में साहित्येतर अनुवाद की भी बहुत अधिक आवश्यकता है। साहित्येतर अनुवाद की आवश्यकता विभिन्न काम-काज के क्षेत्रों के लिए उपयोगी है। भाषा की प्रयोजनमूलकता उसके विभिन्न प्रकार्यात्मक अनुप्रयोगों से ही आँकी जा सकती है। भारत में अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के मध्य अनुवाद की आवश्यकता अधिक है क्योंकि देश में कामकाज की व्यावहारिक भाषा अंग्रेजी है। इसलिए कामकाज के क्षेत्र में प्रयुक्त अंग्रेजी की अभिव्यक्तियों तथा अन्य प्रकार के प्रशासनिक पाठ को जन सामान्य के लिए बोधगम्य बनाने के लिए अनुवाद का आश्रय लेना पड़ता है। यह हमारी मजबूरी है ऐसे विशेष कार्य क्षेत्रों में कामकाजी भाषा के प्रयोग के लिए भारतीय भाषाओं में प्रशासनिक एवं अन्य विषयों में पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता होती है। इसके लिए भारत सरकार ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग जैसे संगठनों को स्थापित किया है जोकि हिंदी और इतर भारतीय भाषाओं में प्रयोजनमूलक पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कर, विभिन्न विषयों के कोशों द्वारा शब्दावली उपलब्ध कराती है।

भारत में वैश्वीकरण की बाजारवादी नीति के अंतर्गत बड़ी तेजी से आर्थिक विकास हो रहा है। व्यापार एवं वाणिज्य का क्षेत्र सबसे बड़ा क्षेत्र है जहाँ अनुवाद की सर्वाधिक मांग है। भारत जैसे बहुभाषी देश में विदेशी और स्वदेशी उत्पादों की बिक्री केवल किसी एक भाषा के माध्यम से नहीं की जा सकती। भाषा संप्रेषण का माध्यम होती है। किसी भी उत्पाद (माल) को बेचने के लिए वाचिक और लिखित (मुद्रित) रूप में विज्ञापन प्रणाली के द्वारा उस उत्पाद का प्रचार किया जाता है। यह प्रचार सामग्री अनेक भाषाओं में पेशेवर विज्ञापन विशेषज्ञ तैयार करते हैं। विज्ञापन का बाजार अनुवाद पर ही आधारित होता है। फिल्मों से लेकर उपभोक्ता वस्तु, कृषि, सर्राफा, घरेलू वस्तु, अनाज, कपड़ा आदि हर जीवनोपयोगी वस्तुओं के क्रय-विक्रय की सारी व्यवस्था आज अनुवाद द्वारा तैयार किए गए विज्ञापनों के द्वारा ही संचालित हो रही है। विश्व का सारा बाजार अनुवाद पर आश्रित है। ये अनुवाद स्वदेशी और विदेशी भाषाओं में भी करवाए जाते हैं। इस कार्य के लिए निजी क्षेत्र में बड़ी विज्ञापन कंपनियाँ बाजार में उतर गई हैं। इस तरह अनुवाद का भी एक बहुत बड़ा बाजार है जो कि करोड़ों रुपयों का व्यापार करता है। विज्ञापन जगत में अंतरराष्ट्रीय धरातल पर अनुवाद भी एक उद्योग के रूप में उभरा है आज।

मीडिया और अनुवाद

आज का युग संचार क्रांति का युग है। जन-संचार के माध्यम मानव जीवन पर हावी हो गए हैं। टी वी, रेडियो, इंटरनेट, समाचारपत्र, पत्र-पत्रिकाएँ, फिल्म - ये सब आज मानव जीवन के अनिवार्य अंग बन गए हैं। विश्व में आज हर देश और हर समाज में इनका प्रवेश हो गया है। आज समाचार और संदेश चौबीसों घंटे प्राप्त होते हैं। टी वी के चैनल और रेडियो के कार्यक्रम चौबीसों घंटे चलते हैं। समाचारपत्र के एकाधिक संस्करण हर रोज निकाले जाते हैं। संपन्न देशों में रात्रि संस्करण

भी प्रकाशित होते हैं, अर्थात् जनसंचार के माध्यम हर पल, हर वक्त कार्यरत रहते हैं। विश्व की अनगिनत भाषाओं में ये चैनल और स्रोत कार्य करते हैं। स्रोत भाषाओं में एकत्रित सामग्री का अनुवाद इन संगठनों को तत्काल कर उनका प्रसारण किया जाता है। आज विश्व के संचार बाजार में असंख्य अनुवादक निर्विराम कार्य कर रहे हैं जिनके द्वारा संसार के हर कोने का समाचार या संदेश कुछ ही क्षणों में विश्व के अन्य हिस्सों में हर भाषा में अविलंब पहुँचता है।

यह अनुवाद का ही चमत्कार है और अनुवाद प्रक्रिया की ही देन है। यदि अनुवाद जैसी प्रक्रिया न होती तो संचार क्रांति भी संभव नहीं होती। मीडिया ने नई शताब्दी में मानव जीवन में उथल-पुथल मचा दी है। राष्ट्रों की राजनीति को प्रभावित किया है। राष्ट्रों के प्रमुख अपने वक्तव्यों को अपनी भाषा में प्रस्तुत करते हैं तो उन्हें सारा विश्व अनुवाद के ही माध्यम से समझ पाता है और तत्काल उसपर अपनी प्रतिक्रिया दर्ज करता है। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे अंतरराष्ट्रीय मंच से राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के भाषण तत्काल आशु अनुवाद द्वारा विश्व की सभी भाषाओं में उपलब्ध कराया जाता है। इसमें दूरसंचार के माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण है। कार्यक्रमों के सीधे प्रसारण के लिए संचार माध्यमों के द्वारा प्रयुक्त अत्याधुनिक तकनीक जिम्मेदार है जो इस तरह के उपकरण तैयार कर विश्व को तत्काल जोड़ती है। अनुवाद के बिना हम विभिन्न देशों में होने वाले परिवर्तनों को, वहाँ की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों में होने वाले बदलावों को कदापि आत्मसात नहीं कर पाते।

अनुवाद का प्रयोजन केवल साहित्य के भाषिक रूपांतरण के लिए ही नहीं बल्कि साहित्येतर कामकाज के लिए भी समान रूप से महत्वपूर्ण और अनिवार्य है। अक्सर लोग अनुवाद का प्रयोजन केवल साहित्यिक रूपांतरण के लिए ही मानते हैं, लेकिन जहाँ भाषिक प्रयोग और अनुप्रयोग की संभावना है वहाँ अनुवाद की अनिवार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में अनुवाद

अनुवाद की सबसे अधिक उपयोगिता वैश्वीकृत परिदृश्य में शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण है। शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान और विज्ञान की सामग्री अंतरराष्ट्रीय धरातल पर विश्व के सभी देश और शिक्षण संस्थाएँ आपस में बांटती हैं। यह आदान-प्रदान अनुवाद के माध्यम से ही होता है। अनुसंधान के परिणामों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आपस में अनुवाद के द्वारा ही साझा करते हैं। मनुष्य के कल्याण के लिए विश्वभर में जो भी शोध और अनुसंधान हो रहे हैं जिनमें असंख्य वैज्ञानिक कार्यरत हैं उनके नतीजे समूची मानव जाति तक पहुँचाने का काम अनुवाद द्वारा ही संभव है। इसीलिए सूचना प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष विज्ञान, चिकित्सा और वैद्यकी, असाध्य रोगों के निवारण हेतु जो शोध कार्य हो रहे हैं उनकी जानकारी विभिन्न देशों के नागरिकों को स्थानीय भाषा में दी जाती है जिसके पीछे विशेषज्ञ अनुवादकों का परिश्रम रहता है। संसार में जितनी भाषाएँ मौजूद हैं उन सभी भाषाओं में सारी ज्ञान विज्ञान की सामग्री स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध हो रही है- इसका श्रेय अनुवाद को ही जाता है।

वैश्वीकरण के दौर में अनुवाद के क्षेत्र में कंप्यूटर का प्रवेश

आज का युग संचार के क्षेत्र में कंप्यूटर की प्रधानता का युग है। अनुवाद प्रक्रिया को सुगम और अत्यधिक गतिशील बनाने के लिए कंप्यूटर के प्रयोग की दिशा में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनुसंधान हो रहे हैं। कंप्यूटर द्वारा संपन्न अनुवाद को मशीनी अनुवाद कहा जाता है। विश्व की अग्रणी कंप्यूटर संस्थाएँ आज हर तरह के पाठ के अनुवाद के लिए कंप्यूटर का प्रयोग सफलतापूर्वक, कारगर तरीके से करने के लिए प्रयासरत हैं।

अभी इस प्रयास में पूर्ण सफलता नहीं मिली है लेकिन बहुत जल्द यह प्रयास सफल होगा। जब विश्व की सभी भाषाओं में अंतरभाषिक अनुवाद मशीन द्वारा संभव हो जाएगा। आज कंप्यूटर साधित अनुवाद कुछ सीमित प्रकार्यों के लिए किया जा रहा है। सीमित शब्दावली के साथ विशेष क्षेत्रों में कंप्यूटर अनुवाद किया जा रहा है। इसके लिए विशेष रूप से कृत्रिम बौद्धिकता (Artificial intelligence) का विकास किया जा रहा है। वैश्वीकरण के दौर में विश्व मानव को सारे विभेदों, विषमताओं को भुलाकर यदि परस्पर निकट आना हो तो भाषिक अवरोधों को मिटाना होगा, यह केवल अनुवाद से ही संभव है। अनुवाद के क्षेत्र में

आज के स्पर्धा-युक्त समाज में रोजगार की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं। फिल्मों की डबिंग (ध्वन्यंतरण) और सब टाईटलिंग की प्रणाली अनुवाद की प्रक्रिया पर ही आधारित है। आज विश्व का फिल्म उद्योग अनुवाद की माध्यम से माला-माल हो रहा है।

दुभाषिए की भूमिका आज बहु-राष्ट्रीय व्यापारिक प्रतिष्ठानों में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह आशु-अनुवाद नामक प्रणाली द्वारा साध्य है। आशु-अनुवाद भाषणों के तत्काल अनुवाद के लिए सर्वाधिक उपयोगी है, साथ ही वार्तालाप या संवाद के तत्काल अनुवाद के लिए भी इस कला की उपयोगिता निर्विवाद है। पर्यटन के क्षेत्र में अनुवाद की भूमिका अति महत्वपूर्ण सिद्ध हो चुकी है। भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले सैलानियों के लिए उनकी भाषा में दर्शनीय स्थलों का परिचय देने के लिए गाइड को अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है। इसीलिए अनुवाद को पर्यटन-संबंधी प्रशिक्षण का अनिवार्य हिस्सा बनाया गया है। उसी तरह प्रबंधन, प्रशासन और राजनयिक गतिविधियों में तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों को परिपुष्ट करने की प्रक्रिया में अनुवादक या दुभाषिए की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अंतरराष्ट्रीय विवादों को सुलझाने में भिन्न भाषा-भाषी समुदायों अथवा देशों के मध्य संधि वार्ताएँ, समझौते और करार आदि के लिए अनुवाद का प्रयोग किया जाता है। आज के तेजी से बदलते हुए अंतरराष्ट्रीय परिवेश में अनुवाद की भूमिका बहुआयामी है। भाषा जिस तरह से संप्रेषण का माध्यम है अनुवाद भी उसी संप्रेषण को सार्थक और सशक्त बनाने का सहायक औजार है। आज वैश्वीकरण के दौर में बहुभाषी होना समय की आवश्यकता है और बहु-भाषिकता को समन्वय के सूत्र में बांधने के लिए अनुवाद की आवश्यकता अपरिहार्य है।

अनुवाद के माध्यम से ही हमें विश्व साहित्य को पढ़ने की सुविधा प्राप्त होती है। अनुवाद के बिना हम इस धरोहर को जानने से वंचित रह जाते। आज मनुष्य पहले से कहीं अधिक जिज्ञासु और शोधपरक हो गया है। मनुष्य की जिज्ञासाओं का समाधान अनुवाद द्वारा प्राप्त सामग्री के अध्ययन से ही संभव है। किसी भी व्यक्ति के लिए संसार की सारी भाषाओं को सीखना संभव नहीं है लेकिन विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य एवं अन्य सामग्री का उपयोग हर व्यक्ति अनूदित पाठ के माध्यम से कर सकता है। अनुवाद ने आज अभिव्यक्ति की सीमाओं का विस्तार किया है। अनुवाद वर्तमान काल की अनिवार्य आवश्यकता है।

भारतीय संदर्भ में अनुवाद की आवश्यकता अति महत्वपूर्ण है। भारत की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषिक विविधता निश्चित रूप से भारत की भावनात्मक अखंडता और एकता के लिए चुनौती है किंतु इस वैविध्य और विभेद को दूर करने के लिए अनुवाद ही एकमात्र कारगर उपाय है जिसके द्वारा देश में वैश्वीकरण की स्थितियों से उत्पन्न सांस्कृतिक अप्सरण तथा भाषिक क्षरण की प्रक्रिया पर रोक लगाई जा सकती है।

– फ्लैट न. 310, कंचरेला टॉवर्स, मुशीराबाद, हैदराबाद-500020

❑❑❑

भारतीय साहित्य परंपरा में अनुवाद का इतिहास तथा वर्तमान स्वरूप एवं स्थिति

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल

अनुवाद भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में पारस्परिक बोधगम्यता का सेतु है। कल्पक है। सृजन-भूमि है। सहचर है। हेतु है। वाक् दैवत है। प्रकाशक है। आलोकधर्मी है। मानवीय संबंधों का आधार है। जब हम इसके अभाव की कल्पना करते हैं, तब बौने दिखाई पड़ते हैं और जब इसके भाव की कल्पना करते हैं तब 'ततोविराडजायत विराजो अधि पूरुषः' दिखाई पड़ते हैं। इन सब का अंततः आधार बनता है- शब्द। इस शब्द की सर्वाधिक उपयोगी मीमांस आचार्य दंडी करते हुए दिखाई पड़ते हैं। उनका पक्ष है- 'इदमन्धः तमःकृत्सनं जायते भुवनत्रयं यदिशब्दिराज्योतिः संसारान् न दीप्यते' अर्थात् ये तीनों लोक घने अंधकार में डूबे रहते, यदि उसे शब्द की ज्योति प्रकाशित न करती। यह शब्द की ज्योति ही अनुवाद है। भारतीय साहित्य परंपरा में इसका पाट बहुत विस्तीर्ण है। प्रस्तुत शोध आलेख में इसी परंपरा पर यथामति कुछ कहने का प्रयास किया जा रहा है।

आज यह अनुवाद की परंपरा न होती तो हम भारतीय और विदेशी साहित्य के महत्वपूर्ण ज्ञानानुभवों से वंचित रह जाते। यहाँ समस्त भारतीय साहित्य के साक्ष्य पर अनुवाद की इस परंपरा की पुष्टि की जा रही है। इसमें क्रमशः असमिया, ओडिया, उर्दू, कन्नड, कश्मीरी, कोंकणी, गुजराती, डोगरी, तमिल, तेलुगु, नेपाली, पंजाबी, मलयालम, मैथिली, संस्कृत, सिंधी और हिंदी भाषाओं के अनूदित साहित्य परंपरा की चर्चा करने जा रहा हूँ।

असमिया साहित्य में लगभग 2350 पुस्तकों आज हमारे सामने विभिन्न भारतीय भाषाओं और विशेषतः हिंदी में उपलब्ध हैं। कुछ उल्लेखनीय कृतिया हैं- 'महापुरुष शंकर देव की कृतियों पर विमल कुमार फुकन ने अंग्रेजी में एक पुस्तक की रचना की थी- Shrimanta Shankardewa Vashnav Sant of Assam पुस्तक का प्रकाशन 2012 में हुआ था। अंग्रेजी से हिंदी में इसका अनुवाद छइदुल इस्लाम ने किया। इससे शंकरदेव की कृतियों की समीक्षा (168 पृष्ठों) में की गई है। सामाजिक समरसता की दृष्टि इस कृति का महत्वपूर्ण योगदान है। शंकरदेव की संकलित पुस्तक - 'भक्ति रत्नाकर' का अनुवाद डॉ. सोनाली बरा हजारिका ने किया। 'श्री कृष्ण कर्णामृतम' का अनुवाद डॉ. अशोक कुमार गोस्वामी ने किया। दलाई लामा की 'आत्मजीवी' का असमिया में, 'हमारे देश आरुमोर मानुह' शीर्षक से अनुवाद इंद्रानी लस्कर ने किया। गोपीचंद नारंग की पुस्तक 'संरचनावाद' का असमिया में अनुवाद 'गगै बरगोहा जिने संयुतिवाद, उत्तर संयुतवाद आरु प्राच्य' काव्यतत्व शीर्षक से किया है। उर्मिला चक्रवती द्वारा शरतचंद के उपन्यास 'श्रीकांत' का असमिया अनुवाद उर्मिला चक्रवती ने किया है। टॉल्सटाय के 'बार एंड मीस' का असमिया में अनुवाद सुरेश शर्मा ने 'युद्ध और शांति' शीर्षक से किया है। इसी प्रकार से साहित्य की सभी विधाओं का परस्पर अनुवाद उपलब्ध है। यही कारण है कि आज हम सभी भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के साहित्य से पूरी तरह परिचित हो

पाते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की आत्मजीवनी को भूपेंद्र राय चौधरी ने मोर सत्यर अन्वेषण (मेरे सत्य का अन्वेषण) नाम से अनूदित किया। विपुल देउरी ने आमिशू की कृति 'शिव त्रयीवृत्तिर द्य अथ अवद्य वायु पुत्र' नाम से अनूदित किया। इसी क्रम में कुछ अन्य अनूदित पुस्तकें इस प्रकार हैं, यथा- प्रचंड माओवादी : विद्रोहर अन्य नाम (नेपाल के माओवादी नेता प्रचंड पर आधारित है, मूलः अनिर्वान राम, अनुवादक महेश डंक), विज्ञानत ईश्वरर संकेत (विज्ञान में ईश्वर का संकेत, मूलः मणिभौमिक, अनु. गोविंद प्रसाद भूञा), द्य टिछार आफ लाइट (प्रतिबंधी हैलेने केलर की दुःसाहसिक कथा, मूलः हैलेन एलमिरा आवटे, अनु. डॉ. वीणा लहकर), काला घोड़ा रंडा जोन (काला घोड़ा लाल चाँद, मूलः फेडेरिका गार्थिया लरकार, अनु. ज्ञान पुजारी) छोहा गिनीर लगत एब छट (सोहागिनी के साथ वर्षभर, मूलः विनायक वंद्योपाध्याय, अनु. मिनु देवी), अंतर्घात (मूलः वाणी बसु, अनु. निरूपमा बरूआ फुकन), तुमि विज्ञानी छह खोजा ने कि क्या तुम वैज्ञानिक होना चाहते हो (मूलः ए. पी. जे अब्दुल कलाम, अनु. जयंत माधव बरा), अवैध प्रणय (मूलः पाओल कोवालिओ, अनु. प्रशांत दत्त), हैमंतर पखी (हेमंत का पंछी, मूलः सुचित्रा भट्टाचार्य, अनु. दीप्ति फुकुन पाटगिरि), मैहुर (बेडी उपन्यास, मूल : धरणीधर ओवारी, अनु. वीरहासगिरी बसुमतारी), समर्पण (मूलः के.बी. नेपाली, अनु. वीणा शर्मा), लुप्त नदी सरस्वती (मूलः मणिरत्न मुखोपाध्याय अनु. गोविंद प्रसाद भूञा) षडजंत्रट शिकार नेताजी (साजिश के शिकार नेताजी, मूलः अनुभव धय अनु. रबीन शइकीया), जेलर भितरत जेल (जेल के अंदर जेल, मूलः मीनाक्षी सेन, अनु. अंजलि चक्रवर्ती), महामोह (उपन्यास, मूलः प्रतिभाराय, अनु. कविता दत्त गोस्वामी) के अतिरिक्त तपेश्वर शर्मा ने 'उपनिषदों' का, सुरेंद्र कुमार दास ने 'स्कंदपुराण' का, डॉ. जयकांत महंत ने 'भविष्य पुराण' का, चाकिराम ठाकुरीया ने 'अठारह पुराणों' का असमिया में अनुवाद किया है। रूस की कुछ प्रसिद्ध कहानियों का प्रदीप कुमार ने 'राछियान लेखकर एमुठि विश्वविख्यात गल्प' शीर्षक से अनुवाद किया है। (वार्षिकी 2015 भारतीय साहित्य सर्वेक्षण, पृ. 30, 31) उपर्युक्त अनुवाद साहित्य के अतिरिक्त एक सुदीर्ध अनूदित साहित्य परंपरा असमिया में उपलब्ध है। असमिया भाषा मूलतः पूर्वी मागधी से उद्भूत है। इसमें 13 स्वर एवं 41 व्यंजन हैं। हिंदी से अतिरिक्त कुछ वर्ण असमिया में हैं, यथा- 'ज' जैसा उच्चारण, त्। सामान्य उच्चारणगत अंतर के अतिरिक्त असमिया और हिंदी वर्णों में कोई विशेष भेद नहीं है। असमिया में हिंदी की तरह तत्सम तथा तद्भव शब्दों के प्रयोग होने के कारण दोनों भाषाओं में विशेष साम्य लक्षित होता है। असमिया में वाक्य संगठन कर्ता-कर्म-क्रिया से होता है। हिंदी की तरह लिंग या कारक का प्रभाव क्रिया पर नहीं है।

ओडिया में अनुवाद की परंपरा पर विचार करने के पूर्व उसकी भाषीय प्रकृति जो अनुवाद में सहायक होती है, उस पर विचार कर लेना अपेक्षित है। यह एक प्राचीन एवं समृदध भाषा है। इसमें 70 प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से गतिमान होकर जब ये शब्द हिंदी में आते हैं तो वे या तो यथावत ओडिया में प्रयुक्त होते हैं अथवा हिंदी की महाप्राण ध्वनियों का ओडिया में अल्प प्राण हो जाता है। जैसे- हस्त, हत्थ, हाथ (हिंदी) = हात (ओडिया)। दोनों का वर्णक्रम एक सा है। उर्दू को छोड़कर सभी भारतीय भाषाओं में हैं- अ, आ से लेकर ह तक लिपि भी हिंदी की भाँति ओडिया की भी देवनागरी है। जहाँ तक इसके अनुवाद के इतिहास का प्रश्न है, यह अत्यंत समृद्ध है। इसीलिए इसे शास्त्रीय भाषा का दर्जा प्राप्त है। साहित्य में अनुवाद का विशेष महत्व है। इसी के माध्यम से विश्वभर की भाषाओं का ज्ञानबोध संभव है। भारत जैसे बहुभाषी देश में केवल साहित्यिक अनुवाद ही नहीं, अपितु ज्ञान-विज्ञान से संबंधित रचनाओं का भी अनुवाद रहा है। ओडिया में अनुवाद साहित्य की एक समृद्ध परंपरा उपलब्ध है। यहाँ हिंदी, अंग्रेजी बांग्ला और कई प्रादेशिक भाषाओं से ओडिया में पर्याप्त संख्या में साहित्यिक कृतियों का अनुवाद होता आ रहा है। ओडिया अनुवाद साहित्य में कई श्रेष्ठ अनुवादक हैं। इनमें से प्रमुख हैं- जुगल किशोर दत्त, श्री निवास उद्गाता, चितरंजन दास, कुमार हसन, रघुनाथ महापात्र, विलसिनी महंति, रवींद्र कुमार प्रहराज, प्रभाकर स्वई, शंकुतला बलियार सिंह, क्षीरोद परिड़ा, विजय कुमार मंहांति,

वैष्णवचरण परिड़ा, दीप्ति प्रकाशन, आर्यकुमार हर्षवर्धन, विनय कुमार दास, संग्राम जेना आदि। कुछ उल्लेखनीय अनुवाद कार्य हैं- डॉ. शुकुंतला बलियार सिंह ने 2015 में 'तमिल' उपन्यास का अनुवाद किया। ओडिया में अनूदित उपन्यास नाम है- 'काबेरी भकि झिअटिर' से साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। मनोरमादास ने पद्मभूषण राजा राव के अंग्रेजी उपन्यास कठेपुर का ओडिया में अनुवाद किया। इसे भी साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसमें स्वाधीनता पूर्व गांधीवादी आंदोलन का चित्र देखने को मिलता है। किशोर मकवाणा द्वारा लिखित हिंदी उपन्यास 'कमन म्यान नरेंद्र मोदी' का ओडिया अनुवाद गौर हरि पंडा द्वारा किया गया है। इसमें प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की जीवनी, व्यक्तित्व लोकसंपर्क, योजनाएँ और विविध विषयों को रेखांकित किया गया है। अरुण परेरा द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखित कॉलरस ऑफ दि कंज 'पुस्तक का अनुवाद अरविंद कुमार मिश्र ने ओडिया में किया है- 'वर्णिल पंजुरी। इसमें वंदी जीवन की अुनभूति का वर्णन किया गया है। बांग्ला की प्रसिद्ध महिला कथाकार-आशापूर्ण देवी और शक्ति मुखोपाध्याय के बांग्ला उपन्यास देवी और शक्ति मुखोपाध्याय के बांग्ला उपन्यास का उमाराणी पात्र ने ओडिया भाषा में अनूदित किया है। अनूदित पुस्तक का शीर्षक है- दुई शिविर एवं अवनी दादा ओ सती भाउज। केंद्र साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत अनुवादि का विलासिनी महांति के द्वारा 45 रूसी कहानियों का ओडिया में अनुवाद किया गया है। ये कहानियाँ 23 प्रख्यात रूसी कहानीकारों द्वारा लिखी गई हैं। ओडिया में अनूदित पुस्तक का नाम श्रेष्ठ रूसीय गल्प है। अनुवादिका श्रीमती महांति को निसर्गरग नामक एक और अनुवाद पुस्तक भी प्रकाशित है। यह एक लघु उपन्यास है। सीताकांत महापात्र ने अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं का ओडिया में अनुवाद किया है। बांग्ला भाषा में लिखित रवींद्रनाथ ठाकुर की 'रवींद्रनाथङ्क एक शह एक कविता' 'सच्चिदानंद राउतराय के द्वारा ओडिया में अनुवाद किया गया है। सौम्य मुखी (मूल रचना- आचार्य महाप्रज्ञ- अनुवाद - तुलसी जैन), गोष्ठी र घ्राण (कहानी-संकलन) अनुवाद-जयकृष्ण सामल, आदर्श मातृत्व ओ देव मानवत्व (मूल अंग्रेजी - एलिओ सचदेव अनुवाद नरहरि भद्र) अन्य रकमर अमरीका (मूल उर्दू कृशनचंदर- अनुवाद समरेंद्रनायक)। इस प्रकार देखा जाए तो ओडिया का अनूदित साहित्य बहुत ही समृद्ध है।

कश्मीरी में अनुवाद का कार्य अत्यधिक नहीं हुआ है। अनुवादों के माध्यम से आज कश्मीर की मूल आत्मा को समझने में बहुत सहायता मिलती है। कुछ अनुवाद कार्य इस प्रकार हैं- श्री जवाहर लाल तिक्कू कोसम ने 'दुर्गा सप्तशती' का अनुवाद संस्कृत से कश्मीरी भाषा में किया है। 'मोखतस करियम' का अनुवाद 'मोतियों की गूंथा माला' शीर्षक से किया गया है। यह कार्य महाराज कृष्ण संतोषी द्वारा संपन्न किया गया है। केंद्र, जम्मू द्वारा कश्मीर के शैवाचार्य वसुगुप्त की 'शिवसूत्र' पुस्तक का डॉ. चमनलाल रैणा ने अंग्रेजी तथा कश्मीरी में किया है।

'कोंकणी' साहित्य में अनुवाद कार्य तेजी से हो रहा है। भक्ति के आवेग पुस्तक माणिकराव रामनायक गावणेकर द्वारा लिखी गई है, जिसमें श्री रामकृष्ण परम हंस की अमृतवाणी का अनुवाद किया गया है। प्रशांती तळपणकार ने शशि देशपांडै लिखित मूल अंग्रेजी उपन्यास का कोंकणी अनुवाद 'दीर्घ मौनतें' अर्थात् 'दीर्घ मौन वह' शीर्षक से किया गया। यह अनूदित कृति साहित्य अकादमी के अनुवाद पुरस्कार से पुरस्कृत है। जीवन और स्वास्थय नाम से मराठी का उपन्यास कोंकणी में अनूदित रूप में आया है। अनुवादक का नाम है शुभांगी उदयनगसेंकार। निरोगी जीवन के उपाय के कारण यह जीवन उपयोगी उपन्यास माना जाता है। इसके मूल लेखक एस. एच. नायक और अनुवाद करने का कार्य रमेश लाड ने किया है। जीवन के अनुभवों, विचारों के मोती मानव विकास की संकल्पना लेकर यह पुस्तक, कोकणी साहित्य में अपना अलग ही स्थान प्राप्त करती है। मणिकराव रामनायक ने 'उपनिषद उध्यात्म' का संस्कृत से कोंकणी में अनुवाद किया है।

गुजराती साहित्य अनुवाद की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। गुजराती की लिपि देवनागरी ही है, इसीलिए गुजराती से हिंदी में अनुवाद अधिक कठिन नहीं माना जाता। कुछ गुजराती क्रियाएँ प्रकारांतर से थोड़े ही परिवर्तित रूप के साथ हिंदी अनुवाद में प्रयुक्त की गई हैं। यथा- जाय का जाएँ, 'भूली गया' भूल गए, 'पटाब्या' का पटाया, 'लपटाव्या' का लपेट में ले लिया, 'कहयु'

का कहा, 'तप कार्यु' का तप किया, 'मागे छे' का मांगती है और 'शापदीधो' का शाप दिया आदि। मूल गुजराती में आए संस्कृत के तत्सम शब्द हिंदी में भी यथारूप अथवा तनिक फेर के साथ ग्रहण किए जा सकते हैं। यथा- 'एकवार' का एक बार, तब, इंद्रासन, श्रवणदोस, देवाधिदेव जैसे शब्द दोनों में एक समान प्रयुक्त होते हैं, किंतु 'तपोबल्वे' का तपोबल से यहाँ गुजराती ळ वर्ण का हिंदी ल वर्ण है। इसी प्रकार 'कुशळ' का कुशल' हो जाता है। गुजराती 'तुं', और 'मैं' जैसी सार्वनामिक संज्ञाओं का हिंदी प्रयोग 'तू' और 'मैं' के रूप में किया जाता है।

श्री चंद्रकांत देसाई ने जर्मन कवि गेटे के विश्वप्रसिद्ध पद्यनाटक फाउस्ट का मूल जर्मनी भाषा से गुजराती में अनुवाद किया है। सन् 1832 में लिखे गए इस जर्मन पद्यनाटक के प्रकाशन के बाद करीब पौने दो सौ साल तक किसी भारतीय भाषा में फाउस्ट का संपूर्ण अनुवाद नहीं हुआ था। अमरीका निवासी मूल गुजराती अनुवादक श्री चंद्रकांत देसाई ने इसका गुजराती अनुवाद करके एक महत् कार्य किया है। 560 डबल क्राउन साइज के इस वृहद ग्रंथ का अनुवाद स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों पर प्रभुत्व के बिना संभव नहीं था। चंद्रकांत देसाई ने बड़ी सजगता से और मेहनत से यह अनुवाद करके गुजराती भाषा को समृद्ध किया है। वणजोयु मुहरत दक्षा पटेल द्वारा गुजराती में अनूदित भारतीय भाषाओं की कहानियों का संग्रह है। हिंदी और अंग्रेजी में अनूदित भारतीय कहानियों में से चयन करके अनुवादक ने यह अनूदित पुस्तक दी है। (उषा उपाध्याय: 118-119, वार्षिकी 2017)।

डोगरी में अनुवाद में हुए कार्य के संबंध में प्रदीप गोस्वामी ने लिखा है- 2015 में डोगरी में तीन महत्वपूर्ण अनुवाद सामने आए हैं-

1. सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी लाला जगत नारायण की प्राचार्य सेवाराम प्रभाकर द्वारा लिखित जीवनी का अनुवाद है। यह एक बहुमूल्य कृति है। अनुवादक-द्वय यशपाल निर्मल और सुनीता भडवाल ने सफल अनुवाद किया है।

2. साहित्य अकादमी नई दिल्ली की एक परियोजना के अंतर्गत जिन पुस्तकों को साहित्य-अकादमी पुरस्कार मिलता है, उनका अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित किया जाता है। इसी योजना में यशस्वी उर्दू कथाकार रामलाल के पुरस्कृत कहानी संग्रह का डोगरी अनुवाद इसी शीर्षक से प्रकाशित किया गया है। इस कहानी संग्रह में लेखक की इक्कीस कहानियाँ संकलित हैं। कहानी संग्रह के अनुवादक नरसिंह देव जंबाल उर्दू की विशेष जानकारी रखते हैं। इससे प्रस्तुत अनुवाद बेहद उपयोगी बन पड़ा है।

3. दुर्गास्तुति- मार्कंडेय पुराण के दुर्गास्तुति वाले अंश का डोगरी अनुवाद डॉ. ज्ञान सिंह द्वारा किया गया है। पुस्तिका के अंत में माता की स्वरचित आरती (डोगरी) भी दी गई है (वार्षिकी 2015 पृ.92-93)।

मराठी में अनूदित अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ हमें प्राप्त होती हैं। अंग्रेजी के लोकप्रिय उपन्यास, देश दुनिया में घट रही घटनाओं पर आधारित पुस्तकें, विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य मराठी में उपलब्ध है। भैरप्पा की पूरी कन्नड ग्रंथ-संपदा का डॉ. उमाकुलकर्णी मराठी में सीधे अनुवाद कर रही हैं। कोई न कोई पुस्तक प्रतिवर्ष आती ही है। 2015 में भैरप्पा के उपन्यास का मराठी अनुवाद उन्होंने किया-शीर्षक- पारखा (हिंदी में 'पराया') इस उपन्यास पर गिरीश कर्नाड ने गोधुलि नामक फिल्म भी बनाई थी। उमा कुलकर्णी ने माधव कुलकर्णी की कहानियों का अनुवाद दो बूढ़े एवं अन्य कहानियाँ शीर्षक से किया। ये दोनों कृतियाँ मराठी में चर्चित तथा लोकप्रिय रहीं। देश का चेहरा बदलने वाला चुनाव, 'राजदीप पर सरदेसाई' पुस्तक का अनुवाद सुनंदा अमरा पुरकर ने किया है। यह सत्यकथा है। अमानुष युद्ध के कारण लादे गए मातृत्व और अपगत्व से दुर्दम्य संघर्ष की कथा। चंद्रकांत भोजाल ने भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त व्यक्तियों की सामग्री का अनुवाद एक ग्रंथ के रूप में किया है। आसावरी काकडे ने दामेदार खड़से के कविता संग्रह, 'तुम लिखो कविता', का पद्यमय अनुवाद किया है। डॉ. गजानन चह्वाण ने दामोदर खड़से के दूसरे काव्य संग्रह 'ग्रह' का मराठी में अनुवाद 'प्रकाश परेतांना' शीर्षक से किया (वार्षिकी 2015 पृ. 151, 152)।

मैथिली साहित्य में विविध भाषाओं की विधागत सामग्री अनूदित हुई है। सन् 2017 ई. साहित्य अकादमी ने पाँच पुस्तकों का मैथिली भाषा में अनुवाद कराया।

'आधुनिक भारतीय कविता संचयन' (सन् 1950 ई. से 2010 ई. तक) के हिंदी और सिंधी से मैथिली अनुवाद प्रकाशित हुआ है। सिंधी से मैथिली में अनुवाद फूलचंद सा-प्रवीण ने किया। सिंधी में संचयन का संपादन वासुदेव मोही ने किया। नेपाली उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र छेउछयुक' (ले. लालबहादुर क्षेत्री) का मैथिली अनुवाद डॉ. अशोक अविचल ने किया है। इस उपन्यास में भारी संख्या में बस गए नेपालियों के विस्थापन और रोजी-रोटी के लिए उनके संघर्ष की गाथा है।

साहित्य अकादमी ने गुजराती उपन्यास 'असूर्यालोक' का भी मैथिली में अनुवाद शालिनी झा ने किया है। अनुवाद के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है 'कुसल' का मैथिली अनुवाद। तमिल संत तिरूवल्लुवर की अमर रचना 'कुसल' तमिल रचना के लिए वेद तुल्य सम्मानित है। इसके अतिरिक्त एक बांग्ला उपन्यास 'मानव जमीन' का मैथिली अनुवाद साहित्य अकादमी ने प्रकाशित कराया है। इस उपन्यास के लेखक शीर्षेंदु मुखोपाध्याय हैं और अनुवाद किया है शालिनी झा ने (वार्षिकी 2017 पृ. 232-233)।

तमिल साहित्य में अनुवाद की सर्वाधिक लंबी विरासत है। मस्ती बेंकटेश अय्यगर द्वारा रचित 'मस्ती सिरूक दैगल' जो कन्नड भाषा में है उसका अनुवाद शेषनारायण ने तमिल में किया है। महीपसिंह कृत 'गुरु गोविंद सिंह' का अनुवाद तमिल में अलमेलु कृष्णन ने किया। असमी भाषा की पुस्तक का तमिल में अनुवाद एम. सुशीला ने आशीर्वादतिन वानम नाम से किया। काशीनाथ सिंह कृत 'रहन पर रग्गु' का तमिल में अनुवाद ज्ञानम ने 'पिनै कैदी' नाम से किया है। राचापालेम चंद्रशेखर रेड्डी कृत तेलुगु आलोचना का तमिल लेखक रुद्र ने तेलुगु नावलगल, सिरुकवैगल नाम से अनूदित किया। महाश्वेतादेवी के बंगाली उपन्यास का तमिल में अनुवाद काट्टिल उरमै नाम से एस. कृष्ण मूर्ति ने किया (वार्षिकी 2017 पृ. 153-154)

कन्नड साहित्य में अनुवाद की स्थिति अच्छी कही जा सकती है। इसमें कृ. शि. हैगडे द्वारा अनूदित कृत- कनसु ननसायितु है। इसके मूल लेखक श्री निवास लक्ष्मण हैं, पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित है। Dreams to Reality यह हमारे देश के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम जी की जीवनी है। इस कृति में हमारे युवावर्ग की चर्चा है। इस कृति का कन्नड़ अनुवाद सृष्टि का विजय संकेत बन गया है। इसीलिए इसे कनसु ननसायितुं (सपना साकार बन गया) नामक शीर्षक दिया गया है। इस कृति में अधिक मात्रा में वैमानिक, तांत्रिक, वैज्ञानिक, तकनीकी शब्दावलियों का प्रयोग हुआ है। इसमें डॉ. कलाम जी की उक्तियाँ भी मिलती हैं। अनुवाद कला पुनः सृष्टि है, इस बात की पुष्टि कनसु नसायितुं कराती है। विज्ञान साहित्य के अंतर्गत डी. बी. हेगडे की कृति 'विज्ञान कौतुकगळु।' इसमें कुल चौदह लेख हैं। (वार्षिकी 2005-06 पृ. 41)। तेलुगु साहित्य में अनेक अनुवाद कार्य हुए हैं। इसमें कुछ प्रमुख हैं- संगिशेट्टि श्री निवास द्वारा संपादित कहानी संग्रह 'सुरमौली कथलु' जैसे सर्जनात्मक कृतियों के अतिरिक्त अनूदित साहित्य पर भी बहुत कार्य हुआ है। 120 वर्ष पूर्व आर्मीनिया के रचनाकार होवेनस टुमेनियन द्वारा रचित बाल-साहित्य का पी. चिरंजीविनी कुमार ने कथलु-गाथलु (कथाएँ-गथाएँ) शीर्षक से तेलुगु में अनुवाद किया था। 1974 तथा 1982 में इसका प्रकाशन हुआ। कन्नड़ भाषा की प्रतिष्ठित पत्रिका अग्नि के संपादन अग्नि श्रीधर द्वारा रचित लघु उपन्यास येदगरिके (साहस) का सृजन तेगिपुं (साहस) शीर्षक से तेलुगु में अनुवाद किया है। 'अंधकारमेपे सम्मेटा देब्बा' अंधेरगर्दी पर करारी चोट, रमेश पोखरियाल निशंक के कहानी संग्रह टूटते दायरे का तेलुगु अनुवाद है।

मलयालम साहित्य अनुवाद की दृष्टि से बहुत व्यापक हो चला है। मलयालम का अनुवाद भी अन्य भारतीय और विश्वभाषाओं में हो रहा है। एक बूँद जिंदगी' एंटन चेख की चौदह लोकप्रिय कहानियों की परिभाषा है। पाठकों को चेख के रचनाकौशल की आत्मा में झाँकने का अक्सर देने वाले इस संग्रह में प्रणय, अंतहीन, एक कहानी, नाटक के बाद जैसी विश्वस्तरीय कहानियाँ भी शामिल हैं। नाईजीरिया के तेल कुओं पर अपने को कुर्वान करके वैश्वीकरण के कुप्रभावों को ललकारने वाले क्रांतिकारी थे- 'केन सरो'। उनकी जीवन गाथा है- 'मेरी कहानी'। मनोज कुमार द्वारा अनूदित रचना में केन सरो को फाँसी की सजा देने के पूर्व सैनिक अदालत में की गई पैरवी का पूरा ब्यौरा है।

सोलहवी सदी के विख्यात कारीगर बेन विनुटो वेल्लीनी की आत्मकथा का अनुवाद मोहन चंद्रन ने किया है। दो पत्नियों तथा अनेक अनैतिक नारी संबंधों में जूझने वाले चेल्लीनी की आत्मकथा विश्वस्तरीय रचनाओं की गणना में आती है। आत्मकथा पढ़ते हुए चेल्लीनी की संघर्षमयी जीवनगाथा के साथ-साथ नवोत्थान युग के इतिहास का भी पर्दाफाश हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में अनुवाद का स्वरूप बहुत व्यापक एवं आकर्षक है। जहाँ तक इसके महत्व का प्रश्न है, वह इससे स्पष्ट है कि बिना अनुवाद के आज हम विश्व को परस्पर समझने में असमर्थ हैं।

मेरी कुछ स्थापनाएँ हैं-

अनुवाद संस्कृति और विश्वमानव बोध का गोमुख है।

अनुवाद राष्ट्रीय एकात्म का बहुत बड़ा माध्यम है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में अनुवाद की महती भूमिका है।

भारतीय साहित्य के अध्ययन अध्यापन में अनुवाद पद्धति का महत्वपूर्ण योगदान कहा जा सकता है।

अंतरराष्ट्रीय अध्ययन अध्यापन में अनुवाद आज पूरी तरह से एक विकसित माध्यम बन चुका है।

व्यवसाय के रूप में अनुवाद की उपयोगिता स्वत: सिद्ध है।

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अनुवाद प्रभावी है।

औद्योगिक विकास में अनुवाद हमारा मार्गदर्शक है।

अनुवाद जनसंचार माध्यमों का पासवर्ड है।

बहुभाषी शिक्षा प्रणाली में अनुवाद आज गुरु की भूमिका में आ गया है।

जब हम अनुवाद के वर्तमान स्वरूप पर विचार करते हैं तो हमें यह आश्वस्ति प्राप्त होती है कि अनुवाद आज न केवल ज्ञान-विज्ञान के शैक्षिक संदर्भो में कार्य कर रहा है, अपितु मानवता की खाई को भी पाटने में सक्षम है। इस दिशा में भारतीय अनुवाद परिषद, दिल्ली, की महती भूमिका है। इसकी स्थापना डॉ. गार्गी गुप्त ने की थी। वर्तमान में डॉ. पूरनचंद टंडन इसके संचालन के दायित्व का निर्वहन कर रहे हैं। यहाँ से संचालित पाठ्यक्रम से विभिन्न उपक्रमों में अनेक अनुवाद कर्मी कार्य कर रहे हैं। डॉ. टंडन द्वारा अनुवाद त्रैमासिक पत्रिका का संपादन भी नियमित किया जा रहा है। परिषद द्वारा प्रकाशित पुस्तक जिसका नया संस्करण डॉ. टंडन जी द्वारा प्रकाशित किया गया है- 'अनुवाद का व्याकरण' एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें अनुवाद के वर्तमान स्वरूप स्थिति का पूरा परिचय पाठकों को मिलता है। ऐसी अन्य अनेक संस्थाएँ एवं अनुवाद साधक आज कार्यरत हैं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा और अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल का इस दिशा में उत्तम प्रयास जारी है। इस कड़ी में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की अनुवाद संबंधी कार्य की दिशाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण है।' कुल मिलाकर अनुवाद के वर्तमान स्वरूप एवं स्थिति को सर्वोत्तम कहा जा सकता है।

– 56 अशोक नगर, आधारताल, जबलपुर-482004 (म. प्र.)

❑❑❑

स्पंदन, संवेदना एवं भावना का अंत:संबंध अनुवाद के धरातल पर

डॉ. अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी

अनुवाद के इतिहास को जानने वाले बताते हैं कि भाषायी विभिन्नता के संसार में एक-दूसरे के साहित्य को बेहतर ढंग से समझने का अनुवाद ही एकमात्र जरिया है। भाषाओं की संपदा का मूल्यांकन करने तथा उसके साहित्य का आस्वाद करने के मार्ग में अनुवाद ही हमारा सबसे बड़ा सहारा होता है। भाषा के सौंदर्य का आद्यांत निदर्शन साहित्य में होता है। साहित्य के संबंध में ऐतिहासिक तथ्य बनाम भाषा का सौंदर्य विमर्श आज भी जारी है। अनुवाद की परिभाषा से हम सभी परिचित हैं पर क्या साहित्य में अनुवाद के संदर्भ में परिभाषाएँ हमारे किसी काम की हैं? यह बात तब और महत्वपूर्ण हो उठती है जब हम साहित्य में अर्थ के अभिप्राय पर विचार करते हैं। साहित्य की संवेदना क्या मात्र शब्दार्थ में ही निहित होती है? क्या प्रतिशब्द के व्यवहार से तथा व्याकरणिक अनुशासन की साधना से साहित्य को एक भाषा से दूसरी भाषा में व्यक्त किया जा सकता है? क्या अलग-अलग भाषाओं में व्यवहार किए जाने वाले शब्द समानार्थी हो सकते हैं? साहित्य में अनुवाद को प्रतिष्ठित करने के लिए इस कार्य से जुड़े हुए लोगों को इन प्रश्नों का उत्तर खोजना होता है। इसका कोई सर्वस्वीकार्य उत्तर नहीं दिया जा सकता है।

साहित्य भाषा में निबद्ध होता है। मानवीय संवाद का माध्यम भाषा स्थान, काल और पात्र की सीमा में बंधी होती है। भाषा एक बहता प्रवाह है। समय के साथ उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। स्थान भी इस परिवर्तन का एक कारक होता है। साधारण शब्द तक जटिलताएँ खड़ी कर देते हैं। एक निबंध में अज्ञेय ने लिखा है, "अंग्रेजी के डांसर शब्द के लिए इन पंक्तियों पर विचार कीजिए नर्तकी, नटनी, नचनी, नाचनेवाली। वैसे ये सभी काफी सुंदर पर्याय हैं। किंतु प्रत्येक में निहित भाव एक-दूसरे से कितना भिन्न हैं। प्रत्येक के उच्चारण मात्र से प्रकट होने वाले समाज या वर्गों के बीच कितनी दरार है।"[1] अनुवाद के संबंध में और इसी वज़ह से साहित्य में अनुवाद में भी, मूल रचना के प्रति ईमानदारी एक ऐसी प्रतिज्ञा है जिसका कोई एक सुनिश्चित अर्थ नहीं निकल सका है। जैसे नीबू का रस दूध को नष्ट कर देता है वैसे ही शाब्दिक अनुवाद भी मूल के अर्थ को विफल कर देता है। ज्यादातर भारतीय भाषाओं की पदावली में संरचनागत समता होती है। पर उनकी अर्थच्छटा समान नहीं होती। मराठी का शब्द शिक्षा अर्थ की दृष्टि से हिंदी से बहुत दूर है। बांग्ला भाषा का शब्द हिंदी से भिन्न अर्थ रखता है। फिर विभिन्न भाषाओं के समानार्थी शब्दों के विषय में क्या कहा जाए! इस कठिनाई से निपटने के लिए शब्द, वाक्य अथवा पैराग्राफ का अनुवाद न करके पूरे खंड का अनुवाद करना पड़ता है। इससे अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए लक्ष्य भाषा की पदावली पर जो दबाव बनता है वह किसी शब्द, वाक्य, पैराग्राफ आदि से हटकर पूरे खंड पर व्याप्त हो जाता है। इससे अनुवाद में जो असहजता आ सकती थी उसका निवारण हो जाता है।

साहित्य में अनुवाद का प्रश्न अन्य ज्ञान विधाओं में अनुवाद के प्रश्न से ज्यादा जटिल तथा बहुआयामी है। साहित्य में अनुवाद का काम अन्य विधाओं में अनुवाद के काम से कहीं अलग होता है। इस पार्थक्य का मुख्य कारण है साहित्य की अपनी विशिष्ट बुनावट। साहित्य में काव्यात्मक तरीके से संप्रेषण किया जाता है। साहित्य अपने पाठकों को मात्र सूचनाओं से ही अवगत नहीं कराता। वह अपने सौंदर्य के माध्यम से पाठकों की चेतना का स्पर्श करता है। साहित्यिक कृति की कलात्मक अभिव्यक्ति का एक विशिष्ट सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य भी होता है। इस सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से विचलित होकर साहित्यिक कृति का सफल संप्रेषण संभव नहीं होता। साहित्यिक कृतियों का अनुवाद एक विशिष्ट कौशल की अपेक्षा रखता है। अनुवाद में शब्दों का प्रति शब्द ही नहीं होता, वाक्यों के प्रतिरूप वाक्य ही नहीं होते। वरन उनमें सांस्कृतिक छवि की प्रतिछवि भी होती है। यदि ऐसा किया जाता है तभी साहित्यिक कृतियों का सफल अनुवाद हुआ ऐसा कहा जा सकता है।

साहित्य मन को स्पंदित करता है, संवेदनशीलता को बढ़ाता है और भावात्मक अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम बनता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लखनऊ विश्वविद्यालय की व्याख्यानमाला में साहित्य का मर्म नामक व्याख्यान में साहित्य-भावना के प्रश्न पर एक विलक्षण बात कही है। द्विवेदी जी कहते हैं कि अक्सर हम साहित्य पर अपने विचार बताने की चेष्टा करते हैं। यह अयुक्त है। वे कहते हैं कि इसकी जगह पर हमें साहित्य को पढ़ने के बाद अपने चित्त पर पड़े उसके प्रभाव की चर्चा करनी चाहिए। साहित्य अगर कुछ कर सकता है तो वह हमारे चित्र को प्रभावित ही कर सकता है। वह हमारे विचारों को प्रभावित करने का काम नहीं करता।[2] चित्त को प्रभाव में लेने में ही साहित्य की सार्थकता होती है। यह प्रभाव विचारों को स्पंदित करता है। भावना को उद्दीप्त तथा विचारों को पुष्ट करता है। डॉ. कुबेरनाथ राय ने साहित्य को मनोमय पुरुष अखाड़ा कहा है। साहित्य का सीधा प्रभाव वस्तुतः मन पर पड़ता है। मन इससे प्रभावित होता है। जिसे द्विवेदी जी चित्त कहते हैं साहित्य उसे सुवासित करता है।

साहित्य का काम है प्रकाशित करना। भारतीय मान्यता के अनुसार साहित्य शब्दात्मक ज्योति से अपने कथ्य को प्रकाशित करता है। जैसा डॉ. कुबेरनाथ राय के उक्त वाक्य से प्रमाणित होता है, साहित्य का यह प्रकाश मनोलोक को आलोकित करता है। साहित्य के अंगों में काव्य, उपन्यास, कहानियाँ, कथाएँ और आख्यायिकाएँ शामिल हैं। साहित्य में अनुवाद की चर्चा के प्रसंग में यह समझना महत्वपूर्ण है कि साहित्य भाषा में लिखा जाता है। भाषा एक सामाजिक थाती होती है। समाज जो अनुभव करता है उसे व्यक्त करने के लिए साहित्य भाषा का अभिनव रूप निखारता चलता है अथवा यह कहें कि अभिव्यक्ति के लिए आकुल समाज भाषा को नया तेवर देता जाता है। किसी खास भाषा में अभिव्यक्ति की जो भंगिमा विकसित होती है अनुवाद के लिए लक्ष्य भाषा में उस भंगिमा को जगा पाना हर बार संभव नहीं होता। ऐसी दशा में अनुवाद दुरूह बन जाता है। इस दुरूहता से अनुवादक को जो यंत्रणा होती है उससे मुक्त होना अनुवादक के लिए आवश्यक होता है ताकि अनूदित कृति प्रसन्न रूप में सामने आए। पर क्या हमने इस यंत्रणा से निपटने के लिए कोई सार्वभौम औषधि खोजी है? शायद नहीं। यह औषधि हर अनुवादक अपने-अपने तरीके से खोजता है।

भारत में साहित्य की समझ के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गहन विचार किया है। वे शब्द तथा अर्थ के विशिष्ट साहचर्य के अर्थ में साहित्य शब्द का प्रयोग करते हैं। मूलतः साहित्य शब्द का प्रथम प्रयोग करनेवाले आचार्य कुंतक का विचार है। कुंतक कहते हैं कि अर्थ की वक्रता के कारण विभिन्न गुणों और अलंकारों की शोभा एक-दूसरे से स्पर्धा करती हुई आगे बढ़ती है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि शब्द तथा अर्थ सामाजिक संबंधों के प्रतीक हैं। जैसे बाजार के व्यवहार में मुद्रा मूल्य का प्रतीक है उसी तरह शब्द मनुष्य के सामाजिक संबंधों के प्रतीक हैं। शब्द और अर्थ के 'साहित्य' को लेकर कारोबार करने वाली विद्या मनुष्य के सामाजिक रूप की व्याख्या करती है। इसलिए साहित्य के अध्ययन के लिए केवल पोथी में लिखे हुए लक्षण ही नहीं पढ़ने चाहिए। बल्कि बृहत्तर

मानव समाज का परिचय भी प्राप्त करना चाहिए। पं गोविंदचंद्र पांडे ने साहित्य में मानवीय यथार्थ की अभिव्यक्ति-प्रक्रिया पर विचार किया है। वे मानते हैं कि यह प्रक्रिया सर्वत्र समान रूप से नहीं चलती। उनका विचार है कि प्रकृति का तथ्यात्मक विवरण विज्ञान में मिलता है। परंतु प्रकृति की प्रतीति ही, उनके ही शब्दों में, काव्य के द्वार खोलती है। वे मानते हैं कि साहित्यिक रचना का नियामक तथ्य जगत न होकर चेतना जगत है। साहित्य चेतना की स्वाधीन अभिव्यक्ति है। साहित्य अंततः अपने पाठक को जड़ता तथा परतंत्रता से उबारता है तथा उसे चेतना के स्वायत्त जगत में ले जाता है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने कहा है कि मानवीय मूल्यों के साथ साहित्य का एक बड़ा सरोकार है। इसका प्रयोजन मनुष्य और मनुष्य के बीच के मूल्य को लेकर है। वे साहित्य को मूल्य की कसौटी पर कसना चाहते हैं। वे मानते हैं कि साहित्य के कोई बने-बनाए मूल्य नहीं होते। साहित्य की स्वायत्तता के लिए यह आवश्यक होता है कि वह बने-बनाए मूल्य को अस्वीकार करे। पुराने मूल्य काफी धुंधले हो गए हैं, घिस गए हैं, उनकी न आकृति पहचान में आती है न उनके मूल्य का परिणाम ही पहचान में आता है। मूल्यों की प्रासंगिकता की जांच करना भी साहित्य का एक प्रयोजन है। यह प्रासंगिकता अपने युग की दृष्टि से ही नहीं आगे की संभावना को भी सामने रखकर जाँची जानी चाहिए।

साहित्य की प्रकृति पर विचार करते हुए डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने इसे वाक् संस्कृति की सौंदर्य धारा कहा है। वे मानते हैं कि साहित्य में सत्य और शिव की अभिव्यक्ति सौंदर्य के धरातल से ही विशिष्ट सौंदर्य-भंगिमा में होती है। श्री अरविंद का मत है कि साहित्य और कलाएँ अपने निर्माण के समय आंतरिक सत्ता से, प्राण से तथा अंतर्मन से संपर्क करती हैं। साहित्यकार तथा कवि के पास जरूर कोई ऐसा मन होता है जिससे साहित्य तथा काव्य स्वाभाविक रूप से अनायास निकलता है।

साहित्य में अनुवादः स्पंदन का संबंध

मानव चित्त में स्पंदन उत्पन्न करने की सबसे प्रभावी साहित्यिक विधा है कविता। कविता मनोमय भूमि पर उपजती है तथा कवि की प्रतिभा उसे फलप्रसू बनाती है। अनुवादक का यह दायित्व होता है कि वह उस मनोभूमि पर जाए और अनुवाद को मानवीय चित्त में स्पंदन लाने योग्य रूप में प्रस्तुत करे। मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उसे कविता कहा है। वड्र्सवर्थ ने भी इसी को बलवती भावों का सहज उच्छलन कहा है। मूल कृति का यह काव्योत्कर्ष अनुवाद में भी लाना होगा। शब्दों की संस्कारजनित गूंज कविता है। पद की झंकृति कविता है। भाषा के भीतर अंतः सलिला की तरह जो भाव विद्यमान होते हैं कविता, खासतौर पर उदात्त कविता, उसे व्यक्त करती है। लय तथा छंद कविता को उसी प्रकार सजाते हैं जैसे फूल को उसके दलपत्र तथा उसकी सुवास। अनुवादक कविता के किस पक्ष का अनुवाद करे - कविता के संदेश का, उसकी शब्द झंकृति का, उसके लय विधान का या उसकी छंद योजना का। इससे भी ऊपर और इन सबसे असंपृक्त एक और आयाम है कविता का और समग्र साहित्य का। यह है सांस्कृतिक परिवेश। अनुवादक इन्हें कैसे, किस प्रकार बरते इसकी चुनौती अनुवादक के सामने हमेशा रही है। तभी तो डॉ. जॉनसन ने कहा कि काव्य का अनुवाद कभी नहीं किया जा सकता।

कवि अपनी मनोभूमि पर अनुभूति की जो उपलब्धियाँ पाता है उसे वह शब्दों में सौंदर्यात्मक रूप से व्यक्त करता है। शब्दों के माध्यम से जो सौंदर्य सृष्टि होती है अनुवादक उसे अपनी विशिष्ट योग्यता के बल पर दूसरी भाषा में लाता है, परिवर्तित नहीं करता। शब्दकोश की मर्यादा, व्याकरण का अनुशासन पदबंधों की वर्जनाएँ उसे रोकतीं हैं। पर वह उसकी परवाह नहीं करता। शब्दकोश अनुवाद के काम में अनुवादक का सबसे बड़ा सहारा होता अवश्य है, पर वहाँ तो उसे सिर्फ अभिधार्थ ही मिलता है। मूल कविता ध्वन्यात्मक प्रभाव डालती है। अनुवाद में प्रभाव उत्पन्न कर देना ही स्पंदन का आह्वान है। अनुवाद में यह होना वैकल्पिक नहीं, अनिवार्य होता है। तमिल कविता में जो शब्द व्यवहार किए जाते हैं उनकी ध्वनियों का प्रभाव तत्सम प्रयोग बहुल हिंदी में लाना कठिन होता है। ऐसी ही कठिनाई भारतीय भाषाओं की कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत करते समय महसूस की जाती है। ऐसा

इसलिए कि भारतीय कविता वर्णों एवं मात्राओं पर ध्यान देती है जबकि अंग्रेजी कविता सिलेबल पर।

काव्य एक परम संश्लिष्ट कला है अत: किसी एक ही तरीके से उसका अनुवाद नहीं किया जा सकता। कविता का प्रभाव उसके कथ्य एवं कथन (content and expression) के मणिकांचन संयोग से बनाता है। स्रोत भाषा में यदि यह संयोग बनता है तो आवश्यक नहीं कि वह संयोग लक्ष्य भाषा में भी बन जाए। इस संयोग की सिद्धि में ही साहित्य के अनुवाद की सफलता है। वैसे यह एक कठिन साधना है तथापि अनुवाद के माध्यम से मूल कृति का स्पंदन अनूदित कृति में अंतरित करने में जो अनुवादक सफल हुए हैं उनमें फिट्जराल्ड का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने उमर खय्याम की रुबाइयों के अंग्रेजी अनुवाद से यह ऊँचाई पाई है। इस अनुवाद में उन्होंने अपनी ओर से बहुत कुछ जोड़ा। वे कहते हैं अनुवादक को अपनी रुचि के अनुसार मूल को फिर से ढालना चाहिए। उनकी बहु उद्धरित उक्ति है, 'भूसा भरे गीध की अपेक्षा मैं एक जीवित गौरैया चाहूँगा।' काव्य के अनुवाद और उसके माध्यम से संवेदना मुखर करने के संबंध में असमिया के एक अमर गीत का हिंदी अनुवाद यहाँ देखा जा सकता है:

विस्तीर्ण पार रे
असंख्य जनरे
हाहाकार सुनिउ
नि:शब्द निरबे
बुरा लुइत, तुमि
बोरा लुइत, बोआ किय?
इसका हिंदी अनुवाद देखें:
विस्तार है अपार
प्रजा दोनों पार
करे हाहाकार
नि:शब्द सदा
ओ गंगा, तुम
ओ गंगा बहती हो क्यों?

काव्य के माध्यम से स्पंदन जगाने में भाषा क्या कर सकती है। उक्त गीत का यह अनुवाद एक अच्छा प्रतिमान है। अपने अनुवाद में लुइत (ब्रह्मपुत्र) को गंगा बनाकर पंडित नरेंद्र शर्मा ने इस अनुवाद को अमर कर दिया है। पर यहाँ ध्यान देने की बात है यह अनुवाद सहजात भाषाओं के बीच हुआ है। अत: यह प्रभाव संभव हो सका है। पर असहजात भाषाओं में अनुवाद का ऐसा प्रभाव नहीं पड़ेगा ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। खुशवंत सिंह ने एक बार प्रस्ताव किया था कि यूनेस्को आदि ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद कराए। इस प्रस्ताव पर डाक्टर हुमायूँ कबीर ने उनसे पूछा था कि क्या आप समझते हैं कि इसका अनुवाद किया जा सकेगा। खुशवंत सिंह ने कहा – हाँ, उसका अनुवाद किया जाना चाहिए और किया जा सकेगा। आगे चलकर उनके प्रयास से आदि ग्रंथ का एक सुंदर अनुवाद संभव हुआ। असहजात भाषाओं में कविता के अनुवाद के प्रसंग में बोरिस पास्तरनाक की एक कविता का धर्मवीर भारती द्वारा किया गया उदाहरण देखा जा सकता है: This is the end of me but you live on-

The wind crying and complaining
Rocks the house and the forest
मैं व्यतीत हुआ, पर तुम अभी हो, रहो
हवा चीखती, चिल्लाती हुई हवा-झकझोड़ रही है
मकानों को जंगलों को।

साहित्य में अनुवाद : संवेदना का संबंध

हमारी परंपरा में मानव जगत को एक जाति के रूप में देखा गया है। *एको मानुषी जाति तथा भ्रातारो मनुजा सर्वे स्वदेशो भुवनत्रयम* – इन वाक्यों में यह भाव मुखर हुआ है। पर इस एकता का सूत्र क्या है? अनेक प्रकार से इसका उत्तर देने का प्रयास किया गया है। पर शायद एकता का सबसे मजबूत सूत्र संवेदना है। किसी को लगी चोट से खुद को चोटिल अनुभव करना उसके हर्ष में स्वयं हर्षित होना इस मानव स्वभाव का खाद पानी है। इस खाद पानी का सबसे बड़ा स्रोत साहित्य है। कहानी और उपन्यासों के सागर में संवेदना के मोती मिलते हैं। इन्हें पाकर मनुष्यता धन्य हुई जाती है।

संवेदना की मुखर अभिव्यक्ति के लिए भाषा एक प्रामाणिक और सार्वभौम माध्यम है किंतु यदि संवेदना भाषा की सीमाओं को पीछे छोड़ते हुए आगे निकलना चाहे तो अनुवाद ही उसका माध्यम बनेगा। प्रो. वी वै ललितांबा ने बहु भाषाभाषी समाज में अनुवाद को संप्रेषण का एक उपकरण माना है। आर्थिक दृष्टि से यदि उदारीकरण और निजीकरण वैश्वीकरण के वैतालिक

हैं तो अनुवाद सांस्कृतिक वैश्वीकरण का सबसे बड़ा पृष्ठपोषक है। विश्व मन को यदि एक होना है तो लोकजीवन में बहुलता से व्यवहार किए जा रहे अर्थगर्भ शब्दों, सरल मुहावरों, गूढ़ पहेलियों और उलटवाँसियों को अनुवाद के माध्यम से प्रकाशित करने की चेष्टा करनी होगी। अंतरराष्ट्रीय समझबूझ को बढ़ाने तथा राष्ट्र की भावात्मक एकता को मजबूत करने के लिए अनुवाद का सहारा लेने की ऐतिहासिक परंपरा रही है। बंगाल के पुनर्जागरण में श्री रामकृष्ण परमहंस की महत्वपूर्ण भूमिका रही। उनके कृपापात्र श्री महेंद्रनाथ गुप्त (मास्टर संबोधन से समादृत) ने उनके लीला प्रसंग को बांग्ला में लिपिबद्ध किया। श्रीरामकृष्ण कथामृत नाम से विख्यात हुई इस बांग्ला कृति का हिंदी अनुवाद सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने श्रीरामकृष्ण वचनामृत नाम से भक्तों के सामने रखा। इस कृति का अंग्रेजी अनुवाद स्वामी निखिलानंद ने The Gospel of Shri Ramakrishana नाम से किया।

बांग्ला में रचित श्रीरामकृष्ण कथामृत के हिंदी अनुवाद ने देश के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में बड़ी भूमिका निभाई तथा इसके अंग्रेजी अनुवाद ने समकालीन भारतीय अध्यात्म विमर्श में बंगाल के अवदान को देश -विदेश में प्रतिष्ठा दिलाई। भारतीय सिनेमा उद्योग भारत की भावात्मक एकता को यदि मजबूत करता है तो उसका आधार अनूदित कृतियाँ और डब की गई फिल्में भी हैं। वर्षों पहले रोजा नामक एक फिल्म ने कश्मीर में व्याप्त आतंक के वातावरण के प्रति पूरे देश में संवेदना जगाई थी। मणिरत्नम की अनेक भाषाओं में डब की गई उस फिल्म की उद्देश्यपूर्णता के पीछे अनुवाद की समावेशी भूमिका थी। यही भूमिका बांग्ला उपन्यासों पर बनी हिंदी फिल्मों की रही है। साहित्य के अनुप्रयोग से विश्व एकता की स्थापना भी अनुवाद से ही संभव है। यही क्यों, राष्ट्रीय समाचार पत्रों में छपने वाले अग्रलेखों तथा कालमों के विभिन्न भाषाओं मे हुए अनुवाद संबंधित जन सामान्य तक संप्रेषित होकर राष्ट्रीय संवेदनातंत्र को मजबूत कराते हैं। समाचार पत्रिकाओं के द्विभाषी प्रकाशन भी इस उद्देश्य की ओर बढ़ने में हमारे सहायक हुए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समस्याओं पर हमारी संवेदना को मुखर करने में अनुवाद की बड़ी भूमिका रहती है।

साहित्य में अनुवाद : भावना का संबंध

भाषाएँ एक सांस्कृतिक परिवेश में पल्लवित-पुष्पित होती हैं। साहित्य उस परिवेश से जुड़कर महनीय बन जाता है। अनुवाद के माध्यम से भाषाओं का सांस्कृतिक परिवेश व्यापक होता है। यह सांस्कृतिक परिवेश भाषाओं का व्यवहार करने वालों की परंपरा, इतिहास, नृतत्ववैज्ञानिक तथा भौगोलिक क्रिया- प्रतिक्रिया से बनता है। हर भाषा में ऐसे अनेक शब्द होते हैं जिनका अर्थ एक सुदीर्घ सांस्कृतिक साहचर्य का परिणाम होता है। हिंदी में यदि देखें तो पधारना और आना, विराजना या बैठना, खाना या भोजन करना ऐसे शब्दों की कोटि में आएँगे। मेलिनोवस्कि ने शब्दों के अर्थ के इस संबंध को साहचर्य का संदर्भ (context of situation) कहा है। इस सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने अनुवाद को सांस्कृतिक संबंधों का एकीकरण (unification of cultural context) कहा है।[3]

इस प्रकार सांस्कृतिक संदर्भों का अनुवाद भावात्मक बंध को दृढ़ करता है। इस दिशा में सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की कथा का ब्रजभाषा में किया गया बखान एक श्लाघनीय प्रयास है। संपूर्ण सूरसागर ही श्रीमद्भागवत का अनुवाद है। यहाँ प्रत्येक शब्द का या प्रत्येक वाक्य का अनुवाद नहीं किया गया है। ऐसा प्रयास यदि किया गया होता तो सूरसागर में लालित्य का उदय संभव ही न था। इसकी जगह उन्होंने श्रीमद्भागवत का भाव ग्रहण किया और भाषांतरित करके उसे ब्रजभाषा में प्रस्तुत कर दिया। इस अनुवाद को उन्होंने अपनी कल्पना के रंग से रंगा हैं। तुलसी में यह कला उत्कर्ष पर दिखती है।

साहित्य में अनुवाद के प्रेक्ष्य में भावना के संबंध पर विचार करते समय यह बात बार-बार ध्यान में आती है कि कोई भाव जब भावातीत हो जाता है तो फिर वह वही नहीं रह जाता। भाषाओं की अक्षमता ही हमेशा इसकी वजह नहीं होती, अनुवादक की भावुकता से भी इसका संबंध होता है । यह सत्य है कि भाषाओं में समानार्थी शब्द नहीं होते। वे निकटार्थ द्योतित करने वाले ही होते हैं। इसकी मूल वजह है कि भावोद्गार जिस मुहूर्त में व्यक्त होते हैं वे मुहूर्त जब चाहें उपस्थित नहीं किए जा सकते। यही वजह है कि एक ही विषय पर एक ही कवि द्वारा की गई अलग-अलग रचनाएँ

या कोई साहित्यिक प्रबंध अलग-अलग प्रभाव डालते हैं। यही बात भावक के साथ भी होती है। भावक भी किसी साहित्यिक कृति का आस्वाद हर अवस्था में एक ही प्रकार से नहीं करता।

प्रो. ए. अरविंदाक्षन का विचार है कि अनुवाद यदि पुनः सृजन है तो वाचन और आस्वादन के स्तर पर एक अच्छी अनूदित रचना कोई समस्या उत्पन्न नहीं करती। जिस प्रकार हम मूल रचना का आस्वादन करते हैं उसी प्रकार अनूदित रचना का आस्वादन भी हम कर सकते हैं।[4] इसके लिए जरूरी है कि अनुवादक मूल रचना की भाव-भूमि को पूरी तरह से हृदयंगम करे । हिमांशु जोशी ने एक निबंध में लिखा है कि प्रो. सुंदरम जब 'तुम्हारे लिए, का तमिल में अनुवाद कर रहे थे तो कुछ शब्दों पर ठहर गए थे। उन्होंने कहा कि तमिलनाडु के लोग रजाई क्या होती है या बर्फ गिरना (हिमपात) किसे कहते हैं नहीं जानते। फिर उन्हें इन संदर्भों को कैसे समझाया जाए,?

वैज्ञानिक प्रगति ने दूरियों पर विजय पा ली है। सोशल मीडिया ने हमें एक-दूसरे से जोड़ दिया है। ऐसे में हमारी दिलचस्पी का दायरा सहसा बहुत बढ़ गया है। सारा विश्व हमारी जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। तथापि दुनिया की बहुभाषिकता एक कठोर विभाजक दीवार बनकर अभी भी खड़ी है। अनुवाद उस दीवार को गिराने का एक प्रयास है। अनुवाद ने मानवीय ज्ञान के भंडार को सर्वसुलभ बनाया है। साहित्य के अनुवाद ने मानव की सार्वभौम समस्याओं के प्रति वैश्विक दृष्टिकोण बनाने में सहायता दी है। साहित्यिक कृतियों के आस्वादपरक अनुवाद के प्रश्न पर इतना कहा जा सकता है कि किसी कृति का कोई सर्वमान्य अनुवाद नहीं हो सकता। अनुवाद एक या दो नहीं, आठ या दस भी हो सकते हैं। गीतांजलि के गीत लिखे तो एक ही बार गए पर उनका अनुवाद बार-बार होता रहा है। अनुवाद के माध्यम से भावात्मक साहित्य का अंतरण अनवरत चलने वाली एक प्रक्रिया है इसमें कोई पूर्णविराम न तो संभव है न अपेक्षित ही।

आचार्य केशवप्रसाद मिश्र ने कालिदास रचित मेघदूत का पद्यानुवाद करते समय एक स्वानुभूत तथ्य की ओर हमारा ध्यान खींचा है। साहित्यिक कृतियों के अनुवाद के प्रसंग में अनुवाद के अनुभव की चर्चा यहाँ प्रासंगिक है। अनुवादक ने पाया कि मेघदूत के अनुवाद में छंद की मर्यादा की रक्षा के लिए उत्तरमेघ के दो श्लोकों क्रमशः श्लोक संख्या 1 तथा 28 में कवि क्रमभंग कर बैठा है। इस स्थिति को देखकर आचार्य केशवप्रसाद मिश्र अपने अनुवाद की भूमिका में कहते हैं "इस प्रकार महाकवि कालिदास को जब काव्यभर में एक छंद के प्रयोग का नियम करने में कठिनता हुई तब अनुवादक बेचारे की कौन कहे! उसे तो एक ही नही अनेक संकट हैं। महाकवि के भावों की रक्षा करना; अन्यूनातिरिक्त - नपे तुले शब्दों में उन्हें प्रकट करना। महाकवि ने अपनी अनोखी प्रतिभा की लहर में जो बात अनायास कह डाली है उसे गढ़-गढ़ कर छंद की डिब्बी में बन्द करना; न कुछ बढ़ाने की उसकी शक्ति और न कुछ घटाने का उसका अधिकार। ऐसी अवस्था में सहृदय पाठक समझ सकते है कि मेरा अनुवाद कैसा होगा और मुझे अपने अनुवाद की सफलता पर कैसा विश्वास होगा"[5]

उक्त प्रसंग से यह स्पष्ट होता हैं कि साहित्यिक अनुवाद कितनी सावधानी तथा कैसी सर्जनात्मक प्रतिभा की मांग करता है।

संदर्भ सूची

1. अनुवादक कला और समस्याएँ, पृष्ठ - 5
2. साहित्य का मर्म, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ-2
3. अनुवाद सोच और संस्कार, संपादक डॉ. सोहन शर्मा, पृष्ठ-3
4. अनूदित रचनाओं के मूल्यांकन के प्रतिमान, अनुवाद मूल्यांकन, पृष्ठ-180
5. मेघदूत, अनुवाद केशवप्रसाद मिश्र, प्रकाशक, काशी नागरी प्रचारिणी सभा पृ.-6

– मुख्य प्रबंधक (राजभाषा), राजभाषा विभाग, यूको बैंक, प्रधान कार्यालय,
10, बीटीएम सरणी, कोलकाता-700001

❑❑❑

क्षेत्रीय भाषा साहित्य परंपरा और अनुवाद

प्रो. सी. अन्नपूर्णा

संसार के भाषा परिवारों में दूसरा है - द्रविड़ भाषा परिवार। इस परिवार के अंतर्गत दक्षिण भारत की चार भाषाएँ 'कन्नड़, 'तेलुगु', तमिल' और 'मलयालम' आती हैं। तेलुगु भाषा को 'तेलुगु','तेनुंगु' और 'आंध्र' नामों से भी अभिहित किया जाता है। कुछ लोग 'तेलुगु', त्रिलिंग' शब्द का विकृत रूप मानते हैं। (तेनुगु-त्रिनग, तिलंग, तिलिंग) आदि। आजकल 'तेलुगु' शब्द भाषा के अर्थ में सबसे अधिक प्रचलित है। 'तेलुगु' आंध्रप्रदेश की मातृभाषा है। इसकी लगभग 1000 वर्षों की गौरवपूर्ण साहित्य परंपरा है। मूलत: द्रविड़ परिवार की भाषा होने से भी आर्य परिवार की भाषा संस्कृत की पद संपदा और साहित्यिक संपन्नता को आत्मसात करने के कारण तेलुगु भाषा और साहित्य दोनों में भाषागत सौष्ठव और साहित्यिक सौंदर्य मिलता है। 16वीं शताब्दी के प्रसिद्ध महाराज कृष्ण देवरायलु बहुभाषी विद्वान, प्रतिष्ठित कवि और तेलुगु भाषा के प्रेमी थे। उन्होंने तेलुगु की नैसर्गिक क्षमता और शब्द रमणीयता पर मुग्ध होकर इसे देश की भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ कहकर प्रशंसा की- 'देशभाषलंदु तेलुगु लेस्सा'। भारतीय भाषाओं में राष्ट्रभाषा हिंदी के पश्चात् विस्तार और साहित्यिक परंपरा की दृष्टि से इसका द्वितीय स्थान है। इसकी साहित्य परंपरा सुदीर्घ एवं समुन्नत है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह द्रविड़ परिवार की मानी जाती है, किंतु संस्कृत भाषा से निकट संबंध के कारण यह संस्कृत शब्दबहुल भाषा है। 11वीं शताब्दी के महाकवि नन्नया इसके आदि कवि और उनकी अपूर्व कृति 'महाभारत' इसके 'आदि काव्य' के रूप में विख्यात है। इस शताब्दी के पूर्व इस भाषा की कोई काव्य रचना नहीं मिलती। परंतु कुछ लोकगीतों और शिलालेखों के द्वारा इसके स्वरूप का परिचय मिलता है। स्वरांत शब्द वाली भाषा होने के कारण और अपनी सहज मिठास के कारण यह पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा प्रशंसित भी है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक कई भाषाओं से पुराण, शास्त्र, काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी आदि अनेक रचनाओं का अनुवाद तेलुगु में हुआ है।

अध्ययन की सुविधा के लिए तेलुगु साहित्य को छह या सात युगों में विभाजित किया जाता है। इसमें दूसरा युग है- 'पुराण युग' या 'अनुवाद युग' या 'नन्नया युग'। इसका काल सन् 1000-1400 तक रहा। इस युग को 'भाषांतरीकरण काल' नाम से भी पुकारते हैं। तेलुगु साहित्य में अनुवाद विधा के आदि गुरु 'महाभारत' के आंध्रानुवादक कवित्र्य, 'नन्नया', 'तिक्कन्ना' तथा 'एर्राप्रगड़ा' हैं। इन्होंने महाभारत ग्रंथ का प्रशस्त अनुवाद किया। साथ ही अपनी विलक्षण बुद्धि एवं प्रखर प्रतिभा के बल पर उस अनुवाद को मौलिक महाकाव्य का रूप दिया। इससे वह तेलुगु साहित्य के 'आदि काव्य' के नाम से विख्यात हो गया। 11वीं शताब्दी में चालुक्य वंश के महाराज राजराजनरेंद्र कला और साहित्य के भी प्रेमी थे। उनका समय धर्म के प्रचार एवं कलाओं की उन्नति में बीता। उन्होंने वैदिक धर्म के उद्धार का संकल्प लिया। पुराण और महाभारत संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध

थे, साधारण प्रजा जिनका पूरा लाभ उठा नहीं सकती थी। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के लिए 'पंचम वेद' नाम से विख्यात महाभारत के भाषांतरीकरण की आवश्यकता का राजराजनरेंद्र ने अनुभव किया। उनकी प्रेरणा से ही महाभारत का भाषांतरीकरण तेलुगु में हुआ। तत्कालीन युग में क्षेत्रों के राजा देशी भाषाओं को प्रोत्साहित करते थे। जनश्रुति है कि संस्कृत से इस रूपांतरण का विद्वान लोग विरोध करते थे। क्योंकि भाषांतरीकरण में भाषा का संस्कार किस रूप में हो, यह भी एक विवादास्पद प्रश्न रहा होगा। राजराजनरेंद्र के प्रोत्साहन से ही आदिकवि नन्नयभट्ट ने 'महाभारत' का रूपांतरण कार्य शुरू किया।

नन्नयभट्ट को तेलुगु साहित्य में 'आदि कवि' माना जाता है। नन्नयभट्ट संस्कृत और तेलुगु भाषा के प्रकांड पंडित, कवि अन्यान्य पुराणों के ज्ञाता और शब्द शास्त्र (व्याकरण) में पारंगत थे। फिर भी 'महाभारत' का भाषांतरीकरण सुगम और सुलभ नहीं था। क्योंकि 'महाभारत' वैदिक धर्मप्रधान ग्रंथ था। साथ में महाकाव्य, नीतिशास्त्र, रीतिशास्त्र, पुराण आदि अनेक विषयों की चिंतन सामग्री का विस्तृत भंडार था। व्यास महर्षि ने उसकी रचना पद्य में की है। किंतु नन्नया ने इसकी रचना गद्य पद्यात्मक शैली में की। इसे 'चंपू' शैली कहते हैं। नन्नया के पूर्व तेलुगु के अधिकांश शिलालेख चंपू शैली में ही रचे गए थे। इस तरह चंपू शैली को ही विशेष जनादर प्राप्त था। इस दृष्टिकोण से नन्नया द्वारा 'महाभारत' का भाषांतरीकरण भी चंपू शैली में किया गया है।

नन्नया के भाषांतरीकरण या अनुवाद की विशेषताएँ इस प्रकार बता सकते हैं मूल काव्य के कतिपय प्रसंगों को औचित्य की दृष्टि से घटाया या बढ़ाया गया भी है। यह केवल अनुवाद ही नहीं, इसमें नन्नया ने अर्थयुक्ति को प्रधानता दी है। इस महाभारत के रूपांतर में कुछ-कुछ आख्यान एवं उपाख्यानों को संक्षिप्त किया, कुछ को विस्तार दिया, कहीं-कहीं नए प्रसंग जोड़ दिए। परंतु उनका ध्यान मूल कथा की रक्षा की ओर सदा रहा। उन्होंने भाव, भाषा, रस, अलंकार एवं काव्योचित अभिव्यक्तियों का पोषण करते हुए इसको सर्वथा सरल प्रौढ़ और प्राणवान बनाया। नन्नया ने आख्यायिकाशैली को प्रधानता देते हुए वर्णनात्मक एवं नाटकीय शैलियों को संदर्भों के अनुरूप प्रयोग किया। शैलीगत सरसता और भावरम्यता इनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं। नन्नया की शैली तत्सम शब्द प्रधान है। अत: उसमें कोमलता, मनोरमता एवं माधुर्य का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी शैलीगत गंभीरता ने उनकी कविता तथा पात्रों में भी तेज चेतना युक्त प्राण प्रतिष्ठा की है।

तेलुगु के रचना-सौंदर्य की दृष्टि से छंदों में नन्नया ने जो महान सुधार और संस्कार प्रत्युत्पन्न किए हैं, वे सर्वथा प्रशंसनीय हैं। संस्कृत, प्राकृत एवं द्रविड़ शब्दों को तेलुगु के उपयुक्त बनाकर उन्होंने उन पर ऐसा अनुशासन किया, जिससे नन्नया 'शब्दानुशासक' या 'वागनुशासक' नाम से विख्यात हुए। इन कारणों से नन्नया का प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी पड़ा। इस प्रकार नन्नयभट्ट की रचना शैली प्रसन्नता, गंभीरता और रमणीयता से आगे बढ़ी। दुर्भाग्य से वे इस कार्य को पूरा नहीं कर सके। उन्होंने आदि पर्व और सभा पर्व की पूर्ति की तथा अरण्य पर्व का कुछ अंश ही पूरा कर पाए। उनकी मृत्यु हो गई। महाभारत की रचना पूर्ण नहीं हो सकी। बाद में लगभग दो शताब्दियों तक यह काम रुका रहा। 12 वीं शताब्दी में कवि नन्नेचोड़ ने उद्भट के काव्य का अनुवाद 'कुमारसंभवम्' नाम से किया। उन्होंने नन्नया के पथ का अनुसरण किया।

'महाभारत' की रचना को आगे बढ़ाने का दायित्व डेढ़ सौ वर्षों के बाद वैदिक धर्म निष्ठ कवि तिक्कन सोमया जी ने अपने कंधों पर लिया। वे राजनीति और अर्थशास्त्र में पारंगत थे तथा संस्कृत और तेलुगु के प्रकांड पंडित तथा कवि थे। तिक्कन सोमया जी 13वीं सदी के नेल्लूर (सिंहपुरी) राजा मनुमसिद्धि के दरबारी कवि और महामंत्री थे। उनके पूर्व धार्मिक क्षेत्र में अशांति फैली हुई थी। उस समय अनेक आचार्यों ने शैव और वैष्णव धर्मों के बीच समन्वय लाने का प्रयास किया। तिक्कना ने इन समस्त धर्मों के बीच समानता लाने के लिए हरिहर धर्म के अद्वैत भाव को उपयुक्त मानकर पंचमवेद 'महाभारत' के इस भाव का प्रतिपादक समझा। उन्होंने 'महाभारत' के शेष 15 पर्वों का तेलुगु में अनुवाद किया। तिक्कना का यह अद्वैत भाव कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का समन्वित रूप था। काव्य के निर्माण

में तिक्कना पुराण एवं प्रबंध शैली के काव्यों का समन्वय करके नवीन रीति का प्रादुर्भाव किया। साथ ही उन्होंने दृश्य काव्य शैली को भी अपनाया। भाषा के विषय में उन्होंने नन्नेचोड़ कवियों के संप्रदायों का सम्मिलित रूप ग्रहण करके प्रयोग किया। 'महाभारत' की रचना उन्होंने चंपू शैली में की। मूल काव्य को कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत करके इसमें स्वतंत्रता का निर्वाह किया गया है। उनकी कविता में तीन चौथाई शब्द तेलुगु के और एक चौथाई शब्द संस्कृत के हैं। अपने समय में प्रचलित देशी शब्दों के शिष्ट रूपों को ग्रहण करके उन्होंने अपने काव्य को सरस बनाया। प्रसंग के अनुसार नाटकीयता के साथ मुहावरे और लोकोक्तियों का भी प्रयोग करके तिक्कना ने अपने काव्य को सरस, सरल एवं सजीव बनाया है। तिक्कना तेलुगु वाग्मय में 'कविब्रह्म' नाम से विख्यात हैं। आदिकवि नन्नया के करीब 200 साल बाद तिक्कना ने महाभारत के शेष 15 पर्वों की रचना करके आंध्र जनता को चिर ऋणी बनाया। तिक्कना के समसामयिक कवि केतना ने 'दशकुमार चरित्र' का अनुवाद किया। संस्कृत के अष्टादश पुराणों में से 'मार्कंडेय पुराण' का मारन्न कवि ने तेलुगु भाषा में अनुवाद किया।

13वीं शताब्दी का काल और वैष्णवों का उत्कर्ष काल था। तेलुगु साहित्य में अनुवाद कला विकास की ओर बढ़ती जा रही थी। 'रामायण' और 'महाभारत' दोनों महाकाव्यों का अनुवाद इसी समय में हुआ था। इस शताब्दी के आरंभ में राम कथा को लेकर गोनबुद्धा रेड्डी ने सुंदर राम कथा का निर्माण 'रंगनाथ रामायण' नाम से किया। यह वाल्मीकि की रामायण के आधार पर लिखी गई मौलिक अनुवाद रचना है। यह गेय द्विपद छंद में लिखी गई है। चंपू शैली में भास्कर कवि ने सुंदर एवं सरल अनुवाद के रूप में 'रामायण' को प्रस्तुत किया। तेरहवीं शताब्दी के रेड्डी राजाओं के दरबारी कवि थे एर्राप्रगड़। तेलुगु साहित्य में एर्राप्रगड़ का नाम आदि कवि नन्नयभट्ट तथा महाकवि तिक्कना के बाद अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने 'महाभारत' के अरण्य पर्व के शेष भाग का अनुवाद करके 'महाभारत' की रचना का काम सफलतापूर्वक पूर्ण किया। नन्नया और तिक्कना की शैलियों के समन्वय से इनकी कविता परिणत हुई। दोनों कवियों की शैली गंगा-यमुना संगम जैसी बन गई तो अंतर वाहिनी के रूप में एर्राप्रगड़ की शैली बन पड़ी। नन्नया और तिक्कना की कविता भूमि को मिलाने वाले सेतु का निर्माण किया एर्राप्रगड़ ने। इस प्रकार इस 'कवित्रय' द्वारा 'महाभारत' की अनुवाद रचना का कार्य संपन्न हुआ। इस युग में संस्कृत के पुराण, महाभारत, रामायण, नृसिंह पुराण, मार्कंडेय पुराण आदि अनेक पुराणों का रूपांतरण तेलुगु में हुआ। नन्नया, तिक्कना और एर्राप्रगड़ के 'महाभारत' की अनुवाद रचना तेलुगु साहित्य में आज तक प्रौढ़ काव्य की चिरस्थायी कसौटी बनी रही। उसकी लोकप्रियता के फलस्वरूप इस युग का नामकरण भी 'कवत्रियी' युग के नाम से अभिहित किया गया है। इस युग में संस्कृत के काव्य, पुराण या शास्त्रों के जो अनुवाद हुए हैं, उनके कारण ही यह युग 'भाषांतरण युग' कहलाया।

'भाषांतरीकरण युग' के 'कवित्रय युग' के बाद आता है 'संधियुग' या 'श्रीनाथ युग' इस युग का काल रहा 1400 से 1500 तक। तेलुगु साहित्य में महाकवि तिक्कना के पश्चात् उनकी समानता रखने वाले कवि श्रीनाथ हैं। 'कविसार्वभौम' उपाधि से विख्यात श्रीनाथ का साहित्यिक जीवन तेलुगु साहित्य के इतिहास में अपना गौरवमय स्थान रखता है। श्रीनाथ कवि ने मौलिक रचनाओं के साथ-साथ भाषांतरीकरण भी किया। 13 वीं सदी की अनुवाद परंपरा इस युग में भी आगे बढ़ती रही। श्रीहर्ष के 'नैषधीय चिरतम्' को उन्होंने 'शृंगारनैषधमु' के नाम से तेलुगु में रूपांतरित किया है। संस्कृत के इस नैषध काव्य को विद्वान लोग औषध की तरह आस्वाद-कठिन मानते हैं। उसको श्रीनाथ ने तेलुगु में 'शृंगार नैषध' नाम से भाषांतरीकरण करके पीयूष बना दिया है। इसी प्रकार संस्कृत में 'काशी खंड अयः पिंड' कहा जाता है। यह 'अयः पिंड' भी श्रीनाथ के हाथों से अनुवाद में 'पयः पिंड' (दूध का पेड़ा) बन गया है। इस दृष्टि से श्रीनाथ को सफल और कुशल अनुवादक माना जाता है। उनके अनुवाद मूल के साथ नहीं चलते हैं। मूल को भुला देने वाले मौलिक उद्भावनाओं से उस पर भी अधिकार चलाते हैं। इसके फलस्वरूप ही श्रीनाथ की काव्य साधना ने अनुवाद को काव्य युग में बदल दिया है। महान भक्त और महाकवि बम्मेर पोतन्ना

श्रीनाथ के समसामयिक कवि ही थे। वे श्रीनाथ के समधी और बहनोई भाई थे। इनके बारे में तेलुगु के प्रमुख आधुनिक साहित्यकार श्री उन्नाव लक्ष्मी नारायण कहते थे कि "तेलुगु कवियों में 'तिक्कना' सूर्य हैं तो 'पोतन्ना' चंद्रमा है"। संस्कृत महाभागवत पुराण को पोतन्ना ने 30,000 पद्यों के महाकाव्य के रूप में ढाला है और श्री रामचंद्र के चरण कमलों में इस प्रकार से समर्पण किया है-

पलिकेडिदि भागवतमट
पलिकिंचेडिवाडु रामभद्रुडट
ने पलिकिन भवहर मगुनट
पलिकेद वेरोंडु गाथ पलुकगनेला? (तेलुगु भागवतम् से)

(अर्थात् मैं जो बोलता हूँ वह भागवात है, मुझसे बुलवाने वाला श्री रामचंद्र है। अगर मैं कहूँ तो भवहरण होगा। तो मैं फिर क्यों दूसरों की गाथा कहूँ?)

इस प्रकार 'आंध्र महाभागवत' भक्ति और माधुर्य का साकार रूप है। साहित्यिक महत्व के साथ लोकप्रियता में भी इस काव्य का सानी नहीं है। तेलुगु भाषी जनता के जबानों पर इसका कोई ना कोई पद्य थिरकता रहता है। भाषांतरीकरण युग में ही नन्नेचोड़ कवि की 'कुमारसंभवम्' की रचना के द्वारा तेलुगु काव्य साहित्य में प्रबंध शैली का श्रीगणेश हुआ। बाद में 14वीं शती में समस्त लक्षणों से पूर्ण प्रौढ़ महाप्रबंध काव्य की रचना हुई। तेलुगु साहित्य के दक्षिण युग में चिन्नय सूरी ने तेलुगु में गद्य रचना के लिए एक नया मार्ग खोल दिया। उन्होंने संस्कृत की 'नीति चंद्रिका' का परिनिष्ठित तेलुगु में 'पंचतंत्र कथलु' नाम से अनुवाद किया। अनुवाद इतना सफल रहा कि उसमें मौलिक रचना का आनंद मिलता है। इसी समय एनुगु लक्ष्मण कवि ने संस्कृत के 'भर्तृहरि' सुभाषितों का तेलुगु में सुंदर अनुवाद किया। चिन्नयसूरी तेलुगु के गद्य के निर्माताओं में सर्वप्रथम माने जाते हैं। प्राचीन साहित्य में नन्नयभट्ट का जो स्थान है, वही स्थान आधुनिक युग के प्रारंभ में चिन्नयसूरी का है।

नित्य नूतन एवं समय सापेक्ष बदलाव साहित्यधर्मिता का अपूर्व लक्षण है। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में हुई वैज्ञानिक प्रगति और मानव जीवन में हुए अनेक परिवर्तनों ने विश्व साहित्य के साथ-साथ तेलुगु साहित्य को भी प्रभावित किया। इलेक्ट्रानिक मीडिया में हुए विकास ने राष्ट्रों के बीच की दूरी को कम किया है। विदेशी सभ्यता-संस्कृति व साहित्य का भारत पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आज हम उसे महसूस कर रहे हैं और यह देखा भी जा रहा है। आंध्र का जीवन और उसका साहित्य इससे अलग नहीं है।

आधुनिक युग के बारे में जानने के पहले अंग्रेजी महान मनीषियों के बारे में भी उल्लेख करने की आवश्यकता है। सर सी. पी. ब्राउन ने तेलुगु-अंग्रेजी शब्दकोश और एक व्याकरण का निर्माण, कर्नल कॉलिज मेकञ्जी ने प्राचीन पुस्तकों का उद्धार किया। इसके अतिरिक्त ब्राउन ने तेलुगु के सुप्रसिद्ध दार्शनिक कवि वेमना के नीति प्रधान पदों का अंग्रेजी अनुवाद करके उनकी ख्याति बढ़ा दी। तेलुगु साहित्य में भी आधुनिकोत्तर काल में नए स्वर शुरू हो गए। देश की आजादी से प्रेरित उत्साहित उन्नति ने विकास की नई दिशाओं को खोल दिया था। पहले से पिछड़े हुए वर्ग, समय के साथ चलने में असमर्थ, कई पीढ़ियों के शोषण चक्र से दमित-दलित वर्ग, साधनहीन वर्ग इस दौड़ में दूसरे वर्ग के साथ चल नहीं सके। इसे वाणिबद्ध करने के लिए बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में संघटित रूप में वैचारिक संघर्ष को शुरू किया गया। यह वैचारिक क्रांति विशेषकर तेलुगु कविता के क्षेत्र में अनेक रूपों में अभिव्यंजित हुआ है। इसकी तीन मुख्य धाराएँ काव्य के रूप में पिछली सदी के अंतिम दशकों में अधिक प्रचलित हुई हैं वे हैं 1. दलित कविता 2. स्त्री कविता और 3. मैनारिटी कविता। दलित कविता का भविष्य और दलित कविता के लक्ष्य के बारे में एक कवि और कथा लेखक प्रो. कोलकलूरि ईनाक ने उचित ही लिखा है - "समाज में दलित अपने अस्तित्व की मांग करता है। अपने लिए व्यक्तित्व और आत्म सम्मान चाहता है। वह समाज घृणा और नीचता से मुक्ति चाहता है। औरों की तरह सम्मान, स्वेच्छा और स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है। वह यह चाहता है कि देश के विकास में अपना भी योगदान हो। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक चेतना पुंज के रूप में दलितों की पहचान हो, इसी दिशा में दलित कविता का विकास हो, द्वेष-प्रतिशोध की भावना उसकी बुनियादी न हो।"

भारत में पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के कारण किसी भी स्थिति में पुरुष को ही गौरव मिलता है, और स्त्री को अपमान। भारत में नारी को महत्वपूर्ण स्थान देने के बावजूद अनेक युगों से नारी का शोषण और दमन होता आ रहा है। समाज में और परिवार में पुरुष का ही दबदबा चलता रहा है। सभी मूल्य व नियम पुरुष के इर्द-गिर्द ही बने-बनाए गए हैं। नारी को परिवार के अंदर ही रखने के नियम पुरुषसत्तात्मक समाज ने ही बनाए हैं।

तेलुगु में बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में विकसित स्त्रीवादी साहित्य तथा स्त्रीवादी आंदोलन को स्वायत्त रूप से देख सकते हैं। विशेषकर तेलुगु की स्त्रीवादी कविता पूरी तरह अंतरराष्ट्रीय परिवेश की उपज नहीं है। तेलुगु स्त्रीवादी कविता का अपना स्वयं का परिवेश है। तेलुगु स्त्रीवादी कविता कई ऐतिहासिक संघर्षों का सबसे बड़ा विस्फोट है। क्योंकि भारत में नारी को महत्वपूर्ण स्थान देने के बावजूद अनेक युगों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था के बदलाव ने इसे और जटिल बना दिया। समाज में तथा परिवार में पुरुष की प्रधानता ही हो गई। भोग की अनेक वस्तुओं में स्त्री भी शामिल हो गई। तेलुगु में स्त्रीवादी दर्शन स्थापना के पहले ही अनेक सुधारवादी आंदोलन हुए। उन आंदोलनों का प्रभाव मात्र बाह्य ही रहा। कंदुकुरीवीरेशलिंगम, गुरुजाड अप्पाराव और चलम जैसे सुधारवादी लेखकों ने नारी मुक्ति के लिए भरसक कोशिश की है। स्त्री को पूर्ण रूप से मुक्त करने में उनको प्रत्याशित सफलता नहीं मिली। मार्क्सवादी दृष्टि तथा क्रांतिकारी दृष्टि (विप्लव कविता) सामाजिक असमानता का विरोध करके उपेक्षिता का उन्नयन करने की दिशा में ही उभरी है। परंतु इन आंदोलनों का केंद्र स्त्री नहीं हो पाई। लगभग इसी अवस्था में सन् 1985 के आस-पास स्त्रीवादी आंदोलन की बुनियाद रखी गई। यह आंदोलन सन् 1990 के बाद तेलुगु की कविता और कथा साहित्य विधाओं में अधिक तेजी से फैल गया है।

कोंडेपूड निर्मला का 'संदिग्ध संध्या', 'लेबर रूम' कविता-संग्रह उल्लेखनीय हैं। उनका 'नडिचे गेयालु' बेहतर रचना है। घंटसाला निर्मला भी आवेश के साथ कविता लिखती है। सामाजिक यातनाओं से तंग आकर फिर से वे बच्ची बनकर माँ की कोख में चले जाने की कामना व्यक्त करती हैं। वेश्या जीवन को देखकर घायल होकर एक कविता में वे कहती हैं। "अलसिन वेश्यला कुनुकु तीस्तुन्न नगरान्नि रात्रि एंतगा सेद तीरुस्तुंदनी" अर्थात् रात नगर को शांत कर रही है। नगर ऊंघनेवाली वेश्या की तरह है। कवयित्री ने नगरीय सभ्यता पर इस रूप में कड़ा आक्षेप किया है। इसी प्रकार मोक्कपाटि सुमति की 'मित्र वैरुध्यमु', मंदरपु हैमावती की 'सर्प परिष्वंगमु', तुर्लपाटि राजेश्वरी की 'तालि कट्टिन मृगमु' श्रीमती यस.रजिया बेगम की 'अलागे अन्नारु', विमला की 'वंटिल्लु' पाटिबंड्ल रजनी की 'आबर्षन स्टेटमेंट' आदि स्त्रीवादी कविता की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. एन. गोपी, एंड्लूरी सुधाकर, भगवान आदि कवियों ने भी स्त्रीवादी कविताएँ लिखी हैं। यह स्त्रीवादी आंदोलन अन्य साहित्यिक विधाओं में भी फैला है। श्रीमती वोल्गा के द्वारा लिखा गया 'आकाशमुलो सगमु' उपन्यास, श्रीमती जयप्रभा का 'भाव कवित्वमुलो स्त्री' शोध प्रबंध 'नालुगो गोड', 'तेलुगु लो आधुनिक नाटकमु' शोध समीक्षा पुस्तक, 'कथा-9' संग्रह में प्रकाशित कहानियाँ स्त्रीवादी रचनाएँ हैं। कुप्पिली पद्मा की अनेक कहानियाँ स्त्रीवादी रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त केतु विश्वनाथ रेड्डी की 'रेकलु', आर. एम. उमामहेश्वर राव की 'बिड्डुला तल्लि', कवन शर्मा की 'विडाकुलु' इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

तेलुगु में एक मात्र मैनारिटी स्त्रीवादी कवयित्री शाजहाना बेगम के अनुसार "मैनारिटी साहित्य का लक्ष्य मैनारिटी (मुसलमानों) लोगों को अपना जीवन और अपनी समस्याओं के प्रति बोध कराना है। तद्वारा उनमें चेतना जगाना है।" मुस्लिम मैनारिटी की सबसे बड़ी समस्या गरीबी और पिछड़ापन है। अशिक्षा और अंधपरंपराएँ इसके मूल कारण हैं। मैनारिटी कविता में समुदाय की गरीबी को अपने जीवंत रूप में देखा जा सकता है। मैनारिटी कविता में दलित और स्त्रीवादी कविता की तरह शोषक वर्ग के प्रति रोष, आवेश और विद्रोह के उच्च स्वर नहीं हैं। असमानता, अन्याय, अभावग्रस्तता की पहचान और उसकी अभिव्यक्ति की ओर ही इन कवियों का ध्यान अधिक गया है। तेलुगु मैनारिटी कविता तेलुगु भाषी मुसलमान के जीवन यथार्थ को तथा उसके विकास के लिए आवश्यक दिशा को प्रदान करने वाली कविता है।

भारतीय परंपरा में अनुवाद का इतिहास वैदिक युग से ही जितना महत्वपूर्ण है, उतना परवर्ती युग में भी

है। परंपरा की दृष्टि से देखें तो अनुवाद को जिस रूप में प्रचलन में लाया गया था, उसे बदलकर नए सिरे से आधुनिक युग में अपनाया गया है। प्राचीन काल के 'शब्द कल्पद्रुम' कोश में दिया गया अर्थ और भाष्य, टीका, तर्जुमा, भाषांतरीकरण अंग्रेजी 'ज्तंदेसंजपवद' के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। आधुनिक युग एक ओर अनुवाद का युग है तो दूसरी ओर विज्ञान का युग है। आज अनुवाद ने साहित्यिक सीमाओं को लांघ कर मानव व्यवहार के सभी क्षेत्रों को अपनी सीमा में सम्मिलित कर लिया है। आधुनिक चिंतन में अनुवाद को एक कौशल और व्यवसाय के रूप में अपनाया जा रहा है। आज आधुनिक अनुवाद के अपने सिद्धांतों के साथ आधुनिक भाषा विज्ञान की शाखाएँ भी जुड़ रही हैं। इनके अलावा प्रतीक सिद्धांत, समतुल्यता सिद्धांत और अनुवादनीयता के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में अनुवाद चिंतन हो रहा है। इस दृष्टिकोण से ही अनूदित कृति का कसकर मूल्यांकन किया जा रहा है।

आधुनिक तेलुगु साहित्य में कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु का नाम तेलुगु जनता आदर के साथ लेती है। आधुनिक तेलुगु गद्य के विभिन्न अंगों का शुभारंभ इन्होंने किया। पाश्चात्य संस्कृति की अच्छाइयाँ अपनाकर तेलुगु प्रांत में फैलाने का प्रयत्न किया। कंदुकूरिवीरेशलिंगम् पंतुलु लेखक तथा समाज सुधारक भी थे। इन्होंने काव्य भी लिखे और गद्य रचनाएँ भी की। पंतुलु जी ने संस्कृत और अंग्रेजी के ग्रंथों का अनुवाद किया। उन्होंने अंग्रेजी के विख्यात विद्वान गोल्डस्मिथ कृत 'विकार ऑफ वेक्फील्ड' के अनुकरण पर 'राजशेखर चरित्र' की रचना की इसके अलावा 'गुलीवर्स ट्रेवेल्स' का 'सत्य राजा- पूर्व देश यात्रलु' नाम से तेलुगु में अनुवाद किया गया है। उपर्युक्त दोनों उपन्यास अनुकरण और अनुवाद कृतियाँ होने से भी मौलिकता से पूर्ण होने के कारण परवर्ती लेखकों के लिए मार्गदर्शक बन गई। ऐसे ही कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का तेलुगु रूपांतरण भी प्रकाशित किया गया है। इसे उत्तम अनुवाद के रूप में माना जाता है। इसके पश्चात् उन्होंने 'मालविकाग्नि मित्र','प्रबंध चंद्रोदय','रत्नावली' आदि संस्कृत नाटकों का तथा 'चमत्कार रत्नावली','कल्याण कल्पवल्ली' आदि नामों से अंग्रेजी नाटकों का सरल, सरस और सुंदर अनुवाद प्रस्तुत किया। श्री गुरुजाड़ा श्रीरामामूर्ति ने शेक्सपीयर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' नाटक का तेलुगु में अनुवाद किया। तेलुगु साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार श्री वेदम् वेंकटराय शास्त्री ने संस्कृत के नाटक 'उत्तर रामचरित','अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'मालविकाग्निमित्रम्', 'नागानंदं', 'रत्नावली' आदि का तेलुगु में रूपांतरण किया। इस समय के ही कवि है वड्डादि सुब्बाराव। उन्होंने अंग्रेजी अफसरों को तेलुगु और संस्कृत पढ़ाई। वे एक सरस कवि और एक उत्तम अनुवादक भी थे। इनकी अनूदित नाटकों में मुख्य हैं - 'प्रबोध चंद्रोदय', 'विक्रमोर्वशीयमु', 'मल्लिका-मारुतमु', 'अभिज्ञान शाकुंतलं'। अल्लंराजु रंगशानि कवि ने अनंत भट्ट कृत 'भारत-चंपू' का 'श्रीमदांध्र चंपू भारत' नाम से तेलुगु में रूपांतरण किया।

वाविलिकोलनु सुब्बाराव कवि 'आंध्र वाल्मीकि' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने वाल्मीकि कृत रामायण का 'यथा वाल्मीकीयमु' नाम से मूल का यथातथ्य पद्यानुवाद तेलुगु में प्रस्तुत किया। आधुनिक काल में भी संस्कृत भाषा से तेलुगु में अनुवाद की परंपरा चलती रही। श्रीपाद् कृष्णमूर्ति शास्त्री ने 'श्रीकृष्णा महाभागवतम्' 'श्री कृष्णा रामायण' तथा 'श्रीकृष्णा भागवत' की रचना की। व्यास कृत 'महाभारत' का संपूर्ण काव्यानुवाद है। तेलुगु साहित्य में कवित्रय कृत महाभारत के बाद इनके महाभारत को प्रामाणिक मानते हैं। जनमंचि शेषाद्रिशर्मा ने 'वृक्ष-पुराण' 'ब्रह्मांड-पुराण' तथा 'स्कंध पुराण' के कौमारिका खंड और केदारणचल खंडों का तेलुगु रूपांतर किया। 'श्रीमद्रामायण' का भी अपनी सुबोध शैली में पद्य रूपांतर तेलुगु में किया। मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री की 'भास नाटक कथलु' 'भवभूतिनाटक वचनम्' आदि अनूदित रचनाएँ विख्यात हैं। वेटूरी प्रभाकर शास्त्री तेलुगु साहित्य के एक अच्छे कवि और अनुवादक हैं। वे कवि के अलावा आलोचक और अनुसंधानकर्ता भी हैं। भाल कृत 'प्रतिभा', 'कर्णभार' आदि का आपने सुंदर तेलुगु रूपांतर किया। बीसवीं शती के पहले दशक तक प्राचीन काव्य-धारा का प्रवाह रहा। फिर भी नवीन कविता ने धीरे-धीरे जड़ें जमाना शुरू किया। सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार साहित्य का निर्माण होने लगा। उसके अनुसार रूपांतरण भी करने लगे। श्रीचर्ल गणपति शास्त्री ने मूल रामायण के सभी श्लोकों का 'गणपति रामायण सुधा' नाम से पद्य अनुवाद किया, जो साहित्य अकादमी से पुरस्कृत है। इसके अलावा गणपति शास्त्री ने कालिदास महाकवि के तीन प्रसिद्ध महाकाव्य 'रघुवंशम्',

'कुमारसंभवम' और 'मेघ संदेशम' का तेलुगु पद्यानुवाद प्रस्तुत किया। इनके साथ दस उपनिषदों का 'उपनिषद् सुधा' नाम से भगवद्गीता का 'तेनुगुगीता' नाम से, शकुंतला नाटक का 'मधुर शकुंतलम' नाम से अनुवाद किया। प्रसिद्ध ब्रह्म समाज कवि आदि पूड़ि सोमनाथ राव ने भी भगवदगीता का 'तेनुगुगीता' नाम से पद्यानुवाद किया। कवि सम्राट श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने रामायण की कथा को लेकर 'रामायण कल्पवृक्ष' नाम से मौलिक अनुवाद कृति प्रस्तुत की, जो ज्ञानपीठ पुरस्कार से गौरवान्वित किया गया है।

'अभिनव तिक्कना' और 'तेनुगुलेंका' नाम से प्रसिद्ध महाकवि तुम्मल सीताराम मूर्ति ने गांधी जी की आत्मकथा का पद्यानुवाद किया और उसके पश्चात् उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं का आधार लेकर 'महात्मा कथा' नाम से मौलिक काव्य की रचना की। इन्होंने 'भागवद्गीता' का 'गीता दर्शन' नाम से तेलुगु में अनुवाद किया। श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री ने गांधी जी की 'आत्मकथा' का गद्यानुवाद ग्रांथिक शैली में किया। इसके पश्चात वेमूरी राधाकृष्णमूर्ति ने भी गांधी जी की आत्मकथा का नागरिक भाषा शैली में अनुवाद प्रस्तुत किया। स्वतंत्रता के पहले एक विशिष्ट दृष्टिकोण के साथ तेलुगु भाषा में अंग्रेजी से आदर्श सामाजिक जीवन से संबंधित रचनाएँ, बांग्ला भाषा से स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित रचनाएँ, बाद में जासूसी उपन्यास आदि का अनुवाद कार्य होने लगा। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बिना किसी भेद के सभी तरह के अनुवाद तेलुगु में आने लगे। अनुवाद की और प्रकाशक की रुचि के अनुसार भी यह कार्य होने लगा। इस प्रकार के कार्य द्वारा हुई रचनाओं में प्रथम स्थान पर रखने योग्य है उपन्यास। ज्यादा संख्या में उपन्यासों का रूपांतरण हुआ। वे भी अंग्रेजी के प्रमुख लेखकों के उपन्यास हैं। इसके साथ कहानी, कविता आदि का भी अनुवाद होने लगा। इनमें बांग्ला हिंदी और रूसी भाषाओं से अनूदित रचनाएँ संख्या की दृष्टि से और गुण की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। बांग्ला के उपन्यासकार शरतचंद्र का प्रभाव तेलुगु के पाठकों पर ज्यादा पड़ा। इनके अनुवादकों में मशहूर हैं वी. शिवरामकृष्णा और शकुंतलादेवी जो बांग्ला रचनाओं के अंग्रेजी अनुवाद से तेलुगु में अनुवाद करते थे। परंतु बाद में तेलुगु कवि रायप्रोलु सुब्बाराव, बेजवाड़ा गोपाल रेड्डी आदि राष्ट्र प्रेमियों ने रवींद्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन जाकर बांग्ला भाषा का अध्ययन किया और अनेक रचनाओं का रूपांतरण किया। गुरुदेव की रचनाओं में प्रमुख कृति 'गीतांजलि' का रूपांतरण भी किया गया। चर्ल गणपति शास्त्री ने भारतीय वाङ्मय के साथ 'गीतांजलि' और टालस्टाय की कहानियों का तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत किया। बांग्ला भाषा से अनुवाद करने वाले अनुवादकों में प्रमुख है - वेंकट पार्वतीशकविद्वय, दंडमूड़ि महीधर, मद्दिपट्ल सूरि, विरिंचि, नन्नपनेनि सुब्बाराव आदि। कमलासनुडु ने बंकिम चंद्र के 'आनंदमठ' उपन्यास का रूपांतरण किया। ताराशंकर बंधोपाध्याय द्वारा रचित 'गणदेवता' उपन्यास का तेलुगु अनुवाद साप्ताहिक पत्रिका में धारावाहिक के रूप में आता था।

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध काव्यों और उपन्यासों का अनुवाद तेलुगु में हो चुका है। हिंदी साहित्य के प्रमुख उपन्यासकार यशपाल, जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा आदि के उपन्यास तेलुगु में अनूदित हो चुके हैं। उपन्यासों के अनुवादकों में पी. रामचंद्र राव, पिच्चेश्वरराव, छायेश्वर, के. जी. आचार्य, चावली रामचंद्रराव, सुंदर, आलूरि कौमुदी, लल्लन, श्रीमती भ्रमरांबा, विजयलक्ष्मी बाई,एन.यल.वी.सोमयाजुलु आदि हैं। तेलुगु उपन्यास साहित्य भंडार को समृद्ध बनाकर इन अनुवादकों ने तेलुगु पाठकों को अन्य प्रांत की रचनाओं का परिचय दिया। हिंदी और उर्दू भाषा में कथाकार और उपन्यासकार कृशनचंदर की रचनाएँ भी तेलुगु में अनुदित हुई। हिंदी से तेलुगु में हुए अनुवादों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' महत्वपूर्ण है। इसका अनुवाद डॉ.ए.सी कामाक्षी राव ने किया। ऐसे ही दाशरथी के 'गालिब गीतालू' और उनके भाई रंगाचार्य द्वारा उर्दू से अनूदित 'उमराव अदाजान' कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। वृंदावनलाल वर्मा के झांसी की रानी 'लक्ष्मीबाई' उपन्यास का श्रीमती प्रेम-सरस्वती ने तेलुगु में अनुवाद किया। घुमक्कड़ साहित्यकार पंडित राहुल सांकृत्यायन की लगभग सभी रचनाएँ तेलुगु में रूपांतरित हो चुकी हैं। इनके अलावा रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, निराला, गोविंद बल्लभ पंत, उपेंद्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती आदि के उपन्यास तेलुगु में अनुदित हो चुके हैं। दंडमूडि महीधर ने फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' का

अनुवाद किया और वेमूरिमंजरेच शर्मा ने धर्मवीर भारती के 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास का अनुवाद किया।

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' का अनुवाद डॉ. आइ. पांडुरंगा राव, वी.सोमयाजुलु और हनुमत् शास्त्री ने अनुवाद के रूप में और के. रामदास ने गद्यानुवाद के रूप में प्रस्तुत किया। इसके अलावा डॉ. पांडुरंग राव ने प्रसाद के काव्य 'आँसू' तथा पंत के 'चिदंबरा' काव्यों का पद्यानुवाद भी किया। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस्' का अनुवाद 'रामचरितमानसमु' नाम से कृष्णमूर्ति शास्त्री, मंडा कामय्या एवं नरहरिशास्त्री ने पद्यानुवाद के रूप में, मुंगरशंकर राजु तथा नेलनूतल पार्वती देवी ने गद्यानुवाद के रूप में प्रस्तुत किया। जायसी के 'पद्मावत' काव्य का 'पद्मावती' नाम से नेलनूतल पार्वती, कृष्णमूर्ति ने गद्यानुवाद किया। रामनरेश त्रिपाठी के काव्य 'पथिक' का तेलुगु में अनुवाद श्री अल्लंराजु लक्ष्मीपति ने किया। कबीर के दोहों को 'कबीर सूक्तुलू ' नाम से ईमानि दयानंद, राधा कांत मिश्रा के 'शब्दों का आकाश' इस कविता का अनुवाद 'हंस' नाम से बापुरेड्डी, पंथ के गीतों का 'मित्रतागीतमुलु' नाम से, धर्मवीर भारती के 'टूटा पहिया' का 'विरिगिनचक्रमु' नाम से डॉ. अन्नपरेड्डी ने अनुवाद किया। इनके अलावा कई रचनाएँ अनूदित हुई हैं। कहानियों में प्रेमचंद की कहानियों का ज्यादा अनुवाद हुआ है। अन्य अनुवादकों में सोमयाजुलु एस. एस. बी., अयाचित हनुमच्छाशास्त्री, सूर्य नारायण मूर्ति आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार आधुनिक युग में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही उपन्यास, कहानी और काव्यों का अनुवाद हो चुका है। हिंदी के अलावा कन्नड, मराठी, तमिल, मलयालम, उड़िया आदि भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी, रूसी आदि पाश्चात्य भाषाओं से भी अनुवाद प्रक्रिया जारी रही। इन भाषाओं से कई रचनाएँ तेलुगु में अनूदित हो चुकी हैं। अब भी अनुवाद कार्य जारी है। कन्नड के त्रिवेणी द्वारा रचित उपन्यासों का ज्यादा संख्या में शर्वाणी ने अनुवाद किया। के. श्रीनिवास राव के कन्नड उपन्यास 'विद्यानगर राज्य इतिहास' पर आधारित होकर 'विद्यानगर नवला मालिका' नाम से श्रीनिवासपुरम् सहोदरों ने तेलुगु में अनुवाद किया। पट्टप्पा के लेखों का सरल अनुवाद तिरुमल रामचंद्र ने किया। मराठी से अनुवाद करने वालों में जगन्नाथ प्रमुख हैं। प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहराव ने मराठी उपन्यासकार हरिनारायण मारके के उपन्यास 'अबला जीवन' का अनुवाद तेलुगु में किया। तमिल के वरदराज के उपन्यास का 'मेलुवु माधुर्यमु' नाम से जयचंद्र रेड्डी ने अनुवाद प्रस्तुत किया। पी. सीतारामय्या ने 'तिरुक्कुरळ तिरुप्पावै' का पद्यानुवाद किया। मुंशी की गुजराती रचनाओं का और कुछ उड़िया की रचनाओं का पुरिपंड अप्पलस्वामी ने तेलुगु में अनुवाद किया। इनके अलावा अंग्रेजी और रूसी से अनुवाद कार्य भी हुआ है। सामान्य रूप से विदेशी भाषाओं की रचनाओं के अंग्रेजी रूपांतरण को आधार मानकर ही तेलुगु में अनुवाद किए जाते हैं। फ्रेंच, जर्मन, चीनी भाषाओं की प्रमुख रचनाओं का अनुवाद रूप तेलुगु में प्राप्त है। रूसी भाषा के मैक्सिम गोर्की के उपन्यास 'मदर' का तेलुगु अनुवाद 'अम्मा' नाम से क्रोव्विडि लिंगराजू ने किया। सरल ग्रांथिक शैली में सबसे अनुकूल अनुवाद किया गया है। इस वर्ग के अनुवादकों में बेल्लंकोंड रामदास, श्रीनिवास चक्रवर्ती, नंडूरि मोहन राव, रेंटाल गोपाल कृष्णा, तेन्नेटि सूरी,सूरंपूडि सीताराम, जोन्नलगडु राधाकृष्णय्या, कोडवटि गंटि कुटुंबराव, अवसरालसूर्याराव, मल्लादि नरसिंह शास्त्री आदि प्रमुख हैं।

गांधी जी की शतजयंती के संदर्भ में रचा गया गांधी साहित्य का भी अनुवाद हिंदी, अंग्रेजी और गुजराती भाषाओं से तेलुगु में हुआ। गांधी साहित्य का अनुवाद करने वाले अनुवादकों में कोडालि आंजनेयुलु, श्रीहरि आदिशेषु, सूर्यप्रकाश राव और डॉ. अडपा रामाकृष्णा राव प्रमुख हैं। सर्वोदय आंदोलन के संदर्भ में आचार्य विनोबा तथा अन्य लेखकों की रचनाओं के अनुवाद भी तेलुगु में सर्वोदय साहित्य प्रचार समिति के द्वारा प्रकाशित हुए हैं। इनमें प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डॉ. वेंपटि सूर्य नारायण के द्वारा आचार्य विनोबा के 'गीताप्रवचन' का अनुवाद सर्वप्रथम है। गोपराजु लवणम ने विनोबा की आंध्रप्रदेश में भूदान पदयात्रा के संदर्भ में अनेक भाषाओं का तेलुगु अनुवाद किया जिनमें कुछ का प्रकाशन भी हुआ। इनके अतिरिक्त विनोबा द्वारा रचित 'गांधी जैसे मैंने देखा' पुस्तक का डॉ. भीमसेन निर्मल ने 'नेनेरिगिन गांधी' नाम से तेलुगु में अनुवाद किया। सर्वोदय नेता उम्मेत्तल केशव राव ने विनोबा रचित

'रामनामचिंतन' और 'खुरानसार' का तेलुगु में अनुवाद किया। विनोबा द्वारा रचित 'स्त्री शक्ति' का चर्ल गणपति शास्त्री ने, 'तृतीय शक्ति' का चाँपराल सीतारामदास और चर्ल जनार्दन स्वामी ने तेलुगु में रूपांतरण किया। इनके अतिरिक्त उनकी 'आत्माज्ञान और विज्ञान' का रूपांतरण तल्लाप्रगड़ा प्रकाश रायुडु द्वारा किया गया है। इसके अतिरिक्त समाजवादी और साम्यवादी आंदोलनों के संदर्भ में भी कितने ही अंग्रेजी, रूसी तथा हिंदी रचनाओं के अनुवाद तेलुगु में प्राप्य हैं।

आज साहित्य जगत् में चलते-फिरते अनुभवी अनुवादक तेलुगु साहित्य भंडार को समृद्ध करने में अपनी लेखनी चला रहे हैं। इनकी मौलिक रचनाएँ भी हैं और रूपांतरण भी। उनमें प्रमुख हैं डॉ. बालशौरि रेड्डी, डॉ. आदेश्वर राव, डॉ. विजय राघव रेड्डी, डॉ. वै. वी. राव, डॉ. जे. एल रेड्डी, डॉ. रंगय्या ,डॉ. मोहन सिंह, डॉ. लीला ज्योति, डॉ. लक्ष्मी प्रसाद, डॉ. रामी रेड्डी, डॉ. रेगुल पाटी माधवराव, डॉ. बी. रामब्रहमं, डॉ. सुश्री दयावंती, डॉ. सुमनलता, प्रो. आर. एस. सर्राजू, प्रो. एस. वी. एस. वर्मा, प्रो. माणिक्यांबा, श्रीमति शांता सुंन्दरी, श्री वेन्ना वल्लभराव, प्रो. शकुंतलाम्मा, डॉ. डी. कामेश्वर राव आदि। इनके अलावा आज युवा पीढ़ी के रचनाकार जो साहित्य में रुचि रखते हैं वे नाटक, कहानी, उपन्यास और छोटी कविता का अनुवाद कर रहे हैं। कोम्मा शिव शंकर रेड्डी, पं. मोहन, जोसेफ, विजय लक्ष्मी, रघुपति, डॉ. पिनिसेट्टी श्रीनिवास राव, डॉ.जयशंकर बाबु, डॉ. लक्ष्मी कांत. पी. आदि अनेक अनुवादक कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार तेलुगु साहित्य में अनुवाद की परंपरा बरकरार है। तेलुगु साहित्य में अनुवाद एक सेतु के रूप में भावात्मक एकता के लिए वसुधैव कुटुंबकम की स्थापना की दिशा में अग्रसर होता जा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1. तेलुगु साहित्य और संस्कृति : (सं.) डॉ. अमरसिंह वधान, अभिषेक, दिल्ली
2. बीसवी सदी का तेलुगु साहित्य : डॉ. आई. एन. चंद्र शेखर रेड्डी ,केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली
3 आंध्र में हिंदी लेखन और शिक्षण की स्थिति और गति : डॉ. आई. एन. चंद्र शेखर रेड्डी, आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी नामपल्ली, हैदराबाद -500001
3. अनुवाद विज्ञान की भूमिका : प्रो. के .के. गोस्वामी, राजकमल, दिल्ली

– हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, गच्चीबाउली, हैदराबाद-46 (तेलंगाना)

❑❑❑

धार्मिक साहित्य एवं अनुवाद : वैश्विक परिदृश्य

डॉ. विदुषी शर्मा

वर्तमान युग भूमंडलीकरण का युग है। आज व्यक्ति ने संपूर्ण विश्व को सूक्ष्म बनाकर उसे अपनी मुठ्ठी में ही समेट लिया है। वह विश्व के सभी विषयों का ज्ञान, सभी भाषाओं में प्राप्त करना चाहता है, प्रेषित करना चाहता है, प्रसारित-प्रचारित करना चाहता है और इन सबके साथ अपना नाम और मुनाफा कमाना चाहता है। इन सब कायों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए अनुवाद एक श्रेष्ठतम सेतु है, एक सटीक विकल्प है तथा प्रामाणिक साधन है।

वैश्विक परिदृश्य की बात करें तो आज अनुवाद की प्रासंगिकता दिनों दिन बढ़ती जा रही है जिससे कि अनुवाद न केवल व्यक्ति की, समाज की, राष्ट्र की अपितु अंतरराष्ट्रीय स्तर की एक मूल आवश्यकता बन गया है। प्रारंभ में प्रत्येक नए कार्य/विधा की तरह अनुवाद को भी अमौलिक, यंत्रवत, अभ्यासमूलक कार्य मानकर, मौलिक लेखन की तुलना में इसे निम्नकोटि का कार्य माना जाता था क्योंकि अनुवाद का शाब्दिक अर्थ भी यही है। 'अनु' मतलब पीछे और 'वाद' मतलब बोलना या कही हुई बात को दोहराना। यदि हम किसी भी बात को दोहराते हैं तो इसका क्या महत्व है। इसमें हमारी रचना धर्मिता, मौलिकता, भाव, कल्पनाशक्ति, नैसर्गिक प्रतिभा, काव्य प्रतिभा, गद्य शैली, भाषा सौंदर्य आदि सब कुछ सीमित या यूँ कहें कि नगण्य ही हो जाता है क्योंकि अनुवाद मौलिक लेखन, सृजनकार्य नहीं है। परंतु फिर भी अनुवाद केवल 'दोहराना' भर नहीं है। अगर यह सिर्फ दोहराने भर तक सीमित होता तो आज विश्वभर में इसकी इतनी मांग नहीं होती, इसका इतना व्यापक स्तर पर कार्य नहीं होता, इतनी ज्यादा संख्या में लोग इससे जुड़े नहीं होते ।

वास्तव में अनुवाद है क्या?

इसके बारे में हम विस्तृत चर्चा करेंगे। जब तक हमें किसी भी विधा की पूर्व पीठिका की पूर्ण जानकारी नहीं होगी तो इसके अद्यतन या वैश्विक परिप्रेक्ष्य की बात करना बेमानी होगा।

अनुवाद शब्द की उत्पत्ति

जैसा कि हम जानते हैं कि संस्कृत सब भाषाओं की जननी है और लगभग सभी शब्द संस्कृत भाषा से ही उत्पन्न है। इसीलिए अनुवाद शब्द का संबंध भी संस्कृत की 'वद्' धातु से है जिसका अर्थ होता है "बोलना या कहना। 'वद्' धातु में 'घन' प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है और फिर उसमें 'पीछे', 'बाद में', 'अनुवर्तिता' आदि अर्थों में प्रयुक्त 'अनु' उपसर्ग जुडने से 'अनुवाद' शब्द निष्पन्न होता है। अनुवाद का एक मूल अर्थ है पुनः कथन या किसी के कहने के बाद कहना जो आज के 'अनुवाद' के संदर्भ में भी पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है।"

अनुवाद का शाब्दिक अर्थ देखे तो उसे 'पुनः कथन' अथवा 'पुनरुक्ति' कह सकते हैं। इसके लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं में 'तर्जुमा', 'विवर्तन' आदि अलग-अलग नाम भी प्रयुक्त किए गए हैं। अनुवाद के

प्रकार रूप में अंग्रेजी में ट्रांसलेशन Translation शब्द प्रचलन में है।

'अंग्रेजी का ट्रांसलेशन Translation शब्द मूलत: लैटिन भाषा का ट्रांसलेशन Translation है जो दो शब्दों Trans + Latum से मिलकर बना है। Trans का अर्थ है 'पार' और Latum का अर्थ है 'ले जाना' या 'नयन'। इस प्रकार ट्रांसलेशन का अर्थ है "एक पार से दूसरी पार ले जाने की क्रिया।

इस प्रकार पूर्व कथित बात का अनुसरण करके अभिव्यक्त किए गए कथन को अनुवाद कहते हैं। इसी प्रकार एक भाषा में उपलब्ध कथन सामग्री का अनुसरण करते हुए उसे दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना ही अनुवाद है।

'शब्दार्थ चिंतामणि' नामक कोश में अनुवाद शब्द को इस प्रकार समझाया गया है :

'प्राप्तस्य पुन: कथनेअनुवाद:' अर्थात् पूर्व कथन का पुन: कथन अनुवाद है।

'जैमिनी न्यायमाला' में 'ज्ञातस्य कथामनुवाद:' अनुवाद है अर्थात् ज्ञान का पुन: कथन ही अनुवाद है। (कुमार पृष्ठ 16 से उद्धृत)

अनुवाद की संक्षिप्त यात्रा/इतिहास

वैदिक साहित्य से लेकर ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों और व्याकरण ग्रंथों में 'अनु' उपसर्ग और 'वद' धातु से बने पदों का भिन्न-भिन्न प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है अनुवाक (गुरु के कथन का शिष्यों द्वारा दोहराया जाना), पश्चातकथन, विधि का पुन: कथन, ज्ञान को कहना, सार्थक आवृति आदि। इस प्रकार भारतीय दर्शन, उपनिषद तथा वैदिक साहित्य से छाया, भाषा टीका व्याख्या, भावानुवाद, भाषांतर, तजुर्मा, उल्था आदि अनेकविध शब्दों की यात्रा पूर्ण करता हुआ यह पारिभाषिक शब्द 'अनुवाद' 19वीं शताब्दी के अर्थ में सर्वसम्मति और मान्यता के साथ सर्व स्वीकृति को प्राप्त हुआ। ध्यातव्य है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में गुरु शिष्य परंपरा या गुरुकुलों में शिक्षा प्रदान की जाती थी। उस समय पर अधिकतर शिक्षा मौखिक रूप में प्रदान की जाती थी यानी लगभग सभी ज्ञान, श्लोकोच्चारण मौखिक रूप से पहले गुरु के द्वारा बोले जाते थे और उसी लय, छंद, अलंकार में शिष्यों द्वारा उसकी पुनरावृत्ति की जाती थी, इसे ही अनुवाद कहा जाता है आज तक भी यह परंपरा कई गुरुकुलों में निभायी जाती है। यदि वर्तमान संदर्भ में अनुवाद की बात करते हैं तो अनुवाद यानी पुन: आवृत्ति। कही हुई बात को दोबारा कहना इसमें पुनरावृत्ति तो होती है परंतु वह अर्थ की होती है ना कि उस शब्द की। अर्थात् अनुवाद में शब्द की पुनरावृत्ति नहीं अपितु उस शब्द के अर्थ की पुनरावृत्ति होती है।

अनुवाद विषयक विद्वानों की परिभाषाएँ

1 डॉ. रविंद्र नाथ श्रीवास्तव व कृष्ण कुमार गोस्वामी -- "एक भाषा (स्रोत भाषा) की पाठ्य सामग्री में अंतर्निहित तथ्य का समतुल्य के सिद्धांत के आधार पर दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में संगठनात्मक रूपांतरण अथवा सर्जनात्मक पुनर्गठन ही अनुवाद कहा जाता है।" (रविंद्रनाथ श्रीवास्तव, कृष्ण कुमार गोस्वामी पृष्ठ 45)

2 डॉ. भोलानाथ तिवारी -- "भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन है अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम (कथनत: और कथ्यत:) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। इस प्रकार अनुवाद निकटतम, समतुल्य और सहज प्रतिप्रतीकन प्रकिया है।" (तिवारी पृष्ठ 12)

3 एम. ए. हॉलिडे --- "अनुवाद एक संबंध का नाम है जो दो या दो से अधिक पाठों के बीच होता है, ये पाठ समान स्थिति में समान प्रकार्य संपादित करते हैं। दोनों पाठों का संदर्भ समान होता है और उनसे व्यंजित होने वाला संदेश भी समान होता है।" (Halliday पृ. 124)

4 जे .सी. कैट फोर्ड --- "एक भाषा की पाठ्य- सामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक पाठ्य-सामग्री द्वारा प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है।" (Catford पृ. 20)

5 डी. पी. पट्टनायक --- "अनुवाद वह प्रकिया है जिसके द्वारा सार्थक अनुभव एक भाषा समुदाय से दूसरे भाषा समुदाय को संप्रेषित किया जाता है।" (Pattnayak पृ. 57)

6 युजेन नाइडा --- "मूल भाषा के संदेश के सममूल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं, संदेशों की यह सममूल्यता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से निकटतम एवं स्वाभाविक होती है।" (Nida पृ. 12)

अत: इस पूरे वर्णन तथा विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर हम अब यह कह सकते हैं कि अनुवाद एक भाषा में प्रस्तुत पाठ का अर्थ दूसरी भाषा में स्थानांतरित करता है। पहली भाषा को 'स्रोत भाषा' कहते हैं और उस भाषा के पाठ को 'मूल पाठ' कहा जाता है। दूसरी भाषा को 'लक्ष्य भाषा' कहा जाता है और इस पाठ को 'अनूदित पाठ' कहा जाता है। अनुवाद में भाषा बदल जाती है पर पाठ्य सामग्री, सूचना अथवा संदेश अपने मूल अर्थ में ही संप्रेषित होते हैं। यह संप्रेषण यथासंभव समान भाषा शैली, सामाजिक-सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को सुरक्षित रखता हुआ लक्ष्य भाषा के पाठक को स्वाभाविक रूप से ग्रहण योग्य लगता है। अर्थात् यदि किसी भी रचना का अनुवाद दूसरी भाषा में किया जाता है तो उस रचना का भाव सौंदर्य उसका आंचलिक पुट, क्षेत्रीयता सुरक्षित और संरक्षित रखते हुए ही दूसरी भाषा में अनुवाद इस प्रकार होना चाहिए कि स्रोत भाषा की 'आत्मा' जीवित रहे और लक्ष्य, जिस भाव जिस रस प्रधानता, जिस काव्य सौंदर्य और जिन मुख्य बिंदुओं को लेकर स्रोत भाषा की रचना की गई है इन सभी तत्वों का अनूदित सामग्री में भी समावेशन होना चाहिए तभी अनूदित सामग्री पढ़ने में पाठक वृंद उसी आनंद को भी महसूस कर पाते हैं तथा उस रचना एवं रचनाकार से हम एक अदृश्य संबंध भी स्थापित कर पाते हैं।

अनुवाद प्रकिया में हमें एक मुख्य बिंदु का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि एक बार अनुवाद करने पर जिन विशेषताओं को हम देख रहे हैं वही यदि उसी रचना का पुन: अनुवाद Retranslation किया जाए तो वही स्रोत भाषा प्राप्त होनी चाहिए अर्थात् री-ट्रांसलेशन Concept of Retranslation की संकल्पना को ध्यान में रखकर ही अनुवाद प्रक्रिया को बेहतर बनाया जा सकता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अनुवाद का महत्व

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि वर्तमान युग सूचना, प्रौद्योगिकी एवं संचार क्रांति का युग है। ज्ञान-विज्ञान के निरतंर विस्तृत होते क्षितिज ने विश्व को एक 'ग्लोबल विलेज' की संज्ञा से अभिहित कर दिया है। भूमंडलीकरण की इस अवधारणा और 'विश्वग्राम' की संकल्पना का आधार निश्चित रूप से संचार तथा अनुवाद को ही माना जा रहा है, जैसे कि हमारी भारतीय मान्यता भी 'वसुधैव कुटुंबकम' की रही है जिसमें संपूर्ण विश्व को ही एक परिवार माना जाता है। वैसे ही आज के युग में अनुवाद प्रकिया इस ओर तेजी से कदम बढ़ा रही है। उदारीकरण के फलस्वरूप देश-विदेश के अनेक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी समुदायों के साथ मनुष्य का व्यवहार तेजी से बढ़ रहा है। एक ही देश में विभिन्न भाषाओं से संपर्क का एक मात्र उपकरण अनुवाद ही है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, पारंपरिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, वाणिज्य और वैचारिक आदान-प्रदान अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाया है। इतिहास साक्षी है कि समय-समय पर महत्वपूर्ण सभ्यताओं और संस्कृतियों का जो विकास हुआ है इनके बीच परस्पर विचारों का आदान-प्रदान तथा विभिन्न देशों के इतिहास, सभ्यता और संस्कृतियों रीति-रिवाज और विभिन्न देशों के प्रत्येक पहलू को समझने का आधार अनुवाद ही रहा है। ज्ञान-विज्ञान की अधुनातन सूचनाओं को प्रसारित करने मे अनुवाद की उपादेयता जगत प्रसिद्ध है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करने वाले संसार के धार्मिक साहित्य भारतीय वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, दर्शन, गीता, रामायण, महाभारत, उपनिषद, त्रिपिटक, बाइबल, कुरान का प्रचार-प्रसार अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाया है। विभिन्न राष्ट्रों की सांस्कृतिक विरासत के मध्य एक सेतु को बांधने का काम अनुवाद ने ही किया है। वर्तमान राजनैतिक, सांस्कृतिक समन्वय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एकता का निर्माण करने का कार्य तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर परस्पर शांति एवं विश्व शांति को बढ़ावा देने का कार्य अनुवाद ही कर रहा है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आज विश्व शांति की सर्वाधिक महत्ता है तथा इसी की सर्वाधिक आवश्यकता भी है और उसी क्षेत्र में अनुवाद एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। जिस विधा की वैश्विक स्तर पर इतनी उपलब्धता हो, महत्ता हो उसके लिए और क्या कहा जा सकता है।

अनुवाद विश्व साहित्य ज्ञान परंपरा और तकनीकी के प्रचार-प्रसार का सशक्त माध्यम

हम सभी जानते हैं कि मनुष्य एक प्रगतिशील प्राणी है। उसके पास जो उपलब्ध है वह हमेशा ही उससे अधिक प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है और उसकी यही महत्वाकांक्षा उसे नित नई खोजों के लिए, नित नए अन्वेषण के लिए प्रोत्साहित करती है, करती आ रही है। यह सत्य है कि हमारे देश में साहित्य की प्रचुरता इतनी अधिक है कि किसी भी मनुष्य का एक जीवन भी इस संपूर्ण साहित्य को पढ़ने के लिए कम पड़ जाएगा। हमारी प्रत्येक भाषा में साहित्य की विभिन्न विधाएँ, लौकिक साहित्य, धार्मिक, नैतिक, राजनैतिक, तकनीकी, चिकित्सा विज्ञान आदि से संबंधित ज्ञान प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। परंतु मानव स्वभाव यह है कि वह दूसरी भाषाओं के प्रसिद्ध साहित्यकारों को भी पढ़ना चाहता है, उत्सुक रहता है। यही उत्सुकता विश्व साहित्य और ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए अनुवाद को एक माध्यम बनाती है। जिस प्रकार हमारे साहित्यकार जो विश्व प्रसिद्ध हुए हैं उनमें महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास, कालिदास भर्तृहरि, चाणक्य, विदुर, रवींद्र नाथ टैगोर, भारतेंदु हरिश्चंद्र, मीराबाई, रैदास, बिहारी, कबीर दास, रविदास इत्यादि ये सब रचनाकार, साहित्यकार ऐसे हैं जो सर्वकालिक है, उनकी रचनाएँ भी उन्हीं की तरह ही सार्वकालिक हैं। उस युग में भी ये उतनी ही प्रासंगिक थीं और आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं। इन सभी की रचनाओं को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने का कार्य अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाया है। विश्व मंच पर अनुवाद ही वह माध्यम है जिसने शेक्सपियर, टॉलस्टॉय, इलियट, मिलेट, मोपासां, काफ्का, बूबर, खुशवंत सिंह जैसे साहित्यकारों को अपनी-अपनी दुनिया से दूसरी भाषा के पाठकों को भी रूबरू कराया। प्राचीन काल में सर्वप्रथम अरबों ने भारतीय गणित शास्त्र, खगोल शास्त्र और आयुर्वेद से प्रभावित होकर उन्हें अरबी भाषा में दुनिया के समक्ष रखा। बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से चीनी विद्वानों ने भारतीय ग्रंथों का अनुवाद किया। रामायण, महाभारत, भागवतगीता, पंचंतत्र आदि अरबी, फारसी में अनुदित हुए। मैक्स मूलर ने भारतीय उपनिषदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस प्रकार महर्षि अरविंद द्वारा संस्कृत के आर्ष रचनाकार कालिदास, वेदव्यास और वाल्मीकि की रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया। भारतीय साहित्य की अवधारणा का आधार भी निस्संदेह अनुवाद है। इसी प्रकार भारतीय साहित्य भी अनुवाद के माध्यम से ही वैश्विक पटल पर पहुँचा है यदि यह कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। रवींद्र नाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' (जिसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिला था), प्रेमचंद का 'गोदान', जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी', मलिक मोहम्मद जायसी का 'पद्मावत' जैसी रचनाएँ इसका उदाहरण हैं। उमर खय्याम की 'रुबाइयाँ', गालिब, मीर, की ग़ज़लें, शेक्सपियर के 'हैमलेट' 'ओथेलो', 'मर्चेंट ऑफ वेनिस', 'जूलियस सीजर', टॉलस्टॉय की 'वार एंड पीस', 'गॉड सी द ट्रुथ बट वेट्स', मिल्टन की 'पैराडाइज लॉस्ट' जैसी विदेशी रचनाएँ अनुवाद के माध्यम से ही भारतीय पाठकों को मिल पाई हैं।

वैश्वीकरण के इस युग में न केवल विविध साहित्यिक विधाओं का वरन् साहित्य तथा ज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र का भी विश्व स्तर पर तेजी से अनुवाद हो रहा है। विज्ञान के आविष्कारों की जानकारी, चिकित्सा संबंधी खोजें, तकनीकी उपलब्धियाँ, पूरे विश्व में नए क्षेत्रों में जो भी नई सूचनाएँ हैं, अद्यतन जानकारी, आज अनुवाद के माध्यम से संपूर्ण विश्व प्राप्त कर रहा है। इंटरनेट पर उपलब्ध विभिन्न अनुवाद सॉफ्टवेयर और गूगल आदि के द्वारा संपूर्ण वेब पेज को अनूदित करने की सुविधा उपलब्ध कराना अनुवाद के महत्व को और बढ़ाता है ताकि उन पाठकों को भी संपूर्ण सामग्री का ज्ञान प्राप्त हो सके जो एक भाषा की जानकारी के कारण ज्ञानार्जन से वंचित रह जाते हैं।

धार्मिक साहित्य का अनुवाद एवं इसका वैश्विक प्रभाव

जब भी हम धर्म की बात करते हैं तो उसमें साथ आती है श्रद्धा, निष्ठा, पवित्रता, भक्ति, नैतिकता, शुद्धता, शुचिता, परोपकार की भावना, एकत्व का भाव, समर्पण, त्याग, वैराग्य इत्यादि। ये सब धर्म के साथ परोक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। कोई भी धर्म अपने मूल रूप में हिंसा, वैर, द्वेष, अलगाव इत्यादि नकारात्मकता की भावना का समर्थन नहीं करता।

"परंतु विडंबना यह है कि हम 'धर्म' को तो मानते हैं परंतु 'धर्म' की नहीं मानते।"

भारतीय धर्म विशेषकर सत्य सनातन हिंदू धर्म जगत प्रसिद्ध है। आज पूरे विश्व में गीता, रामायण, महाभारत इत्यादि ग्रंथों को कौन नहीं जानता? यह अनुवाद का ही प्रभाव कहा जा सकता है कि पूरे विश्व में लोग इन ग्रंथों की विशेषताओं को जान पाए। बल्कि आज तो विदेशों में स्कूल, कॉलेजों में पाठ्यक्रम के तौर पर भी गीता, रामायण और महाभारत वृहद स्तर पर इन तीनों ग्रंथों के श्लोकों का पठन-पाठन किया जा रहा है। यह हम सभी के लिए गौरव की बात है। ये ग्रंथ सार्व कालिक, सर्व कल्याणकारी हैं। यहाँ न केवल विश्वबंधुता की बात की गई है अपितु पूरे पर्यावरण की रक्षा की बात भी की गई है।

"सर्वे भवंतु सुखिनः" में किसी भी जीव की जाति, लिंग, धर्म, संप्रदाय की बात नहीं है। यहाँ तो प्रत्येक प्राणी मात्र के कल्याण की बात है।

हिंदू धर्म में जितने भी ग्रंथ हैं उनमें सबसे प्राचीन वेद है। तत्पश्चात् उपनिषदों का सृजन हुआ। विश्व प्रसिद्ध 'पंचतंत्र' और 'कथासरित्सागर' भी इसी कालखंड में लिखे गए। वस्तुतः संस्कृतसाहित्य में टीका की परंपरा लंबे समय से चलती आ रही है जो अनुवाद का ही एक रूप है। आदि शंकराचार्य ने उपनिषदों पर भाष्य लिखे और उन्ही भाष्यों पर उनके शिष्यों ने टीकाएँ लिखीं। यदि समग्रता से देखा जाए तो सबसे अधिक जिन ग्रंथों का वैश्विक प्रभाव हुआ है वह रामायण, महाभारत, गीता, बाइबिल और पंचतंत्र आदि हैं। इन सब ने पूरे विश्व को शांति, विश्वबंधुत्व, त्याग आदि का संदेश देने का प्रयत्न किया है।

यह भी कहा जाता है कि ----

"जिन हिंदू परिवारों में रामचरितमानस की चौपाई के स्वर नहीं होते उन घरों में राग, शोक, दुख, दरिद्रता व क्लेश सदैव चारपाई बिछाए स्थायी रूप से निवास करते हैं।"

गीता के ये श्लोक जगत प्रसिद्ध हैं एवं मनुष्य को वास्तविक ज्ञान प्रदान करने का साधन बनते हैं क्योंकि गीता कोई साधारण ग्रंथ नहीं अपितु साक्षात श्री कृष्ण की वाणी है।

नैंन छिद्रन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

(द्वितीय अध्याय, श्लोक 23)

इस श्लोक का अर्थ है: आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग उसे जला सकती है। न पानी उसे भिगो सकता है, न हवा उसे सुखा सकती है। (यहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने आत्मा के अजर-अमर और शाश्वत होने की बात की है।)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

(द्वितीय अध्याय श्लोक 22)

भावार्थ : जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त होता है।

भागवतगीता पर उपलब्ध भाषा में श्री जयदयाल गोयंदका की 'तत्व विवेचनी' सर्वाधिक लोकप्रिय है तथा जनसुलभ भी। इसका प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा किया जाता हैं। आज तक इसकी 10 करोड़ प्रतियाँ बिक चुकी हैं। यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है।

अनुवाद का सबल प्रमाण मिलता है कि पाँचवीं सदी में नेहमिया नामक एक यहूदी नेता ने उनकी शास्त्रीय और आध्यात्मिक रचनाओं का प्राचीन हिब्रू से अरबी भाषा में अनुवाद करवाया था। (Naida पृ. 11)

16वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण घटना है 'प्रोटेस्टेटिज़्म' आंदोलन। इस आंदोलन ने बाइबिल को स्थानीय भाषाओं में अनूदित करने की प्रवृत्ति को बल प्रदान किया। तत्पश्चात् जर्मनी तत्व चिंतन और नव सुधार के अग्रगण्य नेता मार्टिन लूथर किंग (1453 -1546) ने बाइबिल का संपूर्ण अनुवाद 1534 तक पूर्ण किया।

"लूथर का मत था कि लोग इस पवित्र ग्रंथ को अपनी भाषा में ही समझ सकते हैं। सोलहवीं सदी में अनुवाद प्रवृत्ति मुख्यतः बाइबिल अनुवाद का इतिहास प्रोटेस्टेटिज़्म के साथ जुड़ गया।" (Naida पृ.14)

बीसवीं शताब्दी में धार्मिक और राजनैतिक सत्ता ने अनुवाद कार्य को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बढ़ावा दिया। SIL (Summer Institute of Linguistics) को सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है। बाइबिल के अनुवाद कार्य में व्यस्त इस संस्था के 29 देशों में लगभग 3700 सदस्य कार्यरत हैं। यह संस्था 675 भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद करती रही है।

अब बात करते हैं महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत के अनुवाद की। महाभारत का अनुवाद एक साथ न होकर किश्तों में संपन्न हुआ। महाभारत के 18 पर्वों में से पहले ढाई पर्व का 'नन्नया' ने बाकी के पर्वों का 12 वीं सदी में 'टिक्कणा' ने और अधूरे छोड़े हुए तीसरे पर्व का 14वीं सदी में 'एरान्ना' ने तेलुगु में अनुवाद किया और इसे 'कवित्रयम' की संज्ञा प्रदान की। इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण को भी अनेक भाषाओं में लिखा गया था। हिंदू धर्म के तीन स्तंभ माने जाने वाले ग्रंथ महाभारत, रामायण और श्रीमद्भागवद्गीता का लगभग विश्व की सभी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। अनुवाद के क्षेत्र में एक और महत्वपूर्ण नाम लेना भी अनिवार्य है वह है मुगल साम्राज्य में दीन-ए-इलाही धर्म के संस्थापक बादशाह अकबर का। अकबर की नीतियाँ सर्व धर्म समभाव तथा मानवता की पोषक थीं। अकबर ने अपने शासनकाल में हिंदू धर्म के अनेक धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद करवाना आवश्यक समझा क्योंकि वह उनकी विशेषताएँ जान चुका था। वह यह भी चाहता था कि इन धार्मिक ग्रंथों का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार हो एवं पूरे साम्राज्य में इनके नियम व नीतियों का पालन-पोषण हो। उसने अपने शासनकाल में स्वंतत्र अनुवाद विभाग की स्थापना की।

ईस्ट इंडिया कंपनी के कुछ अधिकारियों ने अपने क्षेत्रों की भाषा, साहित्य और सांस्कृतिक, धार्मिक आदान-प्रदान में रुचि ली। चार्ल्स विल्किन ने 'गीता' को Songs of Adorable One 1785 में तथा मैक्समूलर ने सन् 1889 तक उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद Scared Books of the East के रूप में प्रकाशित किया। भारतीय अनुवाद परंपरा में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, श्री अरविंद का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने भी धार्मिक ग्रंथों का बंगाली, तमिल, लैटिन, ग्रीक भाषा में अनुवाद किए।

वास्तव में देखा जाए तो अनुवाद अपने आप में ही बहुत बड़ा संप्रत्यय है। एक ही आलेख में इसे समग्रता के साथ समेट पाना संभव नहीं है। फिर भी अपने विषय के साथ न्याय करते हुए इसके प्रत्येक पहलू को छूने का यथासंभव प्रयास किया गया है। वस्तुतः अनुवाद स्रोत भाषा के अनुसार शब्दानुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद, व्याख्यानुवाद, सारानुवाद, रूपांतरण आदि से भी निरूपित किया जाता है। विषयों के अनुसार विज्ञान अनुवाद, वाणिज्य अनुवाद, विधि अनुवाद, तकनीकी अनुवाद, मीडिया अनुवाद आदि। परंतु हमने केवल धार्मिक साहित्य से संबंधित पक्ष को ही उजागर करने का प्रयास किया है।

पूर्णता केवल ईश्वर में विद्यमान है। सार्थक सतत प्रयास का परिणाम आपके सम्मुख है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रामगोपाल सिंह - 'अनुवाद विज्ञान स्वरूप और समस्याएँ' पृष्ठ 5
2. डॉ. रामगोपाल सिंह - 'अनुवाद विज्ञान स्वरूप और समस्याएँ' पृष्ठ 15
3. डॉ. नगेंद्र - 'अनुवाद विज्ञान सिद्धांत और अनुप्रयोग'
4. कैलाश चंद्र भाटिया - 'अनुवाद प्रक्रिया और स्वरूप'
5. डॉ. पूरनचंद टंडन, हरीश कुमार सेठी - 'अनुवाद के विविध आयाम'
6. डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी - 'अनुवाद विज्ञान'.
7. भोलानाथ तिवारी, ओम प्रकाश गाबा - 'अनुवाद की व्यवहारिक समस्याएँ'
8. रविंद्र श्रीवास्तव, डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी - 'अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ'
9. डॉ. गार्गी गुप्त, पूरनचंद टंडन - 'अनुवाद बोध' भारतीय अनुवाद परिषद, दिल्ली

– एल-108, ऋषि नगर, रानी बाग, दिल्ली-110034

❑❑❑

तकनीकी साहित्य का अनुवाद : समस्याएँ एवं समाधान

शिवानी कोहली

'प्राप्तस्य पुनः कथनम्' संस्कृत शब्दकोश में दिए गए अनुवाद के इस अर्थ के अनुरूप 'पहले कहे गए अर्थ को पुनः कहना' से लिया जाता है। अनुवाद का शुभारंभ मानव जाति के प्रारंभ के साथ ही माना जाता है। दो शब्दों के योग अर्थात् 'वाद्' में 'अनु' उपसर्ग लगने से 'अनुवाद' शब्द बना है। अनुवाद का अंग्रेजी पर्याय 'Translation' है। हिंदी में इसके कई पर्याय प्रचलित हैं, जैसे- भाषांतरण, रूपांतरण, भावांतरण इत्यादि। पहले पहल अनुवाद को केवल शिल्प माना गया, फिर कुछ के विचार में इसका कलात्मक स्वरूप भी सामने आया फिर अनुवाद को विज्ञान मानने वालों की संख्या बहुत कम रही, परंतु यह विचारात्मक द्वंद्व अब कम होता प्रतीत हो रहा है। अनुवाद विज्ञान भी है और कला भी। आज सभी क्षेत्रों में अनुवाद का महत्व बढ़ रहा है। साहित्य, विज्ञान, तकनीक, व्यवसाय, विधि इत्यादि सभी क्षेत्रों में अनुवाद के माध्यम से महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा किया जा रहा है। केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान हो रहे हैं और नदी के प्रवाह की भांति यह विकास पथ पर निरंतर बढ़ रहा है।

मेरे विचार में प्रत्येक मौलिक रचना भी एक अनुवाद होती है। लेखक की भावनाओं, उसकी दूर दृष्टि का अनुवाद। अंतर केवल इतना है कि यहाँ दोनों भूमिकाएँ निभाने वाला व्यक्ति एक ही होता है। और यदि कोई लेखक अन्य भाषा की किसी रचना से प्रभावित न होता और वह उस भाषा का ज्ञान अर्जन करके उसे अपनी भाषा में रूपांतरित न करता, तो प्रत्येक लेखक अपने देश-काल की सीमा तक ही सीमित रह जाता। उसकी रचना वाटिका में केवल उसी की ही रचनाएँ खिलतीं और बासी भी हो जातीं। अतः अनुवाद से तात्पर्य एक ऐसे कार्य से है, जिसमें एक भाषा का कलेवर दूसरी भाषा में प्रस्तुत होता है। और इसकी प्रासंगिकता यह दर्शाती है कि मनुष्य, समाज और राष्ट्र अब बहुदिशागामी होना चाहते हैं। पश्चिमी देशों में 'एन एस्से ऑन दि प्रिंसिपल्स ऑफ ट्रांसलेशन' (1791) के रचयिता 'एलेक्जेंडर फ्रेजरटाइलर' (1781-1814) को प्रथम अनुवाद-शास्त्री माना जाता है। अनुवाद के आश्रय से ही मानव, समाज, देश प्रगति कर रहे हैं। और यदि अनुवाद का आश्रय न लिया जाता तो आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, महावीराचार्य इत्यादि की खोजें विश्वभर में प्रसिद्ध न होतीं।

भाषा मानव को एक ईश्वरीय देन है। सृष्टि ने भाषा का वरदान केवल मनुष्य को इसलिए दिया है ताकि वह वैचारिक आदान-प्रदान करते हुए अपने ज्ञान को विस्तार दे और योग्यताओं के आधार पर समाज को एक नई दिशा प्रदान कर सके। अपने भावों, विचारों, संवेदनाओं को व्यक्त करके समाज हित में अपना पूर्ण योगदान दे सके। यदि भाषा का ज्ञान मनुष्य को न हुआ होता तो वह एक सीमा तक ही सीमित रह जाता। पहले-पहल दूसरी भाषाओं को समझने में असुविधा हुआ करती थी, क्योंकि विश्व में जितने देश हैं उससे कई गुना अधिक भाषाएँ हैं। विश्वभर में 6000 से भी अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं और इनमें से अधिकतर

भाषाएँ कई बोलियों में हैं। ऐसी बहुत-सी भाषाएँ भी हैं, जो आज लुप्त हो चुकी हैं। विद्वानों के अनुसार "भाषा, मनुष्य के विचार विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।" और "भाषा यदि अभिव्यक्ति का माध्यम है, तो अनुवाद उसे सुगम बनाने का उपाय है।" प्रत्येक राष्ट्र की एक प्रमुख राष्ट्रभाषा होती है। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि विविधता के इस आसमान में राष्ट्र रूपी अनेक सितारों को आपस में किस प्रकार जोड़ा जाए, ताकि एक अद्भुत माला का निर्माण किया जा सके। तब इस उलझन को सुलझाने हेतु अनुवाद का आश्रय लेना पड़ता है और इस कार्य में मुख्य भूमिका निभाने हेतु अनुवादक अपना श्रम अर्पण करता है।

पुरातन सभ्यताओं के आरंभ तथा पतन की कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि यदि तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला इत्यादि की रक्षा हेतु अन्य भाषाओं के अनुवादकों ने चिंता न की होती तो जिन वीर गाथाओं, सभ्यताओं, समाजों पर आज मानव समाज गौरवान्वित हो रहा है, वह कब की भूतकाल में दफ़न हो गई होतीं और उनके साथ ही तक्षशिला (भारत), नालंदा (भारत), तोलेदो (स्पेन), फ्लोरेंस (इटली), एथेंस (ग्रीक) जैसे महाकेंद्रों में उपजा साहित्य भी नष्ट हो चुका होता। अनुवादक ने तब भी एक सेतु की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और आज भी निभा रहा है। अनुवाद भले ही साहित्यिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, विधि आदि किसी भी क्षेत्र से संबंधित क्यों न हो, अनुवादक के लिए एक चुनौती ही रहता है। प्रत्येक क्षेत्र में अनुवाद ने एक विशिष्ट भूमिका निभायी है और यह महत्वपूर्ण कार्य विशेष प्रकार के मानदंडों द्वारा नियंत्रित होता है। हालांकि, साहित्य के अनुवादक को यह स्वतंत्रता होती है कि वह कल्पना का आश्रय लेकर स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा तक का सफर तय कर सकता है, परंतु तकनीकी साहित्य का अनुवादक इसका लाभ नहीं उठा सकता। तकनीकी एवं वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद, अभी इतना सबल नहीं हो पाया कि अंग्रेजी न जानने वालों तक इसका संपूर्ण ज्ञान पहुँच सके। देश के बहुत सारे क्षेत्र अभी भी इस ज्ञान से अछूते हैं। परिणामस्वरूप, साहित्यिक अनुवाद उत्तरोतर सबल होता चला गया, जिससे सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों ने विश्व स्तर पर अपना स्थान बना लिया।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी दृष्टि से भारत प्राचीनकाल में पर्याप्त समृद्ध रहा है। मध्यकाल में इसका ह्रास भी हुआ, परंतु आधुनिक काल में भारत निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना हुई। आयोग के द्वारा तकनीकी शब्दावली पर पर्याप्त कार्य हो चुका है और हो भी रहा है। पिछले चार से पाँच दशकों में आयोग ने लगभग प्रत्येक विषय पर शब्दावलियाँ प्रकाशित की हैं। ऐसा कदापि नहीं समझना चाहिए कि आयोग की स्थापना से पूर्व इस दिशा में कोई कार्य किया ही नहीं गया है, वरन् नागरी प्रचारणी सभा जैसी कई संस्थाओं ने इस कार्य को पूरी कर्मठता से किया। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा किया गया कार्य केवल शब्दों के निर्माण तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु उसे प्रयोग में भी लाया गया। आयोग द्वारा तकनीकी शब्दावली पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में कार्यशालाएँ भी करवाई जा रही हैं, जिसके कारण वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग अपने इन विकासशील कार्यों के लिए बहुत सीमा तक लोकप्रिय हो चुका है। भारत सरकार द्वारा जब से विश्वविद्यालयों में तकनीकी विषयों का अध्ययन- अध्यापन मातृभाषा में होना प्रारंभ हुआ है, तब से इस दिशा में कार्य और भी जोरों से हो रहा है।

तकनीक अंग्रेजी के 'टेकनीक' का हिंदी रूपांतर है। रोमन भाषा से यह शब्द यूनानी भाषा में गया। यूनानी भाषा में इसके लिए 'टेक्ने' शब्द प्रयुक्त होता है, बाद में 'टेकनीक, टेक्नोलॉजी आदि शब्द बने। तकनीकी साहित्य का अनुवाद एक दुष्कर कार्य है। अनुवादक को स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा के साथ-साथ विज्ञान की जानकारी अति आवश्यक है। तकनीकी साहित्य का अनुवाद करते समय अनुवादक को तथ्यों की स्पष्टता होनी अनिवार्य है। अनुवादक का यह दायित्व बन जाता है कि तकनीकी क्षेत्रों में हो रहे नए प्रयोगों/अनुसंधानों के बारे में भी उसे पूरी जानकारी हो। यदि अनुवाद कार्य हिंदी में किया जा रहा है, तो अनुवादक को तकनीकी ज्ञान के साथ-साथ हिंदी का मूल ज्ञान भी होना चाहिए। आधा-अधूरा ज्ञान शब्द के अर्थ का अनर्थ कर सकता

है। तकनीकी साहित्य के अनुवाद में अनुवादक अभ्यास करके ही एक अच्छी रचना का निर्माण कर सकता है। साहित्य के अनुवाद में विषय-विशेष का ज्ञान अनुवादक के लिए अनिवार्य है परंतु तकनीकी विषयों के अनुवाद पर यह बात लागू नहीं होती। साहित्यिक अनुवादक का यह मानना है कि तकनीकी साहित्य के अनुवादक को मूल रूप से तकनीक का ज्ञान होना चाहिए। तकनीकी साहित्य के अनुवाद में अनुवादक को भाषा के साथ वैसा श्रम नहीं करना पड़ता जैसाकि साहित्यिक अनुवाद में करना पड़ता है। विषय विशेष शब्दावली का ज्ञान ही उनके लिए पर्याप्त है, ऐसा मानना तकनीकी तथा वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद पर बहुत थोड़ी सीमा तक ही लागू होता है। वैज्ञानिक, तकनीकी क्षेत्रों का अनुवाद प्राय: वैज्ञानिक एवं तकनीकी विद्वानों और छात्रों के लिए ही होता है, कहने का भाव यह है कि वे इसे अधिक सुगमता से कर पाते हैं।

साहित्यिक अनुवाद की तुलना में तकनीकी साहित्य के अनुवाद को सरल समझा जाता है, परंतु ऐसा नहीं है। यह समझकर चलना चाहिए कि तकनीकी विषयों की जानकारी रखने वाला व्यक्ति सरलता से अनुवाद कर सकता है। जैसे-जैसे विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र प्रगति की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं वैसे-वैसे ही इनका अनुवाद भी तरक्की कर रहा है। तकनीकी साहित्य के अनुवाद हेतु अनुवादक को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे- जिस भाषा में अनुवाद करना है अनुवादक को उसकी पारिभाषिक शब्दावली की दृष्टि से संपन्न होना होगा, उसे तकनीकी विषयों का ज्ञान होना चाहिए, अनुवादक के पास साहित्यिक शब्दावली का भी भरसक भंडार होना चाहिए, पाठक को ध्यान में रखते हुए उसे अनुवाद की भाषा को सरल रखना चाहिए, ताकि पाठक के लिए कठिन शब्दों का अर्थ समझने में कोई परेशानी न हो। जिस प्रकार कला को कला प्रतीत नहीं होना चाहिए, उसे स्वाभाविक लगना चाहिए ठीक वैसे ही अनुवाद को अनुवाद न लगकर स्वाभाविक लगना चाहिए। अनुवाद को पढ़ते समय पाठक को मूल कृति का आभास न हो ऐसा अनुवादक द्वारा प्रयास होना चाहिए। यह तभी संभव है जब सृजन में शब्द के स्थान को सूक्ष्मता से समझ लिया जाए। शब्द कोशों में दिए गए पर्यायों को अंतिम सत्य मान लेने वाला कभी भी सफल अनुवादक नहीं बन सकता। तकनीकी विषयों पर कई अनूदित पुस्तकें बाजार में आ चुकी है, फिर भी विद्यार्थियों, शिक्षकों के लिए पारिभाषिक शब्दावली को लेकर कुछ अड़चने बनी हुई हैं। पारिभाषिक शब्दावली कोशों के द्वारा इस समस्या का समाधान हो जाता है और पाठ्य-पुस्तकों के रूप में प्रयोग से इस कठिन शब्दावली का साधारणीकरण भी हो रहा है।

तकनीकी और वैज्ञानिक अनुवाद सूचना प्रधान होता है। अत: शैली की कलात्मकता यहाँ वांछित नहीं होती है। हाँ, शैली की स्वच्छता जरूर अपेक्षित होती है। किसी वैज्ञानिक अनुसंधान की जटिल प्रक्रिया पर आधारित किसी लेख का अनुवाद करने के लिए भाषा पर वैसा ही समृद्ध अधिकार अपेक्षित होगा, जैसाकि किसी अन्य रचना के लिए अपेक्षित है। साहित्यिक अनुवाद (भावांतरण) में भावों को सुरक्षित रखते हुए, अनुवादक अपने शब्दों में कुछ हेर-फेर कर सकता है, परंतु रूपांतरण (तकनीकी अनुवाद) में अनुवादक को मूल रचना की शैली का अनुसरण करना पड़ता है। जैसाकि, कहा जा चुका है कि प्रत्येक प्रकार का अनुवाद कुछ मानदंडों द्वारा नियंत्रित होता है। साहित्यिक अनुवाद में यह मानदंड कुछ हद तक लचीले हो सकते हैं, परंतु तकनीकी साहित्य के अनुवाद में इनमें बहुत कम सीमा तक छूट होती है। इसमें कुछ छोड़ने या जोड़ने की गुंजाइश नहीं होती। बहुत सारे ऐसे शब्द हैं जिनका लिप्यंतरण करके उनका ज्यों का त्यों प्रयोग किया जाता है, फिर भी अनुवादक को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि अनुवाद स्पष्ट, सरल और बोधगम्य भाषा में अभिव्यक्त हो। विकसित और विकासशील देशों में ऐसे अनुवाद की बड़ी आवश्यकता है और इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा भी कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं।

तकनीकी साहित्य के अनुवाद में प्रमुख तत्वों के रूप में वस्तुनिष्ठता, तथ्यपरकता, सुबोधता, स्पष्टता, शब्दों की पारिभाषिकता, सूचनापरकता इत्यादि शामिल हैं। इन तथ्यों के अभाव में अनुवादक द्वारा किया गया अनुवाद कार्य सफल नहीं माना जा सकता। अत: इनका पालन अनिवार्य है। तथ्यों पर मुख्य दृष्टि ही अनुवादक का श्रम सफल कर सकती है, अन्यथा लाखों किताबों

की भांति उसका कार्य भी केवल एक किताब बनकर ही रह जाएगा।

जहाँ एक ओर अनुवाद एक सेतु का कार्य कर रहा है तो दूसरी ओर पाठ्यक्रम में शामिल होने से युवाओं में विकास की नई-नई संभावनाएँ भी जागृत हुई हैं। आने वाले समय में अनुवाद की स्थिति और भी बेहतर होने वाली है, जिससे देश को तो लाभ होगा ही साथ ही युवाओं में अनुवाद को लेकर भविष्य खोजा जाएगा। अनुवादक को तकनीकी साहित्य के विषय-विशेष का जितना गहन ज्ञान होगा, अनुवाद कर्म उसके लिए उतना ही सरल होगा। भावात्मक एकता की परिकल्पना के संदर्भ में संपर्क सेतु की भूमिका के रूप में कार्य करने वाले अनुवादक को राष्ट्रीय अनुवाद संस्थाओं द्वारा प्रोत्साहन मिल रहा है। अनुवादकों के मान-सम्मान के ऊपर कई प्रश्न भी उठाए गए, परंतु अनुवादक मूल रचना के अर्थ को समझते हुए आकाश में अपनी पतंग उड़ाता जा रहा है। आशा है कि भारत देश की प्रगति में अनुवादक और भी कर्मठ होकर कार्य करेंगे।

– अनुवादक, भारत पर्यटन विकास निगम लिमिटेड, नई दिल्ली-110003

❑❑❑

साहित्यिक अनुवाद-परंपरा में क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों की महत्ता एवं स्थिति

डॉ. मदन सैनी

अनुवाद के बारे में मेरे मित्र कुछ-कुछ रूपक-सा गढ़ते हुए कहते हैं कि यह तो पहले से बनी हुई सुंदर इमारत को ढहाकर उसके मलबे से वैसी की वैसी इमारत खड़ी करने का काम है। इसमें आपको यह तो छूट है कि आप इसकी पूर्णता या सौंदर्य में चार चांद लगा सकते हैं, लेकिन इसके पूर्ववर्ती रूप की देहरी तक को ऊँचा-नीचा नहीं कर सकते। चाहे जितना कठिन हो, मेरा अनुभव तो कहता है कि यह काम बेहद सृजनात्मक है और इसलिए सरस भी।

सृजन का सुख गूंगे के गुड़ की भांति अनिर्वचनीय होता है और फिर पुनर्सृजन का तो कहना ही क्या? इसे परकाया-प्रवेश सरीखा बताया गया है। भाषांतर, उल्था, अनुवाद, अनुसृजन, पुनर्सृजन इत्यादि नामों से भी इसे जाना जाता है। अनुवाद को दोयम दर्जे का या गैर-रचनात्मक बताने वाले अपनी जाने, पर अनुवाद के प्राण-तत्त्व को जो जान लेता है, उसके लिए अनुवाद-कर्म बहुत ही आसान हो जाता है। एक सफल अनुवादक को मूल भाषा, माध्यम भाषा और स्वयं की भाषा के मुहावरे का ज्ञान होना जरूरी है। वह जिन दो भाषाओं में परस्पर अनुवाद करने का बीड़ा उठाता है, उन दोनों भाषाओं के शब्द-भंडार से भी भली-भांति परिचित हो और उन भाषाओं की उपभाषाओं एवं क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों को भी जाने। इतना ही नहीं, हर एक भाषा-बोली की अपनी भौगोलिक पहचान होती है, उसे जानना भी बहुत जरूरी है। उदाहरण के लिए हिंदी में संबंध-बोधक विभक्ति-प्रत्यय 'का', 'की' है, जबकि पंजाबी में 'दा', 'दी' है और राजस्थानी में 'रा', 'री'; गुजराती में 'ना, 'नी'; मराठी में 'चा', 'ची'; सिंधी में 'जा', 'जी', 'जो' इत्यादि प्रयुक्त किए जाते हैं। वाक्य-प्रयोग से आप समझ जाएँगे कि रामू की, रामू री, रामू दी, रामू नी, रामू ची, रामू जी आदि वाक्य क्रमशः हिंदी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, मराठी और सिंधी भाषा-बोली के सूचक हैं। जितने बड़े भू-भाग में इस विभक्ति-प्रत्यय का प्रयोग होता है, वही उस भाषा का अपना भौगोलिक परिवेश होता है और वहाँ की अपनी शब्दावली, अपने रीति-रिवाज, अपनी परंपराएँ होती हैं, जो किसी भी रचनाकार के लेखन को उल्लेखनीय बनाती हैं।

साहित्यिक अनुवाद-परंपरा में क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों की महत्ता का जितना गुणगान किया जाए, उतना कम ही होगा। सागर के कलेवर में जिस प्रकार कलकल-निनाद करती असंख्य नदियों की जल-धाराएँ अनवरत अभिवृद्धि करती हैं, उसी प्रकार साहित्यिक अनुवाद-रूपी महासागर को विविध क्षेत्रों की भाषा-सरिताएँ भी सतत समृद्ध करती रही हैं। भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन से इस तथ्य की पुष्टि भली-भांति हो जाती हैं। शब्द-कोशों के अवलोकन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों के शब्दों से ही किसी समृद्ध भाषा का स्वरूप सुनिश्चित होता है, जिसमें तत्सम्, तद्भव, देशज् और विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी आत्मसात किया जाता है। अनुवादक को साहित्यिक अनुवाद-परंपरा के अभिज्ञान के साथ ही देश की साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परंपराओं को जानना भी जरूरी होता है। ज्ञान-विज्ञान की विविध सारणियों से गुजरने वाला अनुवादक ही न केवल

अनुवाद-कर्म को प्रामाणिकता प्रदान करता है, अपितु वह स्वयं आत्मपुरस्कृत भी होता है।

अपनी बात की पुष्टि में मैं अपने ही अनुभव साझा करना चाहूँगा। पिछले दिनों मैंने साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत गुजराती के एक श्रेष्ठ उपन्यास भगवतीकुमार शर्मा कृत 'असूर्यलोक' का राजस्थानी में अनुवाद किया। पी. एच. डी. के दौरान जीवन के कुछ वर्ष गुजरात में बिताने तथा मेरी मातृभाषा राजस्थानी और गुजराती के पूर्व प्रगाढ़, बल्कि कहें जैविक-से रिश्ते (पंद्रहवीं शताब्दी से पूर्व दोनों एक ही थीं) के कारण गुजराती को सीखने में मुझे कोई द्रविड़ प्राणायाम नहीं करना पड़ा, बस यूँ समझिए कि कुछ दिनों के लिए अपनी माँ के घर से दूर जाकर मौसी के यहाँ माखन-मिसरी खाकर आ गया। शायद ऐसा न होता, तो मैं गुजराती के इस बड़े ही संश्लिष्ट और अर्थगर्भी उपन्यास का राजस्थानी में अनुवाद करने की हिमाकत ही न करता। यह 'असूर्यलोक' मेरी मातृभाषा में 'आंधारलोक' बनकर प्रकट हुआ। प्रामाणिकता के नाते कह सकता हूँ कि मैंने गुजराती-हिंदी और राजस्थानी शब्दकोशों का सहारा तो लिया ही, अंग्रेजी स्पेलिंग की पुष्टि हेतु 'इंग्लिश डिक्शनरी' को भी उपयोग में लिया। इससे अनुवाद में प्रामाणिकता आती है। गुजराती में 'गूलर' को 'उदुंबर' कहा जाता है, जबकि हिंदी व राजस्थानी में अर्थ-संप्रेषण की दृष्टि से 'गूलर' ही ज्यादा उपयुक्त है। हमारी भाषाओं एवं बोलियों के अधिकांश शब्द संस्कृत से निसृत हैं, लेकिन काल-क्रम, मुख-सुख और भौगोलिक प्रभाव के कारण इन शब्दों में बहुत परिवर्तन आ जाता है, जिसे समझना किसी भी भाषाविद् या अनुवादक के लिए अत्यावश्यक है। उदाहरण के लिए संस्कृत का 'अहम्' शब्द राजस्थानी में 'अम्ह-अम्हू-हूं एवं अम्हैं, म्हैं से होते हुए हिंदी में 'मैं' हो जाता है। वैसे ही वैदिक संस्कृत का 'पुरोडास' क्षेत्रीय भाषाओं में रोडास-रोटास-रोटला से होते हुए 'रोटी' बन जाता है और यही 'पुरोडास' बुरोडास-बुरोडस-बुरोड से होते हुए 'ब्रेड' बन जाता है।

शब्दों की यात्रा बड़ी रोचक होती है। मीरा राजस्थान के मेड़ता शहर की थीं। उनकी भाषा राजस्थानी थी, लेकिन वे ब्रज में रहीं और बाद में गुजरात चली गईं, तो उनके पद ब्रज और गुजराती में भी हैं। श्रीकृष्ण का बाल्यकाल ब्रज-गोकुल-मथुरा में बीता, लेकिन बाद में वे गुजरात के द्वारका में जा बसे। अनेक संत-महात्मा, व्यापारी और मजदूर स्थान बदलते रहते हैं, उनके भाषा-व्यवहार में परिवर्तन आता रहता है, जिसे साहित्य में परिलक्षित किया जा सकता है। प्रवासी देशवासी एवं विदेशी पर्यटकों की भाषा भी साहित्यिक रचनाओं एवं शब्द कोशों को समृद्ध करती रही हैं।

भाषा का प्रवाह नदी की धारा की तरह सतत् प्रवाहमान रहता है, जो कठिनता से सरलता की ओर अग्रसर रहता है। इसमें आंचलिक शब्दों का समावेश होता रहता है, कुछ कठिन शब्द या तो पीछे छूट जाते हैं और भाषा-व्यवहार से परे हट जाते हैं या फिर रूप बदल लेते हैं। विभिन्न बोलियों एवं उपबोलियों के अनगढ़ शब्द भी इस भाषा-प्रवाह में समाते रहते हैं और फिर एक नया व्याकरण रचा जाता है। इससे भाषा पुनः परिष्कृत होती है। भाषा में मूलतः स्वर, व्यंजन, वर्ण, अक्षर, शब्द और वाक्य ही होते हैं। शब्दों के सार्थक समूह से वाक्य बनता है और वाक्य-दर-वाक्य होने वाले अर्थ-विस्तार से ही साहित्यिक रचनाएँ जन्म लेती हैं। इन रचनाओं के परिष्कृत स्वरूप में क्षेत्रीय भाषाओं एवं क्षेत्रीय बोलियों का उतना ही योगदान है, जितना आभिजात्य साहित्य में लोक साहित्य का, शास्त्रीय संगीत में लोक संगीत का और आधुनिक रंग-नाटकों में लोक-नाट्यों का माना जाता है। अतः रूपक की भाषा में कहा जाए तो कह सकते हैं कि साहित्यिक अनुवाद परंपरा-रूपी वटवृक्ष की विविध शाखाओं-प्रशाखाओं के रूप में ये क्षेत्रीय भाषाएँ एवं बोलियाँ न केवल इस वटवृक्ष की खूबसूरती में चार चाँद ही लगाती हैं, अपितु अपना अस्तित्व सुनिश्चित करते हुए साहित्यिक अनुवाद-परंपरा को पोषित करने, पुष्ट बनाने एवं अक्षुण रखने में भी सहयोगी सिद्ध होती हैं। यदि यह कहें कि साहित्यिक अनुवाद-रूपी यज्ञ क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों-रूपी पूर्णाहुतियों से ही संपन्न होता है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

– वार्ड नं. 28, कालूबास, श्रीडूंगरगढ़ - 331803 (बीकानेर) राजस्थान

❑❑❑

साहित्यिक अनुवाद की समस्याएँ

डॉ. अरविंद कुमार उपाध्याय

अनुवाद का तात्पर्य- 'पुनः कथन' अथवा 'किसी के कहने के बाद कहना या बोलना।' यह दो शब्दों से मिलकर बना है- 'अनु' और 'वाद' जिसका अर्थ है- 'पूर्व कथन के अनुसार कहना।' यही चीजें हमें संस्कृत के प्राचीनतम् ग्रंथों में भी मिलती हैं। वहाँ 'दुहराने' या 'फिर से कहने' के अर्थ के रूप में प्रयोग हुआ है। विभिन्न शब्द कोशों में इसका अर्थ पुनः कथन, दोहराना, ज्ञात को कहना, उल्था, भाषांतर, पश्चात् कथन, पुन्नलेख या पुनरुक्ति, छाया, टीका तथा तर्जुमा आदि के रूप में प्रयोग हुआ है।

अनुवाद की परिभाषा (भारतीय एवं पाश्चात्य मतानुसार)

भारतीय धर्म-ग्रंथों में अनुवाद 'अनुवचन' अथवा 'अनुवाक्' के रूप में मिलता है। पौराणिक ग्रंथ 'ऋग्वेद' में इसके लिए 'अनुवदति' शब्द मिलता है जिसका अर्थ हुआ- 'दोहराता है' या 'पीछे से कहता है।' इसी तरह से अन्य ग्रंथों में भी अनुवाद का उल्लेख मिलता है, जो निम्नवत् है-

01. पाणिनी के मतानुसार- "सदा प्रतिपंत प्रमाणांतरावगतमप्यर्थं कार्यांतरार्थ प्रयोक्ता प्रतिपाद्यते तदानुवादो भवति।"

02. मनुस्मृति के छायाकार कुल्लूक भट्ट के अनुसार- "सामागानश्रुतौ; ऋग्यजुषोरनध्यान उक्तस्तस्यामनुवादः।"

03. ऐतरेय ब्राह्मण के कथनानुसार- "यद वाचि प्रोदितामयाम् अनुब्रूयाद् अन्यस्यैवैनम् उदितानुवादिनम् कुर्यात्।"

04. भाषा वैज्ञानिक भोलानाथ तिवारी के अनुसार- "भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन। अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम् समतुल्य सहज प्रतीकों का प्रयोग।"

05. पाश्चात्य भाषा-वैज्ञानिक मोनियर विलियम्स (Monier Williams) के अनुसार- "Translation is saying after or again, repeating by way of explanation, explanatory, repetition or reiteration with corroboration or illustration, explanatory reference to anything already said-"

06. नाइडा (Nada) के मतानुसार- "Translating consists in producing in the receptor, language the closest natural equivalent to the massage of the source language, first I meaning and secondary in style-"

07. फोरेस्टर (Forester) के कथनानुसार- "translation is the transference of the content of a text from one language into another, bearing in mind that we cannot always dissociate the content from the from-"

उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में संदर्भों, भावों, विचारों और संस्कृतियों का स्थानांतरण है।

19वीं सदी में दुनिया में ज्ञान-विज्ञान का अत्यधिक प्रसार-प्रचार होने की वजह से अनुवाद के क्षेत्र में विकास संभव हो सका। ऐसा नहीं है कि अनुवाद 19वीं

सदी की देन है। यह प्राचीन समय से ही चली आ रही है। जिसका उल्लेख हमें पौराणिक ग्रंथों में भी मिलता है, किंतु यूरोप से लेकर एशिया महाद्वीप तक राजनैतिक एवं सामाजिक कारणों से दुनिया के कई देश एक-दूसरे के संपर्क में आए। राजनैतिक-विचारों, ज्ञान-विज्ञान, आर्थिक एवं व्यापार क्रय-विक्रय की वजह से एक देश दूसरे देशों के संपर्क में आए। यह सब अनुवादित भाषा से ही संभव हो सका है। विभिन्न धाराओं में ज्ञान-विज्ञान, आविष्कार और सिद्धांतों ने अन्य देशों के लोगों के लिए यह ज्ञान पाना अति आवश्यक था। इसके लिए एकमात्र साधन अनुवाद ही था। यही कारण रहा है कि 19वीं और 20वीं सदी के मध्य तक अमेरीका और रूस के कई महत्वपूर्ण वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं का काफी तादात्म्य में अनुवाद किया जाने लगा था।

भारतीय संदर्भ में यदि विचार करें तो हम पाते हैं कि यहाँ अनुवाद का विकास ज्ञान-विज्ञान के साथ ही होता है। विभिन्न धार्मिक सुधारक, प्राध्यापक, साहित्यकार एवं राजनीति से जुड़े व्यक्तियों ने इस दिशा में काफी कुछ काम किया है। भारतीय भाषाओं द्वारा अंग्रेजी तथा दूसरी विदेशी भाषाओं का अनुवाद हुआ। यहाँ तक की प्रांतीय भाषाओं की कृतियों का अनुवाद भी काफी मात्रा में हुआ। भारतीय वाङ्मय, कबीर, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, प्रेमचंद, सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, शेक्सपियर, कार्ल मार्क्स, जरथुक्स आदि के दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विचारों को विश्व समुदाय अनुवाद के माध्यम से ही जान सका है जिससे समाज में एक नई दार्शनिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक जन-जागृति आई। 'पंचतंत्र', 'गीतांजलि', 'गोदान' जैसी महत्वपूर्ण कृतियाँ आज विभिन्न भाषाओं में अनूदित होते हुए कई देशों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में सफल हुई हैं। कहीं ये कृतियाँ अनूदित होते-होते इनके नाम में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। जैसे- 'पंचतंत्र' अरबी भाषा में 'कलील-दमना' नाम से विख्यात है।

अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हम विश्व साहित्य की अनेक कृतियों से आज परिचित हुए हैं। विश्व समुदाय के पास महत्वपूर्ण कृतियाँ अंग्रेजी भाषा में अनुवादित होकर पहुँची हैं। होमर (इलियड ओडिसी), विलियम चासर (कैंटरबरी टेयिल्स), दांटे (डिवाइन कॉमेडी), ह्यूगो (ला मिराबिल), बोकाचियो (देकामरण), चार्ल्स डार्विन (ओरिजिन ऑफ स्पीसिज), सिंगमंड फ्रायड (द इंटरप्रटेशन ऑफ ड्रिम्स), कार्ल मार्क्स (कैपिटल), टॉलस्टाय (वार एंड पीस, द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू) गोर्की (द मदर) और दोस्तोवस्की (क्राइम एंड पनिशमेंट) आदि साहित्यकार पूरी दुनिया में अनुवाद के माध्यम से ही वैचारिक जगह बनाने में सफल हुए।

अनुवाद किसी क्षेत्र विशेष की साहित्यिक-संस्कृति को समझने का एक सशक्त माध्यम है। एक प्रकार से यह संस्कृति के वाहक का काम करती है। किंतु अनुवाद रचनाशीलता और सर्जनात्मकता के लिए साहित्यिक अनुवाद की मुख्य चुनौती है। साहित्यिक अनुवाद के लिए भाषिक-संरचना के साथ-साथ उसमें निहित भाव एवं विचार को पाठक के सामने लाना अति आवश्यक है। इस दृष्टि से साहित्यिक अनुवादकों ने अनुवाद के दो रूप माने हैं-

(01) साहित्यानुवाद (02) साहित्येत्तर अनुवाद।

साहित्यिक अनुवाद और साहित्येत्तर अनुवाद में 'भाव' एवं 'शब्द' रूप को लेकर अंतर है। जहाँ साहित्यानुवाद में 'भावपरक' तत्वों (भावानुवाद को 'सेस फॉर सेस ट्रांसलेशन' कहा जाता है।) की प्रधानता रहती है वहीं साहित्येत्तर अनुवाद में 'शब्द' की। साहित्यिक अनुवाद में यह जरूरी नहीं है कि मूल शब्द अपनी यथा-स्थिति में रहे। भाव-विचार-जनित तत्वों का समावेश होने की वजह से उसके मूल शब्दों की हानि की संभावना अधिक रहती है।

सृजनात्मक साहित्य के अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, रिपोर्ताज, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, नाटक, एकांकी, प्रहसन, आलोचना, डायरी, गल्प, रेखाचित्र, पर्यालोचन (पुस्तक समीक्षा) साक्षात्कार आदि आते हैं। सृजनात्मक साहित्य की रचना के लिए अनुभूति, भाव, विचार एवं कल्पना की आवश्यकता पड़ती है। जब कोई अनुवादक सृजनात्मक कृति का अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में करता है तो उसे साहित्यिक अनुवाद कहा जाता है। साहित्यिक अनुवादक मूल कृति का अनुवाद करते समय उसमें निहित भाषा, प्रतीक, बिंब, वाक्य संरचना, पदबंध, मुहावरा लक्षणा तथा व्यंजना आदि तत्वों को अनुवादित भाषा में लाने का प्रयास करता है। इसी तरह से कोई रचना अपने देशकाल,

वातावरण तथा संस्कृति से गहरे रूप में जुड़ी होती है। अनुवादक इस भाव-भूमि को अनुवादित कृति में उतारने का प्रयास करता है, क्योंकि कोई साहित्यिक रचना उस भौगोलिक-क्षेत्र की संस्कृति, कला तथा रीतियों को प्रकट करती है। इसी विशेषता को अनुवादित कृति में उतारना दुष्कर कार्य है।

अनुवाद की मुख्य समस्याएँ

साहित्य की सारी विधाएँ अपनी अलग विशेषताओं की वजह से एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। कविता जिस तात्कालिकता के साथ पाठक समाज पर अपना प्रभाव छोड़ती है, उस तरह से उपन्यास नहीं। यही अंतर हमें नाटक, निबंध, आलोचना आदि विधाओं में भी दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि साहित्यिक अनुवादकों को इन विधाओं की विशेषता को ध्यान में रखते हुए अनुवाद-कार्य में संलग्न होना चाहिए।

काव्यानुवाद की समस्याएँ

कविता अनुवादकों के सामने सबसे बड़ी समस्या उसकी पुनर्रचना को लेकर होती है। अगर काव्यानुवादित कृति मूल रचना के भौगोलिक, सांस्कृतिक, देशकाल तथा वातावरण को प्रकट करने में निरर्थक साबित होती है तो वह भावना के स्तर पर अपना कदापि भी प्रभाव नहीं छोड़ सकती। इसके लिए काव्यानुवादक को मूल कृति की विषय-वस्तु, संवेदना तथा भाषिक-संरचना का पूरा ज्ञान होना चाहिए। एक दूसरी समस्या यह है कि कविता का शाब्दिक अनुवाद नहीं होता है। उसका भावानुवाद ही हो सकता है। इसके लिए अनुवादक को कविता में प्रयुक्त रस, छंद, अलंकार, बिंब और प्रतीक आदि के साथ उसकी मूल संवेदना से गहरे रूप में जुड़ना होगा, क्योंकि हिंदी कविता में शब्द की जगह प्रतीक का बहुतायत रूप में प्रयोग होता है। एक भाषा की संस्कृति के प्रतीक को किसी दूसरी भाषा की संस्कृति के प्रतीक के रूप में उपयोग नहीं कर सकते। स्पष्ट है कि एक भाषा की संस्कृति दूसरी भाषा की संस्कृति से अलग होती है।

उदाहरण के रूप में भारतीय संस्कृति के किसी स्त्री पर लिखी गई कविता का अंग्रेजी अनुवाद करते समय हमें अमरीकी संस्कृति में मान्य स्त्री का प्रतीक ढूँढना होगा। वरना भारतीय स्त्री के प्रतीक को अगर हू-ब-हू रूप में प्रयोग किया गया तो अनुवादित भाषा के पाठक को भारत की स्त्री के महत्व को अलग से समझना होगा।

इसी तरह तुलसी कृत 'विनय पत्रिका' में 'मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं।' (अर्थात् मैं अपने मन को सभी ओर से मोड़कर केवल श्री रघुनाथ जी के ही चरणों का सेवक बना दूँगा) में 'पद कमल' कोमलता का प्रतीक है, जबकि यूरोपीय काव्यानुवाद की भाषा में यह जरूरी नहीं है कि इसी तरह का उदाहरण मिले।

कथा-अनुवाद की समस्याएँ

कथा साहित्य का अनुवाद काव्यानुवाद से कई मायने में भिन्न है। वह कविता की अपेक्षा अधिक वर्णनात्मक होता है। कथा-अनुवाद में वर्णनात्मकता के साथ-साथ उसमें निहित वैचारिक-तत्व पर अधिक बल देना पड़ता है। उपन्यास अथवा कहानी में पात्र के अंतर्द्वंद्व को समझना अनुवादक के लिए काफी कठिन काम होता है, क्योंकि कथा-साहित्य विभिन्न सोपानों में रचे जाते हैं। कभी-कभी स्रोत भाषा को लक्ष्य भाषा के उपमानों में समानता होते हुए भी अर्थ की भिन्नता दिखाई पड़ती है। जैसे- 'वह गाय-सा दिखाई पड़ता है।' यहाँ गाय भारतीय संस्कृति में 'सज्जनता' का प्रतीक है, जबकि यही अंग्रेजी भाषा में 'मूर्ख' का। अतः उपर्युक्त भाषा का अनुवाद She is like cow की जगह (Cow) हमें किसी अन्य उपमान को खोजना पड़ेगा।

कथा अनुवादक को शिल्प, संवाद और परिवेश की संस्कृति को स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में लाना होता है जो काफी कठिन काम है। इस संबंध में प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि- "अनुवादक अथवा रूपांतरकार प्रायः मूल रचना में वर्णित स्थितियों के लिए लगभग उनसे मिलती-जुलती स्थितियों का वर्णन कर देते हैं। यहाँ तक कि अनुवाद करते समय मूल कृति में आए नामों और रीति-रिवाजों के वर्णनों में भी परिवर्तन कर देते हैं। अनुवाद संबंधी ये पद्धतियाँ अनुवाद की प्रमुख समस्या का समाधान तो करती नहीं बल्कि समस्या से पलायन ही करती है।" इतिहास, राजनीति, यथार्थ, पारिवारिक झंझावात तथा बाजारू-संस्कृति का प्रभाव कथा के इर्द-गिर्द अथवा कथा-नायक में दिखाई पड़ता है। अनुवादक को इन खूबियों को भी समझना होगा तभी वह श्रेष्ठ अनुवाद कर सकता है।

निबंध अनुवाद की समस्या

निबंध हिंदी गद्य साहित्य की सशक्त विधा है। निबंध लिखने के लिए सुगठित, सुव्यवस्थित तथा परिमार्जित भाषा की आवश्यकता पड़ती है। तत्पश्चात् किसी गहन विषय पर विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत किया जाता है। विचारों में संतुलन, चयनित विषय के प्रति न्याय तथा प्रभावशाली निबंध ही पाठक को सोचने के लिए विवश करते हैं। अनुवादक को इस दृष्टि का विशेष ख्याल रखना पड़ता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखा गया निबंध 'कविता क्या है' में 'रसदशा' पर विस्तृत चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि- "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था 'रसदशा' कहलाती है। हृदय की इसी मुक्तावस्था के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।" इसी परिभाषा को यदि यूरोपीय भाषा में अनुवाद करना हो तो अनुवादक के सामने 'रसदशा' एवं 'मुक्तावस्था' को अनुवादित करना सबसे दुष्कर कार्य होगा। अनुवादक इन भाव-जनित शब्दों को व्यवस्थित लिखने में यदि कुशलता को प्राप्त कर लेता है तो उसे अनुवाद करने में ज्यादा कठिनाई नहीं आएगी।

नाट्यानुवाद की समस्याएँ

नाटक मंचीय विधा है। इसमें अनुवादक को स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की जानकारी रखना ही काफी नहीं है, क्योंकि नाटक में पात्र परिवेश के अनुसार ही भाषा को बोलता है। नाटक का उद्देश्य पूरा हो इसके लिए लेखन से बाहर कई बाह्य तत्वों जैसे- मंच की सजावट, वेशभूषा और शारीरिक-कौशल पर विशेष बल दिया जाता है। इसी विशेषता को अनुवादक संवादात्मक-प्रकृति को बनाए रखते हुए स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में दिखाने का दुरूह कार्य करता है। नाट्यानुवाद में अनुवादक के सामने एक दूसरी समस्या यह भी रहती है कि नाटक का नायक वर्ग-विशेष एवं अपनी संस्कृति तथा वातावरण का प्रतिनिधित्व करता है। उसको लक्ष्य भाषा में उसी रूप में लाना अनुवादक के लिए चुनौती भरा काम होता है, क्योंकि स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा में सांस्कृतिक-भिन्नता होती है। उदाहरणस्वरूप हम देख सकते हैं- यूरोपीय संस्कृति में लोग नौकर को उसके नाम के आगे 'मिस्टर' जैसे शब्द लगाते हैं। यदि यूरोपीय भाषा के किसी ऐसे नाटकीय संवाद को अनुवाद के माध्यम से हिंदी भाषा में 'श्रीमान' लगाकर लिखते हैं तो संवाद का प्रभाव क्षीण हो जाएगा। कारण यह है कि भारतीय संस्कृति में नौकर को श्रीमान जैसे शब्दों से बुलाने की परंपरा नहीं रही है। बल्कि ऐसा करने से नाटक में 'व्यंग' को सृजित करने के बराबर है।

आलोचनात्मक अनुवाद की समस्याएँ

आलोचना किसी कृति के गुण-दोषों का सम्यक् विवेचन होता है। इसमें आलोचक के अपने निजी विचार या नीति-नियम होते हैं। अनुवादक को सर्वप्रथम इसमें कृति को समग्रता से समझने की आवश्यकता होती है। मूल कृति के विचार को यदि अनुवादक समझ जाता है तो उसे लक्ष्य भाषा में अनुवाद करना आसान हो जाता है। इस तरह के अनुवाद में मूल रचना के सादृश्य अनुवाद पर बल दिया जाता है। यही कारण है कि साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा आलोचनात्मक अनुवाद करना सरल है, किंतु इसमें अनुवादक को मूल कृति के विचार को समझना होगा। तभी वह अनुवाद को सही ढंग से कर पाएगा।

अंत में यही कहा जा सकता है कि साहित्यिक अनुवाद केवल शब्दानुवाद भर नहीं है अपितु यह भाषायी एवं सांस्कृतिक-रूपांतरण भी है। स्रोत भाषा की रचना लक्ष्य भाषा में प्रवेश करती है, इसलिए मूल रचना अपने भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशेषता के साथ लक्ष्य भाषा में घुल-मिल जाती है। स्रोत भाषा की कृति के विचार, गंभीरता, संवेदना एवं मानवीय-मूल्य आदि जैसे प्रश्न लक्ष्य भाषा के समुदायों के लिए कभी-कभी उनके विचारों में क्रांति लाने का प्रबल माध्यम बनता है। कार्ल हेनरिख मार्क्स (1818-1889) एक जर्मन दार्शनिक थे। इनकी पुस्तक 'द कैपिटल' ने अनुवाद के दम पर ही पूरी दुनिया के विचारकों को हिलाकर रख दिया। रूस, भारत, चीन और नेपाल आदि तक उनके सिद्धांत/दर्शन से लोग प्रभावित हुए। यह सब अनुवाद से ही संभव हो सका। इसी तरह से महाभारत, रामायण और गीता ने अपने नीति, त्याग और कर्म की वजह से पाश्चात्य देशों को काफी प्रभावित किया। यह सब अच्छे अनुवाद से ही संभव हो सका है। अतः एक अच्छे अनुवादक की यह विशेषता होती है कि वह स्रोत

भाषा के सांस्कृतिक-भावना, चिंतन, संघर्ष, कल्पना, संवेदना तथा मानवीय-मूल्यों को लक्ष्य भाषा में अहमियत दे जिससे वह स्रोत भाषा की कृति के उद्देश्य में सफल हो सके।

संदर्भ ग्रंथ

01. Bass nett, Susan & Trivedi, Harish (eds-) : 1991, Post Colonial translation : Theory and Practice

02. माचवे, प्रभाकर : कथा साहित्य का अनुवाद, अनुवाद (पत्रिका), जुलाई-सितंबर, 1971

03. नगेंद्र (सं.) : अनुवाद विज्ञान : अनुप्रयोग और सिद्धांत, 1993

04. शुक्ल, आ. रामचंद्र : चिंतामणि, भाग-एक, 2001

05. गुप्ता, नीता (सं.) : अनुवाद (अंक- 138)

06. गोपीनाथन, जी : अनुवाद सिद्धांत एवं प्रयोग, 2008

07. तिवारी, भोलानाथ एवं चतुर्वेदी, महेंद्र (सं.) : काव्यानुवाद की समस्याएँ, 1993

08. सिंह जदौन, राम गोपाल : अनुवाद के विविध आयाम, 2009

09. नौटियाल, डॉ. जयंती प्रसाद : अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार, 2002

– सहायक प्रोफेसर, हिंदी, दयावंती पुंज डिग्री कॉलेज, सीतामढ़ी, भदोही (उत्तर प्रदेश), पिन - 221309

❑❑❑

अनुवाद के महत्व एवं प्रकार

डॉ. जी. शांति

भाषा के विविध अंगों और प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन उन्नीसवीं सदी में शुरू हुआ। बीसवीं सदी में लोग इसका विकास प्रयोगशाला की सहायता से करने लगे। ध्वनि, मापक उपस्कर बने। अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का एक अंग माना गया। आधुनिक युग में अनुवाद मनुष्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक जरूरत के साथ ही कार्यालयी कामकाज की अत्यावश्यक शर्त भी बन गया है। देश-विदेश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले मनुष्य के साथ जीवन के अनेकविध धरातल पर वह एक-दूसरे से सतत संपर्क बनाकर व्यक्तिगत तथा सामूहिक संबंधों की कड़ी को मजबूती से जोड़ना चाहता है। अनुवाद का प्रयोजन संकुलित कटघरे से हटकर इस वैज्ञानिक युग में बहुआयामी परिप्रेक्ष्य में उजागर हो रहा है। वास्तव में अनुवाद एक संशिष्ट प्रक्रिया है जो पाठ-सापेक्ष होने के साथ अनुवादक के व्यक्तित्व की छाप को भी अंकित करती है। सही अर्थों में अनुवाद स्रोत भाषा के प्रतीकों के संकेत अर्थों का लक्ष्य भाषा में अंतरण का प्रामाणिक प्रयास होता है।

एक भाषा में कथित विषय या विचार को दूसरी भाषा में अंतरण करने की प्रक्रिया को अनुवाद कहते हैं। तर्जुमा, भाषा, टीका, रूपांतर, भाषांतर, भाषांतरण, अंतरण आदि शब्द अनुवाद के लिए प्रयोग किए जाते हैं। अनुवाद शब्द वद् धातु से निर्मित है। जिसका अर्थ है बोलना। अनुवाद का इतिवृत्त जितना प्राचीन है, उतनी ही उसकी महत्ता है। कहा जाता है कि अनुवाद की परंपरा लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष से मिलती है। अनुवाद की सहायता से ही विश्व साहित्य की अवधारणा अस्तित्व में आई। अनुवाद के कारण ही प्रेमचंद, टैगोर, टालस्टाय, पाब्लो नेरूदा, कालिदास, तिरूवल्लुवर, शेक्सपियर आदि की रचनाएँ विश्वभर में चर्चित हुईं। भारत जैसे बहुभाषा भाषी विकासशील देशों के राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, शैक्षिक, आर्थिक विकास के लिए अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

संस्कृत में अनुवाद शब्द का प्रयोग 'गुरु की बात का शिष्य द्वारा दुहराया जाना', 'पश्चात्कथन','दुहराना', 'पुनः कथन', 'कहना', 'ज्ञात को कहना', 'समर्थक के लिए प्रयुक्त कथन', 'विधि या विहित का पुनः कथन', 'आवृति', 'सार्थक आवृति' आदि अर्थों में हुआ है।

हिंदी में 'अनुवाद' शब्द संस्कृत से आया है, जो 'वद्' धातु में 'धञ' प्रत्यय और 'अनु' उपसर्ग लगाने से निष्पन्न हुआ है। इसका मूल अर्थ होता है- व्याख्यात्मक आवृति या पूर्व कथित बात का उल्लेख विशेषतः मीमांसा में किसी विधि प्राप्त आशय, पूर्वोक्ति निर्देश की व्याख्या चित्रण या टीका-टिप्पण करना या उन्हें दूसरे शब्दों में दोहराना। हिंदी में अनुवाद का अर्थ पुनरुक्ति या पुनरुल्लेख समीचीन है, इसे अनुवचन भी कह सकते हैं।

परिभाषा

अनुवाद को तरह-तरह से पारिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

• मूलभाषा के समतुल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं। संदेशों की यह मूल्यसमता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से, निकटतम एवं स्वाभाविक होती है।

– नाइडा तथा टेबर

• अनुवाद वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सार्थक अनुभव को एक भाषा-समुदाय से दूसरे भाषा समुदाय में संप्रेषित किया जाता है। – पट्टनायक

• एक भाषा में व्यक्त भाव को, यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है। – डॉ.भोलानाथ तिवारी

संक्षेप में कहना हो तो "स्रोत भाषा के मूल पाठ के अर्थ को लक्ष्य भाषा के परिनिष्ठित पाठ के रूप में रूपांतरण करना अनुवाद है।"

अनुवाद का महत्व

वर्तमान युग में अनुवाद की महत्ता और उपयोगिता केवल भाषा और साहित्य तक ही सीमित नहीं है, वह हमारी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय ऐक्य का माध्यम है, जो भाषायी सीमाओं को पार करके भारतीय चिंतन और साहित्य की सर्जनात्मक चेतना की समरूपता के साथ-साथ, वर्तमान तकनीकी और वैज्ञानिक युग की अपेक्षाओं की पूर्ति कर, हमारे ज्ञान-विज्ञान के आयामों को देश-विदेश से संपृक्त करती है। आधुनिक युग को 'अनुवाद का युग' कहा गया है। यद्यपि अनुवाद सबसे प्राचीन व्यवसाय में से एक कहलाता है तथापि उसको जो महत्व बीसवीं सदी में प्राप्त हुआ वह उससे पहले उसे नहीं मिला। प्रारंभ में अनुवादक को साहित्य की दुनिया में बड़ी हीन-दीन दृष्टि से देखा गया। एक सशक्त और सार्थक परंपरा के रूप में अनुवाद को कभी न तो लोक समर्थन मिला और न ही व्यावसायिक प्रोत्साहन। परंतु ज्यों-ज्यों ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होने लगा, विश्व दृष्टि का निर्माण होने लगा।

वर्तमान युग में अधिकतर राष्ट्र ऐसे हैं जिनमें बहुभाषिकता की स्थिति मिलती है। सोवियत यूनियन, भारतवर्ष, स्विट्जरलैंड आदि में अनेक भाषाओं को न्यूनाधिक रूप में समानता का दर्जा मिला हुआ है। एक ही राजनैतिक प्रशासनिक इकाई की सीमा के भीतर भाषायी बहुसंख्यक भी रहते हैं और भाषायी अल्पसंख्यक भी। लोकतंत्र में सब लोगों का प्रशासन में समान रूप से भाग लेने का अधिकार तभी सार्थक हो सकता है जब उनके साथ उनकी भाषा के माध्यम से संपर्क किया जाए। इससे बहुभाषिकता की स्थिति पैदा होती है और उसके संरक्षण की प्रक्रिया में अनुवाद कार्य का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक तथा साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान-प्रदान के कारण अनुवाद कार्य की अनिवार्यता और महत्ता की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित हुई है।

अनुवाद एक ऐसा माध्यम है, जो इतिहास के विभिन्न मोड़ों पर सांस्कृतिक नवजागरण का कारण बना है। आज की मानव संस्कृति में अनुवाद की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। विश्वबंधुत्व की कल्पना साकार करने के लिए विश्व साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। यह 'अनुवाद' से ही संभव हो सकता है। देश का जातीय इतिहास, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य एवं साहित्यिक संवेदना के संदर्भ में अनुवाद सेतु है, भले ही वह हर देश की अलग-अलग संकल्पना हो। सन् 1907 में रवींद्र नाथ टैगोर ने विश्व साहित्य का उल्लेख किया था। यह अनुवाद द्वारा ही संभव हो सकता है। अनुवाद में विश्व की संस्कृति का परिचायक बनने की पूरी क्षमता है।

भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण के लिए अनुवाद को एक आवश्यक उपकरण माना गया है। दो भाषाओं की तुलना में अनुवाद के द्वारा ही हमें यह मालूम होता है कि वाक्य में किस शब्द का क्या अर्थ है। उसके बाद ही हम दोनों में समानता तथा असमानता के बिंदु पहचान पाते हैं। तुलनात्मक साहित्य विवेचन में साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन के साधन रूप में अनुवाद के प्रयोग के द्वारा सदृश-विसदृश अंशों का अर्थ बोध होता है जिससे अंशों की तुलना की जा सके। अनुवाद के सेतु पर ही चलकर मूल भाषा अपनी साहित्यिक तथा तकनीकी उपलब्धियों को लक्ष्य भाषा तक पहुँचाती है। 'अनुवाद' विश्व की चेतना और गति का बैरोमीटर और विश्व के संपर्क का सूत्रधार बन गया है।

अनुवाद के माध्यम से प्रतिभाशाली विद्यार्थी किसी विषय या ज्ञान शाखा का अध्ययन अपनी मातृभाषा में सरलता और पूरी समझ के साथ कर पाता है। कोश कार्य भी एक प्रकार का अनुवाद कार्य है। सामाजिक कोश में एक ही भाषा के भीतर अनुवाद होता है और द्विभाषी कोश में दो भाषाओं के बीच। आज अनुवाद का क्षेत्र बड़ा व्यापक और निरंतर महत्वपूर्ण होता जा रहा है। अनुवाद विभिन्न अनुशासनों, विविध ज्ञान शाखाओं के विभिन्न भाषाओं के विस्तार तक का संसाधन बन गया है। विश्व मैत्री एवं सहयोग के इस नए दौर में किसी भी प्रदेश की जनता को समझने के लिए उस प्रदेश के साहित्य को समझना अत्यंत अनिवार्य हो गया है। अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन सर्वेक्षण यही प्रमाणित करता है कि आज हम अनुवाद के युग में जी रहे हैं। संसार की सारी प्रमुख भाषाएँ परस्पर अनुवाद करती रहती है।

विश्व में अनुवाद

भाषा की विभिन्नता से परिणामस्वरूप तथा मानव-सभ्यता के विकास के साथ अनुवाद कार्य प्रारंभ हो गया था। चौथी-पाँचवी शताब्दी ई.पू. में यहूदी सामूहिक रूप से धर्मशास्त्र सुनते थे। जिन्हें हिब्रू भाषा ज्ञात नहीं थी उन्हें दुभाषिए आर्मेइक भाषा में अनुवाद कर धर्मशास्त्र समझाते थे। संसार का उपलब्ध प्राचीनतम अनुवाद दूसरी शताब्दी ई.पू. का है जो रौजेटा प्रस्तर पर है। पश्चिम में व्यवस्थित अनुवाद की परंपरा बाइबिल के अनुवादों से प्रारंभ हुई है। संसार की सभी भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद हुए हैं।

भारत में अनुवाद

भारतीय भाषाओं में सर्वप्रथम संस्कृत के ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद होने का उल्लेख मिलता है। छठी शताब्दी में संस्कृत के पंचतंत्र तथा बोधिसत्व का फारसी में अनुवाद किया गया। संस्कृत के कई ग्रंथों के अनुवाद ग्रीक, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी इत्यादि भाषाओं में दिए गए।

हिंदी में अनुवाद

हिंदी में अनुवाद की परंपरा भक्तिकाल से ही दिखाई देती है यद्यपि इसका विकास भारतेंदु युग से दिखाई देता है। चंद नामक कवि ने संवत् 1563 में 'हितोपदेश' का दोहा-चौपाई में अनुवाद किया। राम कथा के अमर गायक तुलसी ने संस्कृत के कुछ श्रेष्ठ श्लोकों का अनुवाद 'रामचरितमानस' एवं 'बैराग्य संदीपिनी' आदि काव्य-ग्रंथों में किया है यथा गीता के प्रसिद्ध श्लोक का भावानुवाद प्रस्तुत है-

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

भावानुवाद

जब-जब होई धरम की हानी।
बाढहिं असुर अधम अभिमानी।।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।

रीतिकाल में 'बिहारी सतसई' की लोकप्रियता से प्रभावित होकर पं.परमानंद ने इस सतसई का संस्कृत में 'शृंगार सप्तशती' नाम से अनुवाद किया।

आधुनिककाल में अंग्रेजी साहित्य के प्रसार एवं प्रभाव के कारण अनुवाद का महत्व अधिक बढ़ा फलस्वरूप श्रेष्ठ ग्रंथों के अनुवाद की स्वस्थ परंपरा विकसित हुई। कई अंग्रेजी विद्वानों ने हिंदी के श्रेष्ठ ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। अंग्रेजी के लगभग सभी प्रसिद्ध नाटकों के हिंदी में अनुवाद हुए। अंग्रेजी कवियों की कविताओं के भी अनुवाद हुए, जिनमें उल्लेखनीय हैं- रामचंद्र शुक्ल का 'लाइट ऑफ एशिया' का बुद्ध चरित, बच्चन का खैय्याम, रूबाइयों का अनुवाद, ईट्स की कविताओं के अनुवाद आदि।

संप्रति हिंदी में संसार की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध साहित्य एवं साहित्येतर विषयों के अनुवाद किए गए हैं- और किए जा रहे हैं।

अनुवाद के प्रकार

संस्कारशील जीवन के लिए केवल एक भाषा नहीं अपितु अनेक भाषाओं में व्याप्त तथा व्यस्त जीवनानुभूति, सौंदर्य तथा संस्कारों की भी आवश्यकता होती है। परंतु अच्छी अनुवाद प्रक्रिया के बिना यह सब कुछ असंभव है। फलतः दुनिया भर की भाषाओं के एक-दूसरे में अनुवाद हुए और संस्कृति, सभ्यता तथा संस्कारशील मनुष्य-जीवन का आदान-प्रदान होता रहा। अनुवाद की इस प्रक्रिया में प्रयोजन, प्रयोग तथा प्रयोक्ता आदि तत्वों के आधार पर अनुवाद के अनेक भेद-प्रभेद हो सकते हैं।

डॉ. जी. गोपीनाथ के अनुसार प्रकृति के आधार पर अनुवादों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-पहला

बाह्याधार और दूसरा आंतरिक आधार। बाह्याधार के अंतर्गत अनुवाद को तीन उपवर्गों और आंतरिक आधार में अनुवाद को दो उपवर्गों में बाँट सकते हैं।

आंतरिक आधार

अनुवाद की प्रकृति के आंतरिक आधार पर अनुवाद दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-मूलनिष्ठ और मूलाश्रित या मूलोन्मुख।

(क) मूलनिष्ठ

मूलनिष्ठ अनुवाद उस अनुवाद को कहते हैं- जिसमें अनुवादक स्रोत भाषा के कथ्य एवं कथन पद्धति दोनों का निर्वाह अपने अनुवाद में करता है। अभिव्यक्ति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से यथासंभव अनुवाद अपने अनुवाद को मूल रचना के समक्ष रखने का प्रयत्न करता है। इसके दो भेद होते हैं-

1. शब्दानुवाद

शब्दानुवाद में अनुवादक का ध्यान मूल रचना के प्रत्येक शब्द के अनुवाद पर केंद्रित होता है। इसे पंक्ति-दर-पंक्ति, वाक्य-दर-वाक्य अनुवाद भी कहते हैं। इसके तीन उपभेद होते है।

(अ) शब्दक्रमाग्रही

इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल सामग्री की हर शब्दाभिव्यक्ति का सामान्य रूप से उसी क्रम से अनुवाद करता है जिस क्रम में सामग्री दी जाती है-

I am going to temple- मैं हूँ जा रहा मंदिर।

अनुवाद का यह प्रकार हास्योत्पादक लगता है।

(आ) शब्दाग्रही

इसमें अनुवादक मूल के शब्दक्रम के प्रति आग्रह नहीं रखता परंतु मूल रचना के प्रत्येक शब्द का अनुवाद करने के लिए तत्पर रहता है। इस अनुवाद में मूल के प्रत्येक शब्द के अनुवाद के प्रति आग्रह होने के कारण स्रोत भाषा की अदृश्य छाया लक्ष्य भाषा की अभिव्यक्ति को काफी प्रभावित करती है।

(इ) सम्यकाग्रही

अनुवादक मूल रचना का कथ्य एवं कथन दोनों दृष्टियों से सम्यक अनुवाद करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के अनुवाद में वह न तो अपनी ओर से अभिव्यक्त इकाई में कुछ जोड़ता है न मूल अभिव्यक्ति इकाई में से कुछ घटाता है। इस प्रकार का अनुवाद सूक्ष्म रागात्मक भावाभिव्यंजना में कदाचित सफल न हो परंतु सूचना प्रधान साहित्य के अनुवाद में इसकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

शब्दानुवाद की सीमाएँ

• शब्दानुवाद की सफलता स्रोत एवं लक्ष्य भाषा के अभिव्यक्ति समर्थ्य की समानांतरता पर निर्भर करती है। अगर दोनों भाषाओं में समान अभिव्यक्तियाँ उपलब्ध हों तभी शब्दानुवाद सफल हो पाता है।

• अनुवादक मूल भाषा के प्रभाव से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाता है। स्रोत भाषा की अदृश्य छाया लक्ष्य भाषा में प्रायः उपस्थित रहती है, अतः लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्ति का सौंदर्य सहज नहीं रह पाता।

• कभी-कभी अनुवादक शब्दानुवाद के उत्साह में स्रोत भाषा की प्रकृति, उसकी कलात्मक भंगिमाओं को, मिजाओं को आत्मसात किए बिना शब्दकोश के हथियारों से लैस होकर इस प्रकार अनुवाद प्रस्तुत कर देता है जो जटिल, दुरूह संदर्भच्युत और किसी सीमा तक हास्यास्पद भी हो जाता है, जैसे Cheque has been passed का अनुवाद 'चैक उत्तीर्ण हो गया' - 'पास' का अनुवाद उत्तीर्ण कर दिया गया है।

2. सहजानुवाद

इसे आदर्श अनुवाद कहा जाता है। इसमें अनुवादक स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अर्थात्: एवं शब्दतः निकटतम सहज अनुवाद करता है। इसमें अनुवादक किसी आग्रह-दुराग्रह, आरोप-प्रत्यारोपण से मुक्त होकर सिर्फ यह प्रयत्न करता है कि लक्ष्य भाषा में अनुवाद को पढ़कर पाठक-श्रोता उस रचना के आनंद को मूल भाषा के पाठकों के समान तीव्रता से ग्रहण करें।

(ख) मूलाश्रित अथवा मूलोंमुख

इस अनुवाद में अनुवादक की भाषा में मूल भाषा के संपूर्ण भाव एवं उसके संपूर्ण कलात्मक सौंदर्य दोनो को अभिव्यक्त करने के लिए संकल्पबद्ध नहीं होता। इसके कई उपभेद हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वानों ने अनुवाद के इस प्रकार को 'मूल-मुक्त अनुवाद' कहा है। इसमें मूल भाव की रक्षा की जाती है, किंतु स्त्रोत भाषा की भाषा-शैली अनुवादक के लिए बंधनकारी नहीं होती है। अतः इसे मूलाश्रित या मूलोंमुख कहना ज्यादा उचित होगा।

1. भावानुवाद

भावानुवादक मूल रचना की आत्मा की लक्ष्य भाषा में संपूर्णतया अभिव्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है। विशेषकर ललित साहित्य के लिए भावानुवाद अधिक उपयुक्त होता है। भावानुवाद को अनुवाद प्रक्रिया की महत्वपूर्ण पद्धति माना जाता है, क्योंकि भावानुवाद में मूल भाषा पाठ के प्रमुख विचार, भाव, अर्थ तथा संकल्पना को लक्ष्य भाषा में उनकी समस्त विशेषताओं के साथ संप्रेषित किया जाता है। भावानुवाद में अनुवादक का ध्यान कथ्य के भाव, विचार तथा अर्थ पर विशेष रूप से बना रहता है।

2. छायानुवाद

जब किसी रचना का शब्दानुवाद या भावानुवाद न कर रचना में मात्र कुछ परिवर्तन कर अन्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है तब ऐसे अनुवाद को 'छायानुवाद' कहते हैं। इसमें लेखक मूल रचना की छाया ग्रहण कर स्वतंत्र भाव से उसी रचना को पुनः लिखता है। छायानुवाद सृजनात्मक साहित्य एवं अनुवाद के बीच की वस्तु है। यह न तो पूर्णतया अनुवाद है और न पूर्णतया मौलिक साहित्य।

3. सारानुवाद

जब किसी लंबे वक्तव्य या रचना को उसके सारतत्व को पूर्णतया सुरक्षित रखते हुए एक या दूसरे कारण से संक्षिप्त किया जाता है तब ऐसा अनुवाद 'सारानुवाद' कहलाता है। सारानुवाद अर्थात् संपूर्ण रचना का नहीं, उसके सारात्व का अनुवाद मात्र ताकि पूरी रचना के कथ्य की आवश्यक जानकारी के साथ पाठक, श्रोता एवं अनुवादक के श्रम एवं समय की बचत हो सके।

4. व्याख्यानुवाद

जहाँ सारानुवाद किसी वक्तव्य अथवा रचना की संक्षिप्त की ओर संकेत करता है वहाँ व्याख्यानुवाद में किसी कृति का मात्र अनुवाद न कर उसको भी उसी में प्रस्तुत करना होता है। कुछ अनुवादक मूल बात का अनुवाद करते समय उसके प्रत्येक शब्द तथा पद की अतिरिक्त व्याख्या भी कर देते हैं। अतः इसे 'व्याख्यानुवाद' कहा जाता है। श्री लोकमान्य तिलक का 'गीता रहस्य' इसी प्रकार के अनुवाद का उदाहरण है। यह अनुवादक के अध्ययन-चिंतन-मनन से संपन्न होता है।

5. वार्तानुवाद अथवा आशु अनुवाद

कभी-कभी दो विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच कोई व्यक्ति भाषा माध्यम बनता है और उनकी आपसी बातचीत को अपने दो या अधिक भाषाओं के ज्ञान के कारण तुरंत ही एक-दूसरे के सम्मुख ही उनकी वार्ता के सहमति अथवा असहमति के मुद्दों में उन्हीं की भाषा में अनुवाद कर प्रस्तुत कर देता है अतः इस तरह के अनुवाद के लिए आशु या वार्तानुवाद अभिधान स्वीकार किया गया है। यह अनुवाद तुरंत किया जाता है। अतः अनुवादक को मूल वक्ता उसकी भाषा, भाषा का तेवर एवं नीति तथा विचारों से पूर्णतया वाकिफ होना होता है अन्यथा अनुवाद की एक हल्की-सी गलती दो व्यक्तियों अथवा दो राष्ट्रों इत्यादि के बीच मन-मुटाव, संघर्ष तथा युद्ध तक का कारण हो सकती है।

6. रूपांतरण

एक विधा की रचना को कुछ मामूली परिवर्तनों के साथ दूसरी विधा में परिवर्तित किया जाता है। जैसे मन्नू भंडारी ने अपने उपन्यास 'महाभोज' का स्वयं ही नाट्य रूपांतर किया है अथवा भारतेंदु ने मर्चेंट ऑफ वेनिस का अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' के शीर्षक से किया। इस तरह एक विधा से दूसरी विधा में उस विधा के चरित्र के अनुकूल परिवर्तन रूपांतर कहलाता है।

7. प्रति अनुवाद

लक्ष्य भाषा में अनूदित सामग्री को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनः स्रोत भाषा में अनूदित करना। इससे अनुवाद की प्रामाणिकता मालूम हो जाए।

बाह्याधार

1. गद्यत्व-पद्यत्व

सामान्य रूप से गद्य रचना का अनुवाद गद्य में होता है तथा पद्य रचना का अनुवाद पद्य से होता है। गद्य रचना का अनुवाद पद्य में भी हो सकता है और पद्य रचना गद्य में भी अनूदित की जा सकती है। ऐसे पाठ्यानुवाद को छंदबद्ध अथवा छंदानुवाद भी कहते हैं। कभी-कभी अनुवादक छनद के अनुशासन को अस्वीकार कर रचना का मुक्त छंद में अनुवाद कर देते हैं मुक्त छंद की कविताएँ भी कविताएँ कहलाती है।

2. साहित्यिक अथवा शैलीप्रधान साहित्य

कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, संस्मरण तथा आलोचना आदि साहित्य की विधाएँ है और उनके

भी एक भाषा से दूसरी भाषाओं में अनुवाद होते रहते हैं। सूचनाप्रधान साहित्य की तुलना में सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद कार्य बड़ा कठिन होता है, क्योंकि सूचना साहित्य के सपाट या सूक्ष्म एवं तकनीकी पक्ष को पारिभाषिक कोशों, शब्दकोंशों एवं नेमी कार्यानुवाद से निपटाया जा सकता है, परंतु ललित साहित्य में अनुवादक को भाव-क्षितिज की अंतरंग सिहरन, रचनागत तनाव, विभिन्न अर्थच्छायाओं, भाषा शैली की नाना भंगिमाओं को आत्मसात कर मूल भाषा से स्रोत भाषा में उसे साकार ही नहीं सजीव करना पड़ता है।

3. साहित्येतर विषयः सूचना प्रधान साहित्य

इस वर्ग के अनुवाद में शैली तत्व का प्रायः अभाव रहता है। भौतिकी, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, गणित तथा विधि साहित्य का समावेश इस वर्ग में होता है। इसके अंतर्गत सरकारी कार्यालयी साहित्य, प्रशासनिक पत्राचार, तकनीकी साहित्य आदि भी आते हैं।

साहित्यिक अनुवाद को शैलीप्रधान अनुवाद एवं साहित्येतर अनुवाद को विषय प्रधान या सूचना प्रधान कहा जाता है। मोटेतौर पर इन दोनों प्रकार के अनुवादों के अंतर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।

साहित्यिक अनुवाद

1 वैयक्तिक, कलापरक, अलंकारिक शैली
2 अर्थ के नष्ट होने की संभावना ज्यादा
3 भावानुवाद महत्वपूर्ण
4 पारिभाषिक शब्द अनिवार्य नहीं
5 पुनः सृजन आवश्यक
6 घटाया-बढ़ाया जा सकता है
7 परिनिष्ठित/आंचलिक/ग्रामीण/ अभिव्यंजनापरक भाषा
8 अनुभूति, रसात्मकता, समतुल्य प्रभाव आवश्यक

साहित्येतर अनुवाद

1. निर्वैयक्तिक, अनालंकारिक, वस्तुनिष्ठ शैली
2. अर्थ के नष्ट होने की गुंजाइश कम
3. शब्दानुवाद प्रायः आवश्यक
4. पारिभाषिक शब्द अनिवार्य है
5. पुनः सृजन अनिवार्य नहीं
6. घटाना-बढ़ाना प्रायः असंभव
7. परिनिष्ठित, सूचनापरक भाषा
8. पठनीयता, प्रमाणित, अर्थ-स्पष्टता बोधगम्यता पर्याप्त

आज विभिन्न क्षेत्रों में अनुवाद के संबंध एवं योगदान को हम देख सकते हैं। संस्कृति, धर्म और दर्शन, व्यवसाय, शिक्षा, मीडिया, पत्रकारिता, आयुर्विज्ञान, चिकित्सा, विज्ञान, विज्ञापन, राजनीति, आर्थिक, पर्यटन, कार्यालय आदि हर क्षेत्र में अनुवाद की अहम् भूमिका रहती है। यही सामाजिक या सार्वजनिक स्थलों पर जो सूचनाएँ होती हैं वे भी द्विभाषा में यानी दो भाषाओं में होती हैं। एक तो अंग्रेजी या हिंदी में होगा दूसरा उसका अनुवाद उस प्रदेश की प्रादेशिक भाषा में। रेलवे स्टेशनों में भी जो सूचनाएँ दी जाती हैं। वह एक ही भाषा में नहीं बल्कि दो-तीन भाषाओं में होती हैं ताकि लोग उसे समझ सकें। 'भाषा' की महानता वह है जो सही अर्थ में सही व्यक्ति तक पहुँचे। इस दृष्टि से जनता को विषय उनकी भाषा में ही पहुँचाने का कार्य अनुवाद द्वारा सिद्ध होता है। इस प्रकार साहित्य एवं साहित्येतर विषय के साथ भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. सत्यदेव मिश्र, डॉ. रामाश्रय सविता, अनुवादः अवधारणा और आयाम, सुलभ प्रकाशन लखनऊ-01, 1998

2 डॉ. शांति विश्वनाथन, साहित्यिक अनुवाद की समस्याएँ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा-01, 2013

– विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्री अबीरामी इल्लम, 2/179 बी-2, वानप्रस्थ रोड, वडवल्लि, कोयंबतूर - 641041 (तमिलनाडु)

❑❑❑

डॉ. हरिवंशराय बच्चन कृत 'ओथेलो' का हिंदी अनुवाद: एक विश्लेषण

डॉ. रमाकांत आपरे

अंग्रेजी साहित्य के एक ख्यातनाम नाटककार शेक्सपियर ने लगभग 37 नाटक लिखे हैं जिनमें से दस नाटक दुखांत नाटक हैं। इन दस नाटकों में से 'किंग्लेयर', 'हेमलेट', 'मेकबेथ', 'जूलिएस सिजर' और 'ओथेलो' प्रमुख दुखांत नाटक हैं। शेक्सपियर के कई नाटकों के अनुवाद अनेक भाषाओं में होते रहे हैं। विविध भाषाओं के साथ हिंदी में भी उन्हें अनूदित किया गया है। उनके नाटक विविध रंगमंच पर विविध रूपों में मंचित हुए हैं और उन्हें जनता ने पसंद भी किया है। शेक्सपियर के नाटकों में मानव स्वभाव की विविध प्रवृत्तियाँ और उनका सटीक अभिव्यंजन हुआ है। मानव स्वभाव की विभिन्न भाव-भंगिमाओं का चित्रण इसमें मिलता है। मनुष्य के कार्य कलाप, कृत्य एवम् अतर्द्वंद्व का सटीक चित्रण शेक्सपियर के नाटको में देखने को मिलता है। इन सभी के कारण शेक्सपियर के नाटक वैश्विक एवं त्रिकालबाधित चिरंतन हैं। इनके नाटकों में मनुष्य अपने संपूर्ण रूप में व्यक्त होता है। अंतर्द्वंद्व और संघर्ष भी दिखाई देता है। शेक्सपियर के नाटको में चरित्र ही भाग्य को निर्धारित करता है। शेक्सपियर के नाटक मानवी चरित्र की कमजोरियों को स्पष्ट करते हैं। इनके नाटक मनुष्य को नैतिकता का पाठ भी पढाते हैं। शेक्सपियर के नाटकों के मंचन में भी विविधता रही है। कहीं पर केवल कथानक का, तो कहीं पर पूरे नाटक का रूप बदलकर मंचन किया गया है। शेक्सपियर के एक नाटक 'ओथेलो का अनुवाद कई अनुवादकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से किया है। उन्हीं में से एक, डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने भी 'ओथेलो' का अनुवाद किया है। वह अनुवाद गद्यपद्यात्मक अनुवाद है जो केवल रंगमंच के लिए ही है।

हरिवंशराय बच्चन हिंदी के एक ख्यातिप्राप्त कवि, गीतकार एवं अनुवादक रहे हैं। उन्होंने आत्मकथा भी लिखी है। उन्होंने शेक्सपियर के अनेक नाटकों का अनुवाद किया है। इसमें 'ओथेलो' का भी अनुवाद उन्होंने किया है। यह अनुवाद करते समय उन्होंने गद्यपद्य अनुवाद शैली को अपनाया है।

'ओथेलो' के अनुवाद में उसकी स्पष्ट विशेषताएँ एवं विविधताएँ निम्न रूप से देखने को मिलती हैं।

1) **मूल की समृद्धि :** - कवि हृदय होने के कारण अनुवाद करते समय उन्होंने अनेक स्थानों पर मूल को समृद्ध करने का प्रयास किया है। जैसे -

मूल- Brabantio & what have you lose your wits?

अनुवाद-ब्रबैंशिया-क्या बकते है? अक्ल तुम्हारी खत्म हुई क्या?

टिप्पणी 'what' के लिए क्या बकते हो। अत्यंत योग्य अनुवाद है। छोटे से प्रक्षिप्त वाक्य ने मूल की समृद्धि की है।

2) **सटीक अनुवाद :** - अनुवाद के बहुत से हिस्से को देखकर ऐसा लगता है कि अगर शेक्सपियर हिंदी में लिखते तो ठीक वैसा ही लिखते जैसे बच्चन जी ने लिखा है।

मूल- Duke & take up this mangled matter at tha best ?

अनुवाद - राजा - इस झगड़े को रफ़ा-दफ़ा कर इसका अच्छा पहलू देखें।

मूल- logo - you have best your soul.

अनुवाद - इयागो - तुम्हारी दिल से प्यारी पुत्री भागी।

सटीक भावानुवाद जन भाषा में होते हैं। बच्चन की सटीकता का रहस्य, उपयुक्त पर्यायों का प्रयोग, भावानुवाद, प्रक्षिप्त अंश इत्यादि हैं।

3) **अनुवाद में चमत्कार :** - बच्चन ने अपनी सर्जनात्मकता के कारण अनुवाद के रूप एवं भाषा में कई स्थानों पर चमत्कार पैदा किए हैं। उन्होंने कहीं मुहावरों का प्रयोग किया हैं। कहीं पर वाक्य विविधता है, कहीं -कहीं मूल नाटक के उदाहरण तथा मुहावरों में परिवर्तन किया है। कहीं-कहीं पद्य को वाक्य रूप में अनुवादित किया है। भाव की दृष्टि से अनुवाद सक्षम हैं। यह करते समय कहीं-कहीं उनके शब्दों में अंतर आया दिखाई देता है।

4) **अस्पष्ट अनुवाद :** - उनका अनुकरण कहीं कहीं अस्पष्ट, अनियमित और उलझा हुआ लगता है। यह इसलिए हुआ है क्योंकि, उन्होंने अनुवाद की, छंदात्मकता बनाए रखने का प्रयास किया है। जैसे-

मूल- Brabantio & But words are word's I never yet did hear rhe bruised heart was pierced through the ear-

ब्रबेशियों - शब्द शब्द है , कभी नहीं यह मैंने माना, उनसे संभव है दिल का जुड़ जाना।

मूल नाटक के pierced और अनुवाद में 'जुड़ जाना' का भाव बिल्कुल विपरीत-सा लगता है।

5) **संस्कृतनिष्ठ अनुवाद :** - बच्चन जी अनुवाद करते समय उर्दू मिश्रित हिंदी का प्रयोग अधिक करते हैं लेकिन कुछ स्थानों पर उन्होंने संस्कृतनिष्ठ अनुवाद भी किया है। उन्होंने संवादों की नाटकीयता और प्रभाव बनाए रखने के लिए किसी शैली विशेष का बंधन नही रखा है। उनके 'ओथेलो' नाटक में संस्कृतनिष्ठ अनुवाद का उदाहरण मूल नाटक के अंक1 दृश्य 2 की पंक्तियों 76 - 83 और 85 - 91 में देखने को मिलता है।

6) **उर्दू का प्रयोग :-** अनुवाद करते समय बच्चन जी ने उर्दू भाषा का सहारा लिया है। उन्होंने उर्दू का प्रयोग इसलिए किया है क्योंकि, नाटक के चरित्र अपने आपको अधिक स्पस्ट रूप से व्यक्त कर सकें। जैसा - जब जीना बवाल हो तो जीना जहालत तो है ही। जब मौत हो हमारी मर्ज की दवा तो मरने से कौन परहेज करेगा'।

इस प्रकार उर्दू का प्रयोग भी वे अनुवाद में करते हैं।

7) **पर्यायों में विविधता :**-विविधता बच्चन जी के अनुवादों में तो है ही लेकिन यह पर्यायों के प्रयोग में भी है। भाषा, रूप और प्रकार की दृष्टि से मूल नाटक के कुछ शब्द और अभिव्यक्ति के स्थान पर विभिन्न शब्द तथा अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है। उन्होंने पर्यायों में विविधता लाने का प्रयास किया है।

8) **साधारण शब्द के स्थान पर मुहावरे :-** बच्चन जी का अनुवाद अभिन्न है। अनुवाद में अभिन्नता यह अनुवाद की विशेषता है। सामान्य शब्द के स्थान पर मुहावरे देकर लुभाने का प्रयास वो करते हैं। मुहावरों का प्रयोग सटीक है और संदर्भ के अनुरूप किया गया है। जैसे -

मूल नाटक- Make my tool my phrase-

अनुवाद : - अक्ल के अंधे और गाँठ के पूरे ।

9) **अलंकृत वाक्य का अलंकृत अनुवाद :** अलंकारों का अनुवाद अलंकारों में करना संभव नहीं है। फिर भी बच्चन जी ने मूल अलंकारों का अनुवाद अलंकारों में ही किया है। बच्चन जी की विचार शक्ति, असीम शब्द भंडार एवं वाग्विदग्धता के कारण ही यह संभव हुआ है।

मूल - logo - yet I, For more suspicion in that kind -Will do as it for surety.

अनुवाद : - इयागो-सच्चाई मैं नही जानता। मगर सिर्फ शक को मैं बेशक बात मानकर काम करूँगा।

टिप्पणी : - suspicion के लिए शक और surety के लिए बेशक पर्यायों का प्रयोग किया है।

10) **मुहावरों का अनुवाद :** - मुहावरों के अनुवाद में बच्चन जी सजग हैं। यथासंभव अंग्रेजी मुहावरों के समानार्थी मुहावरे देने का प्रयास उन्होंने किया है। जहाँ यह संभव नहीं वहाँ सार्थक भावानुवाद किया है। व्यंजना प्रधान मुहावरों का अनुवाद अभिधा प्रधान मुहावरों में कहीं नही किया गया है।

11) **पद्य का पद्य तथा गीतों में अनुवाद :-** बच्चन जी ने अनुवाद करते समय पद्य का पद्य में सुंदर अनुवाद किया है। उन्होंने गीतों का अनुवाद भी कलात्मक ढंग से किया है। अनुवाद करते समय गीतों की लयात्मकता, संगीतात्मकता बरकरार रखी है। कभी-कभी इसमें गीतों का अर्थ और भाव भी बदल गए हैं। लेकिन अनुवाद सटीक हुआ है।

12) **नामों का भारतीयकरण :** - बच्चन जी ने अनुवाद करते समय अंग्रेजी पेड़, पौधे, खाद आदि के लिए भारतीय नाम दिए हैं। यह इसलिए किया है क्योंकि दर्शक तथा पाठकों में भारतीय नामों से आत्मीयता का भाव जागृत होता है। स्वपरिवेश में भारतीय नाम संप्रेषणीय होते हैं।

13) **अनुवाद में छोड़े गए अंश :** - बच्चन जी का अनुवाद अविकल होने से अनुवाद में नाटक के किसी अंश को छोड़ने की संभावना अधिक नहीं है। मूल नाटक के कुछ वाक्य या अभिव्यक्ति का अनुवाद छूट गया है, ऐसा प्रतीत होता है फिर भी ऐसा आभास होता है। अनुवाद पूर्ण हुआ है। और यह सब अनुवाद में लयबद्धता, छंदबद्धता और सहजता लाने के उद्देश्य से किया गया है

14) **रंगमंच निर्देश :** - 'ओथेलो' का अनुवाद रंगमंच के लिए होने से निर्देश अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह निर्देश मूल नाटक के समान और उचित दिखाई देते हैं।

15) **पाद टिप्पणियाँ :** - बच्चन जी ने पाद टिप्पणियों का प्रयोग बहुत ही कम किया है। पूर्ण अनुवाद में केवल एक पाद टिप्पणी पृष्ठ 130 पर है।

निष्कर्ष

कलात्मकता से अनुवाद को समृद्ध किया है। अनुवाद सटीक, चमत्कारपूर्ण स्पष्टता आदि से पूर्ण है। संस्कृत, उर्दू, शब्दनिष्ठ अनुवाद, पर्यायों की विविधता, मुहावरों का प्रयोग, अलंकृत अनुवाद तथा मुहावरों का सार्थक भावानुवाद, गीतों का अनुवाद सार्थक ढंग से हुआ है। कुलमिलाकर पद्याअनुवाद, भारतीय नाम, पाद टिप्पणियों का प्रयोग, मंच निर्देश इत्यादि के कारण यह अनुवाद एक अनूठा अनुवाद है।

- हिंदी विभाग, कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, जालना, महाराष्ट्र

❑❑❑

साहित्यिक अनुवाद

डॉ. गिरीशसिंह बालाजीसिंह पटेल

किसी भाषा में कही या लिखी गई बात का किसी दूसरी भाषा में सार्थक परिवर्तन अनुवाद कहलाता है, संस्कृत की 'वद्' धातु से अनुवाद शब्द का निर्माण हुआ है। 'वद्' का अर्थ है बोलना 'वद्' धातु में 'अ' प्रत्यय जोड़ देने पर भावनात्मक संज्ञा में इसका परिवर्तन रूप है 'वाद' जिसका अर्थ है, कहने की क्रिया या कही हुई बात। 'वाद' में 'अनु' उपसर्ग जोड़कर 'अनुवाद' शब्द बना है जिसका अर्थ है प्राप्त कथन को पुनः कहना। अनुवाद का प्रयोग एक भाषा में किसी के द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री को दूसरी भाषा में पुनः प्रस्तुति के संदर्भ में किया गया। अनुवाद शब्द का स्वीकृत अर्थ है एक भाषा की विचार सामग्री को दूसरी भाषा में पहुँचाना। अनुवाद के लिए हिंदी में उल्था एवं अंग्रेजी में translation का प्रयोग किया जाता है।

किसी भाषा में अभिव्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में यथावत् प्रस्तुत करना अनुवाद है। जिस भाषा से अनुवाद किया गया है वह मूल भाषा या स्रोत भाषा कहलाती है। जिस नई भाषा में अनुवाद करना है, वह प्रस्तुत भाषा या लक्ष्य भाषा है। स्रोत भाषा में प्रस्तुत भाव या विचार को बिना किसी परिवर्तन के लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना ही अनुवाद है।

अनुवाद का महत्व

प्रस्तुत युग अनुवाद का युग है इसका मुख्य कारण है बीसवीं सदी में भाषा संपर्क अर्थात् भिन्न भाषा-भाषी समुदायों में संपर्क की स्थिति प्रमुख रूप से आरंभ हुई जिसके मूल कारण आर्थिक एवं राजनैतिक माने गए हैं। भूमंडलीकरण- वैश्वीकरण इनका प्रमुख कारण है आज यातायात की सुविधाओं के कारण एक दिन में करीब तीन देशों का भ्रमण कर रहे हैं। सभी संस्कृतियों में अंतर पट रहा है एक दूसरों के रीति-रिवाज, रहन-सहन में संपर्क के साथ-साथ साहित्यिक भूख भी बढ़ रही है। इस साहित्यिक आकर्षण के कारण ही अनुवाद को असाधारण महत्व प्राप्त हुआ है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और प्रायोगिक तथा साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान-प्रदान के कारण अनुवाद कार्य की अनिवार्यता एवं महत्ता की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित होती हुई दिखती है अतः अनुवाद की एक व्यापक तथा बहुधा अनिवार्य और तर्कसंगत स्थिति मानी जाती है। अनुवाद के महत्व को दो भिन्न संदर्भों में समझा जा सकता है।

सामाजिक एवं व्यावहारिक महत्व

यह अनौपचारिक परिस्थितियों में होता है। इसका संबंध द्विभाषिकता से है जिसका अर्थ है एक समय में दो भाषाओं का वैकल्पिक रूप से प्रयोग। आज के युग मे समाज का एक बड़ा भाग ऐसा है जो सामाजिक संदर्भ की अनौपचारिक स्थिति में दो भाषाओं का वैकल्पिक प्रयोग करता है। सामान्य रूप से प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति, दो भिन्न भाषा-भाषी राज्यों के सीमा प्रदेशों में रहने वाली जनता, नागरीय परिवेश का अर्थ शिक्षित व्यक्ति तथा भाषायी अल्पसंख्यक इनमें अधिक स्पष्ट रूप से द्विभाषिकता की स्थिति देखी जाती है। यहाँ पर अनुवादक मातृभाषा में सोचता है एवं अन्य भाषा में विचार अभिव्यक्त

करता है। अत: द्विभाषी रूप से यही अनुवाद अनौपचारिक कामचलाऊ है। इस दृष्टि से अनुवाद एक सामाजिक भाषा व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका में दिखता है।

शैक्षिक एवं ज्ञानात्मक महत्व

शैक्षिक एवं ज्ञानात्मक संदर्भ में अनुवाद औपचारिक स्थिति में होता है। तुलनात्मक साहित्य विवेचन में साहित्यों का तुलनात्मक अभ्यास किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य भाषा साहित्य की कृतियों के अनुवाद का अभ्यास करना उन्हें अनूदित रूप से पढ़ना तुलनात्मक साहित्य विवेचन में अनुवाद के योगदान का उदाहरण है।

अनुवाद के क्षेत्र

1. न्यायालय – अंग्रेजी – प्रादेशिक भाषा
2. सरकारी कार्यालय – अंग्रेजी – राजभाषा
3. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधानों को विश्वपटल पर रखना।
4. शिक्षा – बहुभाषी देश
5. जनसंचार – समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन विभिन्न भाषाओं में समाचार।
6. साहित्य – विश्वसाहित्य – तुलनात्मक अध्ययन
7. अंतरराष्ट्रीय संबंध – प्रतिनिधि संवाद मौखिक–अनुवादक मैत्री एवं शांति
8. संस्कृति– अनुवाद सांस्कृतिक सेतु – विश्वबंधुत्व एवं राष्ट्रीय एकता।

साहित्यिक अनुवाद

साहित्यिक अनुवाद अर्थात् भाषा के साहित्य का भिन्न भाषा में अनुवाद करना है। इसके लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है ताकि वह निष्पक्षता पूर्वक कार्य कर सके। यह कार्य उतना आसान नहीं है जितना कहने या सुनने में जान पड़ता है। चूँकि दो भिन्न भाषाओं की अलग-अलग प्रकृति, संरचना, संस्कृति, समाज, रीति-रिवाज, रहन-सहन वेशभूषा होती है, अत: एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में यथावत् रूपांतरित करते समय समतुल्य अभिव्यक्ति खोजने में कभी-कभी बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस दृष्टि से अनुवाद एक चुनौती भरा कार्य प्रतीत होता है जिसके लिए न केवल तथ्य भाषा और स्रोत भाषा पर अधिकार होना जरूरी है बल्कि अनुद्य सामग्री के विषय और संदर्भ का गहरा ज्ञान भी आवश्यक है। अत: साहित्यिक अनुवाद दो भाषाओं के बीच एक सांस्कृतिक सेतु जैसा ही है, जिस पर चलकर दो भिन्न भाषाओं के मध्य स्थित समय तथा दूरी के अंतराल को पार कर भावनात्मक एकता स्थापित की जा सकती है।

साहित्यिक अनुवाद मूल लेखन से भी कठिन कार्य है। इसकी सबसे पहली और अनिवार्य अपेक्षा स्रोत एवं लक्ष्य भाषा का अच्छा ज्ञान है। हर भाषा विशिष्ट परिवेश में पनपती है, अत: उसकी ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, वाक्यात्मक, मुहावरे और लोकोक्ति विषयक निजी विशेषताएँ होती हैं जो अन्य भाषाओं से काफी भिन्न होती है। जिससे स्रोत भाषा की पूर्णत: समाज अभिव्यक्ति लक्ष्य भाषा में कर पाना सर्वदा संभव नहीं होता है। अर्थ या तो विस्तृत, संकुचित या भिन्न होता है। कभी-कभी साहित्यिक अनुवाद करते समय समतुल्य अभिव्यक्ति नहीं मिलती उनमें समानता लाने हेतु ऐसे प्रयोग किए जाते हैं जो लक्ष्य भाषा की प्रकृति में सहज नहीं होते। इसके लिए मूल पाठ का संदर्भ जानना, काल व परिस्थितियों से अवगत होना भी आवश्यक है। भाषा जीवंत एवं निरंतर परिवर्तनशील है। भाषा की इस प्रकृति के कारण अनुवाद का कार्य दुगुना कठिन हो जाता है।

अनुवाद करते समय मानसिक संवेदनाओं और अनुभूतियों तक पैठ पाना कठिन होता है जिनमें मूल लेखक अपनी कृति का सृजन करते हैं।

साहित्यिक अनुवाद

अनुवाद यदि सुंदर होगा तो मूलनिष्ठ नहीं और मूलनिष्ठ होगा तो सुंदर नहीं। किसी भी अच्छी कृति का अनुवाद अगर दो भाषाओं में किया जाए तो जरूरी नहीं कि दोनों अनुवादों में एक-सा आनंद मिले। लेखक होना आसान पर अनुवादक होना कठिन है। अनुवाद दो भाषाओं के मूल में निहित दो संस्कृतियों को करीब लाने वाला महान कार्य है। सच तो यह है कि मौजूदा परिप्रेक्ष्य में हम अनुवाद के बिना रहने की कल्पना नहीं कर सकते।

अनुवादक के गुण

1. गहरी प्रतिबद्धता
2. सर्जनात्मक प्रतिभा
3. स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की सम्यक् जानकारी
4. जीवन का व्यापक और गहरा अनुभव
5. विभिन्न विषयों का ज्ञान

सफल अनुवाद की पहचान

1. अनुवाद मूलनिष्ठ हो।

2. उसकी भाषा सहज व सुवाच्य होने के साथ-साथ प्रवाहमयी हो।

3. अनुवाद की गंध से यथा संभव मुक्त हो।

अनूदित कृतियाँ पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि अनुवादकों ने मूल के समान रचनाधर्मिता का निर्वाह ही नहीं किया बल्कि लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुसार विषय वस्तु के साथ न्याय भी किया है। इसमें अनुवादकों की नव प्रवर्तनकारी प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

साहित्यिक अनुवाद की समस्याएँ

साहित्यिक अनुवाद एवं साहित्येतर अनुवाद में कुछ मूलभूत अंतर होता है। यदि भाव और शब्दपरक अनुवाद के अनुपात को देखा जाए तो साहित्य में भावपरक अनुवाद की मात्रा बहुत अधिक व शब्दपरक अनुवाद की मात्रा बहुत कम या शून्य होती है। साहित्यिक अनुवाद से मूल शब्दों की हानि होने की संभावना प्रबल होती है जबकि साहित्येतर विषयों में आमतौर पर ऐसा नही होता।

दोनों ही तरह के अनुवाद भिन्न-भिन्न स्तरों पर अनुवादकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की चुनौतियाँ और समस्याएँ उत्पन्न करते हैं।

साहित्यानुवाद एवं उससे जुड़ी समस्याएँ

साहित्यिक विधाओं में कविता, लघुकथा, कहानी, उपन्यास, एकांकी, नाटक, प्रहसन, निबंध आलोचना, डायरी लेखन, जीवनी आत्मकथा, संस्मरण, विज्ञानकथा, व्यंग्य, रेखाचित्र, पुस्तक समीक्षा या पर्यालोचन, साक्षात्कार शामिल हैं। साहित्यिक कृतियों का अनुवाद सामान्य अनुवाद से उच्चतर माना जाता है। साहित्यिक अनुवादक कार्य के सभी रूपों जैसे भावनाओं, सांस्कृतिक बारीकियों स्वभाव और अन्य सूक्ष्म तत्वों का अनुवाद करने में भी सक्षम होना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यिक अनुवाद वास्तव में संभव नहीं है।

दो संस्कृतियों के बीच अनुवाद रूपी पुल के निर्माण में साहित्यिक अनुवाद की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। इसका सीधा-सा कारण यह है कि किसी भौगेलिक क्षेत्र का साहित्य उस क्षेत्र की संस्कृति, कला रीतियों का प्रतिनिधित्व करता है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। बस यही वह चीज है जो साहित्य अनुवाद को बेहद उत्तरादायी और कठिन कार्य बना देती है। किसी भी एक साहित्यिक कृति का उसकी मूल भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय कितनी ही सावधानियाँ बरतनी पडती हैं।

ये सभी सावधानियाँ सांस्कृतिक भिन्नताओं के चलते समस्याओं का रूप ले लेती हैं। क्योंकि सांस्कृतिक भिन्नता को समाप्त करने के लिए भाषा को मूल रचना की भाषा में व्यक्त प्रतीकों, भावों और उन अनेक, विशेषताओं को सटीक तरीके से लक्ष्य भाषा में उतारना होता है और साथ ही यह ध्यान रखना होता है कि लक्ष्य भाषा में उनकी कृति पढ़ने वाले को सहज और आत्मीय लगे।

काव्यानुवाद की समस्याएँ

काव्यानुवाद एक प्रकार का भावानुवाद है जिसे अधिकांशत: कवि ही करते हैं क्योंकि इसके लिए कवि की संवेदनशीलता की तटस्थता बनाए रखना एक बड़ी समस्या हो जाती है, काव्य में शब्द के स्थान पर प्रतीकों का उपयोग बहुतायत से होता है। इस संस्कृति के प्रतीक को दूसरी संस्कृति के प्रतीक के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है जैसे गंगा नदी पर लिखी किसी कविता का अंग्रेजी अनुवाद करते समय हमको इंग्लैंड की संस्कृति में गंगा जैसी पवित्र और मान्य नदी का प्रतीक खोजना। अन्यथा गंगा के प्रतीक को अगर वैसे ही उपयोग किया गया तो लक्ष्य पाठक को भारत में गंगा की महत्ता को अलग से समझाना होगा।

यह आवश्यक नहीं है हिंदी में 'चरण कमल-बंदौ हरिराई' में जिस तरह से चरण को कमल की कोमलता का प्रतीक माना गया है वैसा किसी अन्य यूरोपीय या भारतीय भाषाओं में भी हो। इस सब के अलावा छंदबद्ध, बिंबविधान, कल्पना, मधुरता, लय, संरचना, अलंकारादि भी काव्यानुवाद को जटिल कर समस्याएँ पैदा करते हैं। अनुवाद करते समय मूल पाठ के इन गुणों का लक्ष्य पाठ में उतारना भी समस्याओं का जनक होता है।

नाट्यानुवाद की समस्याएँ

मंचनीयता से जुड़ी यह विधा कभी-कभी काव्यानुवाद जितनी ही जटिल हो जाती है क्योंकि नाट्य विधा का मंचन पक्ष इसे बहुआयामी बना देना है। नाटक का लक्ष्य पूरा हो इसके लिए लेखन से बाहर के कई बाह्य तत्व

जैसे अभिनेता और निर्देशक भी इससे शामिल होते हैं।

नाटक का अनुवाद करने में उसकी संवादात्मक प्रकृति को बनाए रखना एक समस्या है, क्योंकि उसके पात्रों के समस्त गुणों को लक्ष्य भाषा के पात्रों में ठीक उसी तरह से दिखना चाहिए। समस्या यह है कि वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र संस्कृति की भिन्नता के प्रतीक होते हैं और उनको मूलरचना से लक्ष्य रचना में पुनर्जन्म लेना होता है। यह अनुवादक के लिए समस्याजनक हो जाता है जैसे भारतीय परिवेश में राजा हरिश्चंद्र के डोम वाले चरित्र को दर्शाने के लिए अंग्रेजी में उसी प्रकार का कोई प्रतीक खोजना होगा।

नौकर एवं स्वामी के बीच के संवाद में यूरोपीय भाषाओं में नौकर द्वारा स्वामी के नाम-उपनाम के साथ 'सिक्ख' लगाकर संवादों को प्रस्तुत किया जा सकता है लेकिन हिंदी में ऐसा संभव नहीं है।

मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी नाटकों में भरपूर उपयोग होता है और अनुवाद की समस्याओं पर चर्चा करते समय हम देख चुके हैं कि इनको लक्ष्य भाषा में पुनः निर्मित करना टेढ़ी खीर है। नाटक में संवाद के माध्यम से अभिनेता भावों को प्रकट करता है अर्थात् इसमें शब्दों का चयन यह सोचकर किया जाता है कि अभिनेता संवाद प्रस्तुत करते समय किस शब्द को कैसे बोलेगा और उच्चारण की ध्वनि के भाव क्या होंगे। अब मूल भाषा के संवादों के इस भाव या विशेषता को अनुवादक द्वारा लक्ष्य भाषा में उतार पाना एक विकट समस्या होती है।

कथानुवाद की समस्याएँ

कविता तथा नाटक की ही तरह कहानी, उपन्यास अथवा कथा साहित्य में सर्जना का स्तर किसी भी तरह से हल्का या कम नहीं होता है, इसीलिए इसका अनुवाद भी किसी तरह से सहज या सरल क्रिया नहीं होती है। कथा का अपना विशिष्ट प्रारूप होता है। इसमें साहित्य की अन्य विधाओं के गुण भी अंतर्निहित होते हैं। जिस तरह से नाटक के पात्र अपनी संस्कृति व पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कथा साहित्य में पूरे पाठ को एकल इकाई के क्रम में प्रस्तुत व ग्रहण करने से ही उसका अर्थ स्पष्ट होता है। अर्थात् संपूर्ण पाठ एक शृंखला जैसा होता है और प्रत्येक कड़ी अगली या पिछली कड़ी को अर्थ प्रदान करती है। इस तालमेल को अनुवाद में कायम रखना एक समस्या हो सकती है। अलंकार, मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ यहाँ भी अनुवादक को उतनी ही समस्या देते हैं जितनी नाटक या अन्य विधाओं में। 'वह गुरु के समान हैं' जैसे मुहावरों के लिए दूसरे देशों में गाय के जैसे सीधे व सम्मानित पालतू प्रतीक को खोजना एक दुष्कर कार्य है।

सभी साहित्यिक विधाओं के अनुवाद में अनुवादकों को कमोबेश समान समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अनुवाद के दौरान दो भाषाओं का आपसी संचार, अनुवादक की संवेदना तथा स्रोत साहित्य की मूल संस्कृति की समझ, प्रतीकों, मुहावरों व लोकोक्तियों का भरपूर ज्ञान आदि ऐसे गुण हैं जो साहित्यिक अनुवाद के लिए प्रतिभा क्षमता और अभ्यास तीनों का आत्यधिक महत्व है।

हम समझ गए कि अनुवाद के माध्यम से एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में व्यक्त किया जाता है। प्राचीन काल से ही अनुवाद का सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में अनुवाद की भूमिका अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण हो गई है, अनुवाद हमारी सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आवश्यकता बन गया है। देशी-विदेशी भाषिक समाज के सृजनात्मक साहित्य की अनुभूति के लिए विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान के लिए उद्योग व्यापार पर्यटन के लिए तथा बौद्धिक विमर्श आदि के विकास से अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। साहित्यिक अनुवाद के अंतर्गत कविता, उपन्यास, कहानी और साहित्यिक विधाओं को शामिल किया जाता है इसके मुख्य तत्व हैं अनुभूति, भाव, कल्पना आदि। जिस तरह साहित्य में प्रयुक्त भाषा, बिंबों प्रतीकों के कारण लक्षणा और व्यंजना प्रधान होती है और मूल लेखक देश-काल, संस्कृति, विचार, भाव, अनुभूति, कल्पना आदि तत्व से जुड़े होते हैं। उसी तरह सृजनात्मक अनुवादक भी अपने अनूदित पाठ में यथासंभव इन तत्वों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते है। साहित्यिक अनुवाद कलापरक, अलंकारिक एवं शैलीपरक होते हैं। इसमें भावानुवाद महत्वपूर्ण होता है। इसलिए यह पुनर्सृजन की प्रक्रिया है।

साहित्यानुवाद के अंतर्गत रचनात्मक साहित्य को स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में भाषांतर करते हैं। साहित्य की विधाओं का सम विधाओं में तथा विधा रूपांतरित करके अनुवाद होता है। विधा के आधार पर साहित्यिक अनुवाद की प्रकृति भी भिन्न होती है।

मुहावरों का अनुवाद

ऐसे वाक्य जो सामान्य अर्थ का बोधन कराकर विलक्षण अर्थ का बोध कराते हैं, मुहावरा कहलाता है, इनका प्रयोग वाक्य के संदर्भ में किया जाता है। मुहावरा अपना असली रूप कभी नहीं बदलता है। यह भाषा की समृद्धि और सभ्यता के विकास का मापक है। इनकी अधिकता और न्यूनता से भाषा के बोलने वालों का मन, सामाजिक संबंध, भाषा निर्माण की शक्ति, सांस्कृतिक मान्यताएँ आदि का एक साथ पता चलता है।

किसी भी सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद करते समय मुहावरों का अनुवाद मुहावरों से ही करना चाहिए ताकि मूलभाषा की विलक्षणता सुरक्षित रहे। इसके लिए दोनों भाषाओं पर समान अधिकार होना चाहिए।

To throw dust in the eye-

आँखों में धूल झोंकना।

Play with fire-

आग से खेलना

मुहावरों का अनुवाद सरल नहीं। इससे प्रमाण एवं विलक्षणता का सृजन होता है।

लोकोक्तियों का अनुवादः Proverbs कहावत

लोकोक्तियों में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक मात्रा में होती है। यह सामाजिक अनुभवों का निचोड़ होता है। इसका प्रयोग भाषा में किसी विचार को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए होता है। कहावतें समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती हैं।

इस तरह स्पष्ट है कि काव्यानुवाद भी एक सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें मूल रचना के भाव और अभिव्यक्ति सौंदर्य को लक्ष्य भाषा में यथासंभव सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता है।

– प्रधानाध्यापक, गांधी राष्ट्रीय हिंदी विद्यालय, गाडीपुरा, नांदेड, महाराष्ट्र

❑❑❑

साहित्यिक अनुवाद की समस्याएँ : थाई रचनाओं के संदर्भ में

डॉ. करुणा शर्मा

अनुवाद की उपयोगिता वर्तमान युग में ही नहीं प्राचीन युग से ही स्वत: सिद्ध है। चूँकि आज का युग अंतरराष्ट्रीयता और बहुभाषिकता का युग बन चुका है और हर व्यक्ति इतनी भाषाओं का ज्ञान अर्जित नहीं कर सकता, अत: बहुभाषिकता की रक्षा करने के लिए अनुवाद-कार्य की सहायता लेना जरूरी हो जाता है, "अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक तथा साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान-प्रदान के कारण अनुवाद कार्य की अनिवार्यता तथा महत्ता की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित हुई है।"[1] अनुवाद का महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि लोग इसे अनुवाद का युग भी कहने लगे हैं और इसके कारण जन्मा साहित्य अब एक स्वतंत्र सृजनात्मक साहित्य भी माना जाने लगा है।

अनुवाद-कर्म आज से नहीं, शताब्दियों से किया जा रहा है। शताब्दियों से अनेक लेखक अनुवादक की उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते चले आ रहे हैं। जैसे अरब देश में भारत के खगोलशास्त्र का, चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए भारत के कई धार्मिक, दार्शनिक ग्रंथों का, जर्मनी व जापान में भागवद्गीता तथा भारतीय उपनिषदों का, रूस में रामायण व गीता का अनुवाद किया गया। हमारे देश में अनुवादकों ने वार एंड पीस, हेमलेट, ओथेलो, मेकबेथ जैसे अनेक विदेशी ग्रंथों का अनुवाद किया। इस प्रकार परस्पर अनुवाद करने के कारण ही विश्व साहित्य से परिचित हुआ जा सका। जैसे कि हम सभी जानते हैं कि अधिकाधिक संचार के माध्यमों के आविष्कार ने अब विश्व को विश्व-ग्राम में बदल दिया है, अत: विभिन्न संस्कृतियों एवं समाज के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद को सेतु बनाना हमारी विवशता बन चुका है। दूर क्यों जाएँ, पिछली शताब्दी के भारतेंदु, प्रेमचंद, टैगोर, अमृता प्रीतम, बालशौरि रेड्डी, दिनकर आदि लेखक-अनुवादकों ने विभिन्न भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध करवाया है। अब भी इस दिशा में सतत प्रयास विश्वभर में चल रहे हैं।

प्रश्न यह उठता है कि अनुवाद है क्या? अनुवाद करना सरल है अथवा कठिन? एक भाषा के कथ्य और शैली का दूसरी भाषा में अंतरण अनुवाद कहलाता है। यह सरल भी है और कठिन भी क्योंकि अनुवाद की इस प्रक्रिया में अनुवादक को मूल लेखक और कृति के मनोभावों और शैलीगत सौंदर्य को लक्ष्यभाषा में अधिक से अधिक सुरक्षित रखना होता है। जब पूर्ण रूप से अनुवाद संभव हो पाता है तब अनुवाद कर्म सरल समझा जा सकता है। सामान्यतया अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद थोड़ा-सा सरल हो जाता है क्योंकि भारत में अंग्रेजी के हिंदी पर्याय जनसामान्य द्वारा स्वीकार कर लिए गए हैं जैसे newspaper- समाचार पत्र, chair-कुर्सी आदि। लेकिन कुछ भाषाओं के शब्दों का पूरी तरह से अनुवाद नहीं हो पाता "जैसे अमरीकन अंग्रेजी के संदर्भ में- Resthouse-आरामगृह-स्नानघर, Gasoline-गैस-पेट्रोल, Orange-संतरा-मौसमी आदि[2]।" लेकिन कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका अनुवाद हो ही नहीं

सकता क्योंकि प्रत्येक देश के सांस्कृतिक-सामाजिक संदर्भ अलग-अलग होते हैं, भौगोलिक एवं क्षेत्रीय विशिष्टताओं के साथ ही उनकी भाषागत संरचनाओं की जटिलताएँ भी पृथक-पृथक होती हैं जो अनुवादक के सामने चुनौती बनकर खड़ी होती हैं। इसे दूसरे शब्दों में कुछ यूँ भी कहा जा सकता है कि "किसी विशेष स्थान, जाति, देश की सामाजिक परंपराओं, रीति-रिवाजों, खान-पान, वेशभूषा, तीज-त्योहार, लोक-संस्कृति, लोक-जीवन, लोक-भाषा आदि विशेषताओं को लक्ष्य भाषा में ज्यों का त्यों रख पाना अत्यंत जटिल काम होता है[3]" क्योंकि उसके पर्याय अपनी भाषा में मिल पाने संभव नहीं होते। यह बात तो सामान्य अनुवाद की है लेकिन जब अनुवाद साहित्य का करना हो, तो चुनौती अधिक गंभीर हो जाती है क्योंकि साहित्यिक अनुवाद में मूलकृति के समस्त सौंदर्य को सुरक्षित रखते हुए अपनी भाषा-शैली के परिधान में प्रस्तुत करना होता है।

अनुवाद में सफलता प्राप्त करने के लिए अनुवादक के सामने कुछ तथ्य स्पष्ट होने चाहिए-अनुवाद करने का उद्देश्य अनुवादक को स्पष्ट हो। मूलकृति के प्रति आदरभाव भी हो। उसे मूल रचना के विषय की पूरी सामाजिक-सांस्कृतिक जानकारी हो, प्रेरणात्मक उद्देश्य के साथ उसका तादात्म्य भी हो, गहन भावबोध के साथ ही वह सृजनात्मक प्रतिभा का धनी भी हो और दोनों भाषाओं का ज्ञानी भी हो। अनुवादक अरस्तु के इस विचार का अनुसरण करें, "बुद्धिमानों की तरह सोचे परंतु जनसाधारण की भाषा में बोलें" अर्थात् गढ़े-गढ़ाए शब्दों के प्रयोग से अनुवाद रुचिकर नहीं हो पाता, अत: सहज-सरल भाषा का प्रयोग करें। कभी-कभी मूल लेखक लंबे-लंबे और गूढ़ वाक्यों का प्रयोग करता है लेकिन अनुवादक के लिए आवश्यक नहीं कि वह भी उसी तरह के लंबे वाक्य और कठिन भाषा का प्रयोग करे। वह ध्यान रखे कि उसका अनुवाद बोधगम्य, सहज, प्रवाहमय, स्पष्ट और संप्रेषणीय हो। साहित्यिक कृतियों के अनुवाद में "सफल अनुवादक भी वही होता है जो अपनी दृष्टि भावों पर रखता है। शाब्दिक अनुवाद न शुद्ध होता है न सुंदर। भाव जब एक भाषा-माध्यम को छोड़कर दूसरे भाषा-माध्यम से मूर्त होना चाहेगा तो उसे अपने अनुरूप उद्बोधक और अभिव्यंजक शब्दराशि संजोने की स्वतंत्रता देनी होगी। यहीं पर अनुवाद मौलिक सृजन हो जाता है या मौलिक सृजन की कोटि में आ जाता है।"

अनुवाद के महत्व और अनुवाद की प्रकृति को पूर्णतया समझकर और साहित्यिक अनुवाद के समय आने वाली समस्याओं को जानने के बाद ही मैंने थाईलैंड-प्रवास के दौरान थाई कृतियों के अनुवाद का संकल्प किया। जानकारी के लिए बता देना चाहती हूँ कि जनवरी 2014 से जुलाई 2017 तक मैं भारत सरकार द्वारा थम्मासॉट विश्वविद्यालय, बैंकॉक में स्थापित 'हिंदी चेयर' पर कार्यरत रही थी। उस प्रवास के दौरान मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि थाइलैंड में भी रामायण है जिसे 'रामकीर्ति' (रामाकियन) के नाम से जाना जाता है। मन में प्रश्न उठा कि रामायण तो थाई भाषा में होगी तो उसके बारे में कैसे जाना जाएगा, लेकिन तभी सुखद अनुभूति हुई जब यह पता चला कि मूलभाषा में लिखी रामायण की संक्षिप्त प्रस्तुति अंग्रेजी में उपलब्ध है। ऐसा कैसे संभव हुआ, यह जानने पर बताया गया कि महाकवि रवींद्र नाथ टैगोर के आग्रह पर सन् 1932 में स्वामी सत्यानंद पुरी भारत से थाईलैंड गए थे, उन्होंने वहाँ रहकर, थाई भाषा सीखकर 'रामकीर्ति' (रामाकियन) को अंग्रेजी में संक्षिप्त रूप में लिखा था। चूँकि अंग्रेजी का मुझे ज्ञान है, इसलिए मेरी रुचि अंग्रेजी में प्रस्तुत 'रामकीर्ति' का हिंदी में अनुवाद करने के प्रति बढ़ी। अनुवाद करने के पीछे सहज जिज्ञासा थी कि पात्रों, प्रसंगों, घटनाओं आदि की दृष्टि से थाई रामायण हमारी 'वाल्मीकि रामायण' से कितनी समान और कितनी भिन्न है।

वहाँ रहते हुए Ramakirti (Ramakien) का 'रामकीर्ति (रामाकियन) रामायण का थाई रूप' नाम से अनुवाद क्यों और कैसे हुआ, अनुवाद करने से पहले क्या आवश्यक कदम उठाए गए, इस पर प्रकाश डालना चाहूँगी।

'रामकीर्ति (रामाकियन) रामायण का थाई रूप' मेरी प्रथम अनूदित रचना है। थाईलैंड में 'रामकीर्ति (रामाकियन) की गणना गौरव-ग्रंथों में की जाती है। किंतु थाईलैंड के रामायणीय साहित्य को वर्णित करने वाले ग्रंथ 'रामकीर्ति' का बाहरी संसार से परिचय तब हुआ जब स्वामी सत्यानंद पुरी जी ने थाई लिपि सीखने के बाद ग्रंथ पर विद्वत्तापूर्ण शोधकार्य किया और

उसका रूपांतरण एवं प्रस्तुतीकरण अंग्रेजी में किया। फिर भी थाई रामायणीय साहित्य भारत तथा विश्वभर के हिंदी प्रेमियों की पहुँच से दूर था। इस अभाव की पूर्ति करने का तुच्छ प्रयास 'रामकीर्ति' (रामाकियन) रामायण का थाई रूप के माध्यम से मेरे द्वारा किया गया।

इस पुस्तक को अनूदित करने से पहले मैंने 'वाल्मीकि रामायण' का भलीभाँति अध्ययन किया ताकि सारगर्भित एवं भावपरक अनुवाद किया जा सके। तत्पश्चात् मैंने स्वामी जी की पुस्तक का भी कई-कई बार गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया। ऐसा करने पर ही मूल भाषा के भाव को अनुवाद की भाषा में प्रत्यारोपित और भाषांतरित कर ग्राह्य और संप्रेषणीय बनाया जा सकता था। अंग्रेजी में अच्छी पकड़ होने के कारण मेरा विचार था कि अनुवाद शीघ्र ही हो जाएगा। लेकिन यह विचार 'मतिभ्रम' सिद्ध हुआ। कार्य जितना सरल लग रहा था, उतना सरल था नहीं। स्वामी जी की भाषा में वाक्य विन्यास और शब्द-चयन इतना क्लिष्ट था कि उसको अनूदित करना दुष्कर कार्य लग रहा था। वह मेरे लिए एक चुनौती बन चुका था। बार-बार मूल कथन को पढ़कर समझने का प्रयास किया-इसका तात्पर्य क्या है? मूल कथन का अर्थ क्या है, उसकी भाव-भंगिमा क्या है? इन प्रयासों द्वारा मूल लेखक की रचनात्मक क्षमता से अपनी क्षमता का तादात्म्य स्थापित कर, उसे प्रभावी बनाने का प्रयास किया। जहाँ विषय समझने में कठिनाई आई, थाईलैंड के विद्वज्जनों से मूल भाषा की प्रकृति तथा साहित्यिक परंपराओं की सुष्ठु जानकारी प्राप्त की। क्योंकि अनुवादक को अनुवाद कार्य अपनी सीमाओं में रहकर करना होता है, अतः वह अपनी रुचि तथा अपनी इच्छाओं के अनुरूप शब्द, भाव वाक्य आदि को बदल नहीं सकता। उसे व्यक्त आशय को अपने शब्दों में ढालने में अपने कौशल का प्रदर्शन करना होता है ताकि मूल भाव, अनुभूति या संवेदना मूल के प्रभाव के साथ अनुवाद में ज्यों की त्यों उतर जाए, कोई बात छूटने न पाए और उसकी बात उसके पाठकों को समझ में आ जाए। अनुवाद करते समय यह भी ध्यान में रखा गया कि अनूदित कृति अनुवाद न लगकर मौलिक रचना लगे।

थाई भाषा की विशेषता होती है कि वह बोलने में अलग और लेखन में अलग होती है जैसे रावण के लिए बोला जाता है 'थोसाकन' और लिखा जाता है 'दसकंठ'। 'रामकीर्ति' में थाई ध्वन्यात्मक वैशिष्ट्य को बनाए रखने के लिए पात्रों और स्थानों के नाम देवनागरी लिपि में थाई भाषा के अनुसार ही लिखे हैं जैसे भरत के लिए बरत, लक्ष्मण के लिए लक्षण, अयोध्या के लिए अयुथ्या, कैलास के लिए क्रैलास आदि। अर्थ और भाव का निवर्हन करते हुए लंबे-लंबे वाक्य तुलनात्मक रूप से छोटे-छोटे वाक्यों में लिखे गए हैं ताकि पाठकों के लिए वह रुचिकर और ग्राह्य बन सकें।

अनुवाद कैसे अपनी सांस्कृतिक-सेतु की भूमिका का निर्वहन करता है, इसका अनुभव मुझे तब हुआ जब मैंने अपने परिचित थाई लोगों को उनके गौरव ग्रंथ 'रामकीर्ति' के हिंदी अनुवाद के संबंध में बताया। अपनी साहित्यिक-सांस्कृतिक धरोहर के प्रचार-प्रसार की कल्पना से उनकी आँखों में चमक बढ़ गई थी और मेरे प्रति आदर भाव भी।

'रामकीर्ति' के अनुवाद को देखने के बाद भारतीय राजदूतावास, बैंकॉक के तत्कालीन महामहिम राजदूत श्री हर्षवर्धन शृंगला पुस्तक के आमुख में लिखते हैं, "राम की कीर्ति अथवा 'रामकीर्ति' जैसे कि थाई लोग इसे कहते हैं, थाई भाषा के गौरवग्रंथों में उत्कृष्ट मानी जाती है।..... भारत और थाईलैंड के मध्य साहित्यिक और सांस्कृतिक संबंधों के संवर्धन हेतु डॉ. करुणा शर्मा के किए गए प्रयासों की प्रशंसा करता हूँ। भारतीय राजदूतावास, बैंकॉक के लिए बड़े ही संतोष का विषय है कि यह ऐसी रचना के प्रकाशन में सहायता कर रहा है जो प्रारंभिक साहित्यिक कार्य में ज्ञान, चिंतन और शोध की नई संभावनाएँ उजागर करेगी जिससे थाई और भारत देश की अनगिनत पीढ़ियाँ प्रेरित होंगी।"

पुस्तक को जिसने भी पढ़ा, सभी ने इसकी सराहना की और मेरा मनोबल बढ़ाया। परिणामस्वरूप मैं दूसरी पुस्तक Thai Ties को 'थाई-एकता सूत्र' नाम से अनूदित करने की ओर अग्रसर हुई।

'रामकीर्ति' का अनुवाद करने के कुछ ही समय बाद मुझे चूलालौंग्कोर्न विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री कित्तीफोंग जी से एक पुस्तक 'थाई टाइज' प्राप्त हुई जिसे सिल्पाकोर्न विश्वविद्यालय की एसोसिएट प्रोफेसर

'पोर्नपिमोल सेनावांग' द्वारा अंग्रेजी में लिखा गया था। यह पुस्तक मेरे उन प्रश्नों का जवाब थी जो मैंने उनसे थाईलैंड की सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं और रीति रिवाजों के बारे में पूछे थे। विषयों से संबंधित चित्रों के साथ पुस्तक का अध्ययन कर मैंने थाई देश की विशिष्टताओं का मानसिक तौर पर भरपूर आनंद लिया और ज्ञान-पिपासा का शमन किया। इस पुस्तक में थाई देश की मान्यताओं, बौद्ध-परंपराओं, बौद्ध- धार्मिक अनुष्ठान एवं पर्व, थाई आहार और व्यंजन,हस्तशिल्प, भाषा, राष्ट्रीय पहचान, अभिनय-कला तथा जीवन शैली की चर्चा की गई थी।

पुस्तक का अध्ययन करने पर पता चला कि लेखिका ने इसे पर्यटन-मार्गदर्शिका के रूप में तैयार किया है। इसकी सहायता से पर्यटक-गाइड पर्यटकों को थाईलैंड की विशिष्टताओं की संक्षेप में पूरी जानकारी दे सकते हैं। पुस्तक गागर में सागर की तरह उस सारे ज्ञान को अपने में समाए है जिससे किसी विदेशी की थाईलैंड के संबंध में जिज्ञासा शांत की जा सकती है। चूँकि थाईलैंड में मैं हिंदी पढ़ा रही थी, अतः इस पुस्तक का लाभ मेरे थाई-हिंदी विद्यार्थियों को भी मिलेगा, अपने देश की परंपराओं और विशेषताओं के हिंदी में आ जाने से वे विद्यार्थी हिंदी में अधिक रुचि लेंगे और अपने देश और भारत के बीच 'पर्यटक-मार्गदर्शक' की भूमिका भी सहजता से निभा सकेंगे, इन विचारों ने मुझे इसका अनुवाद करने के लिए अत्यधिक उत्साहित और प्रेरित किया। एक बार फिर अनुवाद की महत्ता उजागर हुई कि अनुवाद-विधा किसी अनुवादक के लिए सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का अस्त्र भी बन सकती है, साथ ही उसे रोजगार का अवसर भी प्रदान कर सकती है।

अनुवाद करने से पूर्व जिन परंपराओं, रीति-रिवाजों, धार्मिक पर्वों के बारे में मैंने पढ़ा था, जहाँ तक संभव हुआ, उनका मैंने स्वयं वहाँ जाकर व्यावहारिक अध्ययन किया। जैसे प्रारंभ में ही 'भूमि देवता के मंदिर' का वर्णन है। (पुस्तक पढ़ने से पहले ही मैंने देखा था कि बैंकॉक में चाहे वह अस्पताल हो या कोई कार्यालय अथवा कोई भवन, उसके प्रांगण में एक विशिष्ट शैली की छोटी-बड़ी मंदिरनुमा आकृति बनी हुई है। इसके बारे में जानने की बहुत उत्सुकता थी।) जब पुस्तक में उस चित्र को देखा, उसके बारे में पढ़ा। मैंने पाया कि हमारे अपार्टमैंट में भी इस तरह का मंदिर बना हुआ है जहाँ थाई लोग जाकर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। असाल्हा-पूजा, विसाखा-पूजा, माघ-पूजा आदि में भी मैं सम्मिलित हुई। इसमें 'रामकीर्ति' के बारे में भी संक्षिप्त किंतु प्रामाणिक जानकारी थी, पुस्तक में अंकित चित्र 'मलय' को देखा तो पाया कि इस प्रकार का 'मलय' मेरे छात्र-छात्राओं ने सम्मान स्वरूप मुझे भी दिया था। जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ने वाले अंधविश्वासों की भी जानकारी ली, साथ ही थाई नव वर्ष के रूप में मान्य 'सौंक्रान' का आनंद लिया, उनके एक अन्य पर्व 'लौय क्रथांग' में भी शामिल होकर देखा, तो पाया कि सब कुछ ऐसा ही था जैसे इस पुस्तक में लिखा हुआ है तथा जो बातें मुझे समझ में नहीं आई, उनकी जानकारी वहाँ के विद्वज्जनों से प्राप्त की। अर्थात् वहाँ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सामाजिक आचार-विचार, परंपरा आदि के विषय में सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही मैं इसके अनुवाद-क्षेत्र में उतरी।

पुस्तक का अनुवाद करते समय एक बात का ध्यान रखा गया है कि इसे रोचक और सरल बनाया जाए। जो शब्द हिंदी की सरल भाषा में उपलब्ध थे, उन्हें सरल शब्दों में तथा अंग्रेजी के ऐसे शब्द जिन्हें हिंदी ने स्वीकार कर लिया है अथवा जिनके हिंदी में अर्थ नहीं मिले, उन्हें उसी रूप में लिख दिया गया है। थाई सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले शब्दों तथा थाई नामों को देवनागरी लिपि के साथ-साथ मूल पुस्तक के अनुरूप अंग्रेजी में भी लिखा गया है। थाई-वैशिष्ट्य के उच्चारण के अनुरूप शब्द देवनागरी लिपि में कैसे लिखा जाए, इसमें मेरी सहायता श्री कित्तीफोंग जी ने की।

पुस्तक अनूदित होकर भारतीय राजदूतावास, बैंकॉक में तत्कालीन माननीय राजदूत श्री भगवंतसिंह विश्नोई जी के करकमलों में पहुँची। पुस्तक की प्रशंसा करते हुए उन्होंने आमुख में लिखा, "इस पुस्तक में थाईलैंड को और थाईलैंड के लोगों को समझने के लिए सभी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण जानकारियाँ जिस रोचक तरीके से दी गई हैं, उसके कारण भारत और विश्वभर के हिंदी भाषियों के लिए यह एक 'पर्यटन मार्गदर्शिका' सिद्ध होगी। यह पुस्तक 'भारतीय अध्ययन कार्यक्रम'

के अंतर्गत हिंदी पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं को थाई परंपराओं के माध्यम से हिंदी सीखने का व्यावहारिक अवसर प्रदान करेगी। इसके साथ ही यह पुस्तक भारत और थाईलैंड के सांस्कृतिक संबंधों को और अधिक सुदृढ़ करेगी।" अर्थात् अनुवाद की महत्ता के प्रति अत्यंत सार्थक कथन।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि साहित्यिक अनुवाद करने में समस्याएँ तो बहुत आती हैं लेकिन अनुवाद-सैद्धांतिकी को भलीभाँति समझ लेने और उस भाषा-विशेष के विद्वानों से संपर्क करके उन समस्याओं से उबरकर रोचक और सार्थक अनुवाद किया जा सकता है, साथ ही अनुवाद दो देशों के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक सेतु की भूमिका का निर्वहन भी कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा, डॉ. सुरेश कुमार, पृ. 17
2. अनुवाद संवेदना और सरोकार, डॉ सुरेश सिंहल, पृ 69
3. अनुवाद संवेदना और सरोकार, डॉ. सुरेश सिंहल, पृ. 71
4. चौंसठ रूसी रचनाएँ, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, पृ.17

132, आम्रपाली अपार्टमेंट, प्लाट नं. 56, आई. पी. एक्सटेंशन,
नियर हसनपुर डिपो, दिल्ली-110092

❑❑❑

साहित्येतर अनुवाद

डॉ. प्रियंजन

आज के युग के अनुवाद की प्रासंगिकता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। भारत में अनुवाद की प्रांसगिकता बढ़ने के दो मुख्य कारण है। भूमंडलीकरण में व्यापार की बढ़ती संभावनाओं के बीच स्थानीय लोगों तक पहुँच के लिए अनुवाद व्यक्ति सामाजिक आवश्यकता बन गया है। अनुवाद की महत्ता व उपादेयता को विश्वभर में स्वीकारा जा चुका है। वैदिक युग के 'पुनः कथन' से लेकर आज के 'अनुवाद' तक अनुवाद अपने स्वरूप और अर्थ में बदलाव लाने के साथ-साथ अपने बहुमुखी व बहुआयामी प्रयोजन को सिद्ध कर चुका है।

अनुवाद की सैद्धांतिक चर्चा आधुनिक युग में ही आरंभ हुई। एक विशिष्ट प्रकार के व्यापार के रूप में अनुवाद, भारतीय परंपरा की दृष्टि से, कोई नई बात नहीं। वस्तुतः 'अनुवाद' शब्द और उससे उपलक्षित भाषिक व्यापार भारतीय परंपरा में बहुत पहले से चले आए हैं। प्राचीन काल में 'स्वांतः सुखाय' माना जाने वाला अनुवाद कर्म आज संगठित व्यवसाय का मुख्य आधार बन गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो अनुवाद प्राचीन काल की व्यक्ति परिधि से निकलकर आधुनिक युग की समष्टि परिधि में समा गया है।

संस्कृत में 'अनुवाद' शब्द का उपयोग शिष्य द्वारा गुरु की बात के दुहराए जाने, पुनः कथन, समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन, आवृत्ति जैसे कई संदर्भों में किया गया है। संस्कृत के 'वद्' धातु से 'अनुवाद' शब्द का निर्माण हुआ है। 'वद्' का अर्थ है बोलना। 'वद्' धातु में 'अ' प्रत्यय जोड़ देने पर भाववाचक संज्ञा में इसका परिवर्तित रूप है 'वाद' जिसका अर्थ है- 'कहने की क्रिया' या 'कही हुई बात'। 'वाद' में 'अनु' उपसर्ग जोड़कर 'अनुवाद' शब्द बना है, जिसका अर्थ है, प्राप्त कथन को पुनः कहना। अतः 'अनुवाद' शब्द और इसके अंग्रेजी पर्याय 'ट्रांसलेशन' के व्युत्पत्तिमूलक और प्रवृत्तिमूलक अर्थों की सहायता से अनुवाद की परिभाषा और उसके स्वरूप को श्रेष्ठतर रूप से जाना जा सकता है। आज विश्वभर में अनुवाद की आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में किसी-न-किसी रूप में अवश्य महसूस की जा रही है। और इस तरह अनुवाद आज के जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। अनुवाद असाधारण रूप से कठिन कार्य माना जाता है। यह एक जटिल, कृत्रिम सर्जनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें असाधारण और विशिष्ट कोटि की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। यह इसकी अपनी प्रकृति है।

भारत में अनुवाद की परंपरा पुरानी है किंतु अनुवाद को जो महत्त्व 21वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्राप्त हुआ वह पहले नहीं हुआ था। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् देश की आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन आया। विश्व के अन्य देशों के साथ भारत के आर्थिक एवं राजनैतिक समीकरण बदले। राजनैतिक और आर्थिक कारणों के साथ विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी का विकास भी इस युग में हुआ। जिसके फलस्वरूप विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों में संपर्क की स्थिति उभरकर सामने आई। जिससे भारत में विभिन्न

सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी की अनिवार्यता को भी बल मिला और भारत में यहीं से साहित्येतर हिंदी का उदय एवं विकास भी प्रारंभ हुआ।

भारत की आजादी के बाद संविधान निर्माताओं ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने की मांग को दृष्टिगत रखते हुए संविधान सभा ने 14/9/1949 को हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकार करते हुए राजभाषा हिंदी के संबंध में प्रावधान किए। इनमें संविधान के भाग 5 एवं 6 के क्रमशः अनुच्छेद 120 तथा 210 में तथा भाग 17 के अनुचछेद 343, 344, 345, 346, 347, 348, 349, 350 तथा 351 में राजभाषा हिंदी के संबंध में प्रावधान किए गए हैं। इन उपबंधों में विभिन्न अनुच्छेदों के अंतर्गत भाषा के प्रयोग का वर्णन किया गया है । जिनमें अनुच्छेद 120 के अंतर्गत संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 120 के खंड (1) के अंतर्गत प्रावधान किया गया है कि संविधान के भाग-17 में किसी बात के होते हुए भी किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा। संविधान के भाग-17 के अनुच्छेद 343 से 351 तक में राजभाषा संबंधी प्रावधान किए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 343 के अंतर्गत संघ की राजभाषा के संबंध में प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 343 के खंड (1) के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी संघ की राजभाषा है। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप होगा। तथापि संविधान के इसी अनुच्छेद 343 के खंड (2) के अनुसार किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के लागू होने के समय से पंद्रह वर्ष की अवधि (अर्थात् 26 जनवरी, 1965) तक संघ के उन सभी राजकीय प्रयोजनों के लिए वह संविधान के लागू होने के समय से ठीक पहले प्रयोग की जाती थी। (अर्थात् 26 जनवरी, 1965 तक अंग्रेजी उन सभी प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिए वह संविधान के लागू होने के समय से पूर्व प्रयोग की जाती थी।) अनुच्छेद 351 में संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

भारत के संविधान में इस व्यवस्था के बाद सरकारी प्रयोजनों के उद्देश्य से जिस कार्य को सबसे अधिक बल मिला वह अनुवाद का कार्य रहा। हालांकि संविधान में उपरोक्त अधिकतर प्रावधान केवल यह जानकर दिए गए थे कि अंग्रेजी को धीरे-धीरे समाप्त किया जाएगा और हिंदी भाषा को सरकारी प्रयोजनों के लिए स्थापित किया जाएगा परंतु अभी तक भी ऐसा नहीं हो पाया है। हाँ एक अन्य व्यवस्था का जन्म आवश्य हो गया है जिसमें सबंसे अधिक महत्व अनुवाद का रहा है विशेषकर साहित्येतर अनुवाद की। उपरोक्त व्यवस्थाओं के बाद बैंक, बीमा, सरकारी कार्यालयों में अनुवाद का कार्य तेजी से होने लगा। आज भी संसद में अधिकतर बिल अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही तैयार किए जाते हैं हिंदी में केवल अनुवाद ही उपलब्ध करवाया जाता है ।

भिन्न-भिन्न आधारों पर अनुवाद में भिन्न-भिन्न भेद किए जा सकते हैं। लेकिन मूलतः अनुवाद के दो प्रकार होते हैं- साहित्यिक अनुवाद व साहित्येतर अनुवाद। इन दोनो प्रकार के अनुवादों में कुछ मूलभूत अंतर हैं- यदि भाव और शब्दपरक अनुवाद के अनुपात को देखा जाए तो साहित्य में भावपरक अनुवाद की मात्रा बहुत अधिक व शब्दपरक अनुवाद की मात्रा बहुत कम या शून्य होती है, साहित्येतर अनुवाद में ठीक इसके विपरीत होता है। साहित्यिक अनुवाद में मूल शब्दों की हानि होने की संभावना प्रबल होती है जबकि साहित्येतर विषयों में आमतौर पर ऐसा नहीं होता है। दोनो ही तरह के अनुवाद भिन्न-भिन्न स्तरों पर अनुवादकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की चुनौतियाँ और समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। मौलिक लेखन न होने के कारण अनुवाद को उतना स्थान नहीं मिलता है जितना कि मौलिक कृति को मिलता है। अनुवाद इसीलिए कठिन है कि वह मौलिक लेखन नहीं-पहले कही गई बात को ही दुबारा कहना होता है, जिसमें अनेक बंधनों का पालन करना आवश्यक हो जाता है।

जब हम साहित्यिक अनुवाद की बात करते हैं तो मुख्य रूप से निम्न प्रकार के अनुवाद की बात करते हैं। गद्यानुवाद, पद्यानुवाद, काव्यानुवाद, नाट्यानुवाद, कथानुवाद, अन्य साहित्यिक विधाओं के अनुवाद जिसमें निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा आदि के अनुवाद शामिल हैं। इनके अलिखित पाठ्यक्रमाधरित या विषयानुवाद को भी साहित्यिक अनुवाद की श्रेणी में रखा जा सकता है। उपरोक्त का अनुवाद करते समय संदर्भ, अर्थ और शैली की निकटता पर बल दिया जाना चाहिए, इसका एक कारण यह भी है कि स्त्रोत भाषा में सृजित साहित्य में उस भाषा की संस्कृति, मूल्यों एवं भावनाओं का समावेश होता है। हलांकि इस अनुवाद में मुख्य समस्या है कविता की, कविता का अनुवाद करते समय भाषा के पर्याय, अक्सर परेशानी पैदा करते हैं, उसका कारण है कि कविता में अधिकतर लक्ष्य का प्रयोग होता है। कवि लाक्षणिक और ध्वन्यात्मक प्रतीकों एवं बिंबो का प्रयोग करता है। जबकि गद्य का अनुवाद करते समय मूल के अर्थ एवं भाव पर अधिक बल दिया जाता है। गद्य विधाओं के अनुवाद की समस्या उनका शैली प्रधान होना है, शैली की अभिव्यक्ति अनुवाद के माध्यम से करना एक जटिल कार्य है। दूसरी श्रेणी जिसे हम साहित्येतर अनुवाद कहते हैं जिसे भारतीय संविधान से बल मिलता है वह अनुवाद है वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रौद्योगिकी, बैंकिंग, प्रशासनिक, पत्रकारिता, कार्यालयीन साहित्य और न्यायालयी अनुवाद शामिल है।

साहित्येतर अनुवाद में मुख्य समस्या है शब्द चयन की, उसका मूल कारण शब्दों का मानकीकरण है। साहित्येतर अनुवाद के लिए शब्दों में मानकीकरण की महती आवश्यकता होती है। मानकीकरण न होने के कारण कई विद्वानों अथवा संस्थाओं ने शब्द निर्माण की अपनी दुकानें खोल रखी हैं जिसके फलस्वरूप भिन्न-भिन्न राज्यों और क्षेत्रों में एक ही शब्दों के कई पर्याय विकसित हो गए। साहित्येतर अनुवाद में सबसे महती आवश्यकता अर्थ की है और अर्थ का लोप होते ही अनुवाद, अनुवाद न रहकर कुछ और ही बन जाने की संभावना बनी रहती है। इसलिए अर्थ लोप से बचने के लिए प्रयोग किए जाने वाले शब्दों का मानक होना बहुत ही आवश्यक है। साहित्येतर अनुवाद के लिए सबसे आवश्यक कार्य अनुवादक को इन मानक शब्दावलियों का ज्ञान होना है। यदि अनुवादक को इन मानक शब्दावलियों का ज्ञान नहीं है तो वह उत्तम अनुवाद प्रस्तुत नहीं कर सकता। इन शब्दावलियों में मुख्य रूप से वैज्ञानिक तकनीक शब्दावली आयोग की 'प्रशासनिक शब्दावली', विधायी विभाग की 'विधि शब्दावली' रेलवे की शब्दावली, बीमा की शब्दावली, बैंकिग की शब्दावली हैं। इन शब्दावलियों का प्रयोग कर अर्थ के अनर्थ से बचा जा सकता है। मुख्य रूप से सभी प्रशासनिक कार्यों के लिए प्रशासनिक शब्दावली एक अच्छी पुस्तक है, जिसका निर्माण वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग ने किया है इस आयोग का गठन संविधान के अनुच्छेद 344 के खंड (4) के अंतर्गत भारत सरकार के एक संकल्प के द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ 21 दिसंबर, 1960 में किया गया था- जिसमें इसे हिंदी और सभी भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों का विकास करना और परिभाषित करना शब्दावलियों को प्रकाशित करना, पारिभाषिक शब्द और कोश एवं विश्व कोश तैयार करना यह देखना कि विकसित किए गए शब्द और उनकी परिभाषाएँ छात्रों, शिक्षकों, विद्वानों, वैज्ञानिकों, अधिकारियों आदि को पहुँचती हैं (कार्यशालाओं/ संगोष्ठियों / प्रबोधन कार्यक्रमों के जरिए) किए गए कार्य के संबंध में उपयोगी फीडबैक प्राप्त करके उचित उपयोग / आवश्यक अद्यतन / संशोधन/ सुधार सुनिश्चित करना, हिंदीं और अन्य भारतीय भाषाओं में शब्दावली की एकरूपता सुनिश्चित करने हेतु सभी राज्यों के साथ समन्वय करने संबंधी महत्वपूर्ण कार्य प्रदान किया गया है। हांलांकि कानूनी, बीमा, रेलवे आदि की शब्दावलियों का निर्माण उनके संबंधित विभागों द्वारा ही किया गया है।

अनुवादक में कुछ गुणों का होना आवश्यक है साथ ही इन गुणों के साथ अनुवादक के कुछ कार्य भी हैं जिनमें से अनुवादक का एक महत्वपूर्ण कार्य है अनूदित पाठ का पुनरीक्षण करना। अनुवादक यह पुनरीक्षण मुख्यंत: दो प्रकार से करता है, 1. भाषा का पुनरीक्षण 2. विषय का पुनरीक्षण के आधार पर। पुनरीक्षण का उद्देश्य यह जाँचना होता है कि अनूदित सामग्री का कथ्य मूल के समतुल्य है कि नहीं। पुनरीक्षण भी

अनुवादक की क्षमता पर ही निर्भर करता है, अनुवादक को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का ज्ञान होना अति आवश्यक है। साथ ही अनुवादक में तटस्थ तथा निर्णय लेने की क्षमता भी अनुवाद का एक महत्वपूर्ण गुण है।

आज अनुवाद विश्व में अपना अहम् योगदान दे रहा है परंतु विश्व में अनुवाद की स्थिति पर विचार न करते हुए मैं इसे भारतीय आवश्यकताओं के अनुभव को विनेचित करने का प्रयास कर रहा हूँ। ऊपर की व्यवस्था से अनुवाद के दो रूप सामने आते हैं एक अनुवाद बढ़ रहा है जो हमें साहित्य, मनोरंजन में देखने को मिलता है तथा दूसरा सरकारी नियमों से बंधा हुआ अनुवाद, साहित्यिक अनुवाद में अनुवादक के पास पूरी स्वच्छंदता होती है वह अर्थ के पीछे न जाकर भाव, कथन, अभिव्यक्ति कोई भी माध्यम का चुनाव कर, पाठकों को मूल भाव के निकट ले जाने का प्रयास करता है, इसे हम हिंदी पाश्चात्य काव्य शास्त्र की दृष्टि से साधारणीकरण भी कह सकते हैं। जिसमें पाठक प्रस्तुत भाव का आलंबन कर सके, उसी भाव को पाठक या श्रोता के मन में भी जगाए जिसकी व्यंजना आश्रय अथवा कवि करता है। अनुवाद मात्रा भाषा का ही नहीं होता, अनुवाद समय-स्थान, विचार, भावनाओं को भी प्रेषित करने का माध्यम है। साहित्येतर अनुवाद साहित्यिक अनुवाद से सरल अनुवाद होता है, चूंकि इस अनुवाद का उद्देश्य यथार्थ अर्थ शुद्धता पर अधिक केंद्रित होता है। इसमें अर्थ की स्पष्टता ही सर्वोत्तरी मानी जाती है। शब्दों के चयन संबधी समस्या इस अनुवाद में नहीं होती। भारत सरकार के कार्यालयों द्वारा निर्धारित मानक वर्तनी का प्रयोग करना ही इस अनुवाद को अर्थ की दृष्टि से मजबूत बनाता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, भाग 3
2. प्रशासनिक शब्दावली, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, 2003
3. देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, 2010
4. अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार, डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल, दिल्ली
5. प्रयोजनमूलक हिंदी की नई भूमिका, डॉ. कैलाश नाथ पांडेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. राष्ट्रभाषा हिंदी का स्वरूपविधान - डॉ. रामेश्वर मिश्र, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली

-318, सिविल बाजार, दाड़ी रोड, धर्मशाला, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश

❑❑❑

साहित्येतर अनुवाद और अनुवाद-उपकरण

डॉ. हरीश कुमार सेठी

साहित्य से इतर अनुवाद, 'साहित्येतर अनुवाद' है। स्वयं में विशिष्ट अर्थ लिए हुए इस पारिभाषिक शब्द 'साहित्येतर अनुवाद' के इस समवाय में से सर्वप्रथम 'साहित्य' विचारणीय शब्द है। वास्तविकता यह है कि 'साहित्य', स्वयं में एक बहुत ही व्यापक शब्द है। अपने व्यापक अर्थ-संदर्भ में समस्त ज्ञान राशि का संचित भंडार अर्थात् संपूर्ण वाङ्मय 'साहित्य' की परिधि में आता है। 'साहित्य' के अंतर्गत वस्तुओं के सामान्य परिचय से लेकर सूक्ष्म ज्ञान की समस्त उपलब्धियों तक, सभी कुछ शामिल होता है। 'साहित्य' में संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया की शाब्दिक अभिव्यक्ति होती है। इस मानसिक प्रतिक्रिया का संबंध भावों, विचारों और संकल्पों से है। ये भाव-विचारादि हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन हैं। इसलिए ये संरक्षणीय हो जाते हैं। इसलिए संचित ज्ञान-राशि का संरक्षणीय लिखित रूप 'साहित्य' है। लेकिन, जब 'साहित्य' शब्द को सृजनात्मक साहित्य के संदर्भ में देखें तो वह सीमित-संकुचित अर्थ का द्योतन करता है।

सृजनात्मक विषयों के साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध, आत्मकथा, जीवनी, डायरी, संस्मरण, रिपोर्ताज, यात्रावृतांत आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं में लिखा जाने वाला साहित्य शामिल किया जाता है। नाटक-कहानी आदि सृजनात्मक साहित्य सृजन की विभिन्न विधाएँ हैं। इसलिए इसे विधा-केंद्रित साहित्य भी कहा जाता है। वहीं, साहित्येतर (ज्ञानात्मक/शास्त्रीय) विषयों में राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, इतिहास, भौतिकी, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, गणित आदि साहित्येतर विषय 'ज्ञानात्मक साहित्य' की श्रेणी में आते हैं, जिन्हें स्थूल रूप से 'विज्ञान' की संज्ञा प्रदान की जाती है। विज्ञान साहित्य इन्हीं साहित्येतर विषयों का अंग है। इनमें मूल तत्व यह है कि इस प्रकार के साहित्य में विधा का कोई स्थान नहीं है। ज्ञान-विशेष की शाखा इसमें ज्ञानानुशासन अथवा 'विषय' (discipline) का रूप धारण कर लेती है। जब किसी ज्ञानानुशासन से संबंधित साहित्य का अनुवाद किया जाता है तो वह 'मानविकी/सामाजिक विज्ञान का अनुवाद', 'भौतिकी का अनुवाद', 'गणित का अनुवाद', 'वाणिज्य का अनुवाद', 'अर्थशास्त्र का अनुवाद' 'भूविज्ञान का अनुवाद', 'मीडिया अनुवाद', 'प्रशासनिक अनुवाद', 'वाणिज्यिक अनुवाद' आदि नामों से अपनी पहचान बनाता है।

साहित्येतर अनुवाद की आवश्यकता एवं महत्व

क्लासिकी भाषाओं में, विदेशी भाषाओं में तथा अपने ही देश की अन्य भाषाओं में तथा उनके साहित्य में ज्ञान-विज्ञान के भंडार उपलब्ध हैं। आधुनिक युग में इस प्रकार के ज्ञानात्मक साहित्य-भंडार की आवश्यकता इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, वाणिज्य आदि के अध्ययन के साथ-साथ भौतिकी, रसायन विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अध्ययन में भी विभिन्न स्तरों पर पड़ती है। इस आवश्यकता को पूरा करने में अनुवाद की अपनी विशेष भूमिका है। विभिन्न भाषाओं में रचित ज्ञान-भंडार का शिक्षा में

उपयोग भी अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाता है। चिकित्सा, मौसम विज्ञान, वाणिज्य-व्यापार आदि क्षेत्रों में भी प्रमुख गतिविधियों से शिक्षा को जोड़ने के लिए अनुवाद को माध्यम बनाना बहुत जरूरी है।

प्राचीन ज्ञान-भंडार के अध्ययन एवं उपयोग में भी अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। आज हम विभिन्न विषयों के प्राचीन ज्ञान का उपयोग, अनुवाद के माध्यम से, गणित, दर्शन, राजनीति विज्ञान, इतिहास, भौतिकी, चिकित्सा, रसायन और खगोल विद्या का विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसंधान में करते हैं। आज यदि हम राजनीति विज्ञान में प्लेटो, अरस्तू, सेंट ऑगस्टाइन, एक्विनास निकोलो मैक्यावली, थॉमस हॉब्स, जॉन लॉक, जीन जॉक रूसो, एडमंड बर्क, इमेनुअल कांट, जेरेमी बेंथम, जेक. एस. मिल, जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल, कार्ल मार्क्स आदि के विचारों से अवगत हो पाते हैं तो उसके मूल में अनुवाद ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार अरस्तू का 'काव्यशास्त्र', कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', पाणिनि की 'अष्टाध्यायी', 'चरक संहिता', 'सुश्रुत संहिता' आदि अनुवाद की बदौलत हिंदी या अंग्रेजी या अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। 'बाबरनामा', 'आइने अकबरी', 'जहाँगीरनामा' आदि रचनाएँ मध्यकालीन इतिहास की साक्षी हैं जिनसे अनुवाद के माध्यम से ही परिचय हो पाता है। इसी संदर्भ में विमानशास्त्र के प्रणेता महर्षि भारद्वाज (छठवीं शती ई.पू.), परमाणु सिद्धांत के प्रणेता कणाद (600 ई.पू.), रसायनविद नागार्जुन (100 ई.), पृथ्वी द्वारा सूर्य के परिक्रमण, उसके वेग तथा ग्रहों के सही व्याख्याकार और अंकों की स्थान पद्धति एवं दाशमलविक पद्धति के प्रणेता आर्यभट्ट (500 ई.), पृथ्वी की कक्षा, ग्रहों के वेग आदि पर अनुसंधान करने वाले छठवीं तथा सातवीं शती के लल्लाचार्य, खगोलज्ञ वटेश्वर तथा वराहमिहिर (990 ई), बारहवीं सदी के गणितज्ञ तथा गुरुत्वाकर्षण की अवधारणा के प्रणेता भास्कराचार्य द्वितीय का विज्ञान के क्षेत्र में योगदान कम महत्व का नहीं है। त्रिकोणमिति में चौदहवीं शती में माध्वाचार्य ने जो कार्य किया, वही लाइब्निट्ज ने उनके 300 वर्ष बाद किया था। इसी संदर्भ में अनंत शृंखला का योग, त्रिकोणमिति पर मूलभूत कार्य करने वाले पंद्रहवीं शती के नीलकंठ तथा सोमयजी, अठारहवी शताब्दी के गणितज्ञ बापूदेव शास्त्री आदि के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार के ज्ञान-भंडार को प्रकाश में लाने में अनुवाद की भूमिका के प्रति गंभीरता की आवश्यकता है।

प्राचीन ज्ञान-भंडार को अपनी भाषा में लाने की यह प्रवृत्ति किसी भी भाषा में देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए, संस्कृत से अरबी-फारसी भाषा में अनुवाद की परंपरा को देखा जा सकता है। इस परंपरा पर विचार करते हुए 'फ़ारसी अनुवाद' पुस्तक के संपादक प्रो. चंद्रशेखर ने लिखा है - "11वीं-12वीं ई. में महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण के उपरांत भारतीय ग्रंथों को फ़ारसी भाषाविदों ने समझना एवं अनूदित करना प्रारंभ किया। इन विद्वानों में सर्वप्रथम नाम अबु रिहान बैरूनी का आता है, जो महमूद ग़ज़नवी के साथ भारत आया। उसने अपने आवासकाल में संस्कृत भाषा का अध्ययन किया तथा संस्कृत से अरबी भाषा में अनुवाद किया। अनुवाद कार्य में उसे संभवतः संस्कृत विद्वानों की सहायता मिली। बैरूनी से संबंधित संस्कृति के अरबी अनुवादों में पतंजलि कृत पुस्तकें, भारतीय अर्थशास्त्र, बीजगणित, खगोलविद्या आदि हैं। इनके अरबी नाम हैं - 'किताबें पातांजलि', 'फ़िल-अख़लास फिल अर्तबाक', 'ब्रह्म सिदांत मिन तुर्कुलहिसाब', (संभवतः ब्रह्म अर्थ सिद्धांत का), 'तहजीब उल अर्कंद', 'अलमवालीदलि ब्राहीम', 'गुर्राउ जीजात' (जो वाराणसी में रचित किसी बीजगणित के ग्रंथ का अनुवाद है)। इसके अतिरिक्त बैरूनी ने कुछ संस्कृत पुस्तकों पर आधारित भारतीय उपचार विद्या पर भी पुस्तकों की रचना की। इन अनूदित पुस्तकों के आधार पर आगामी काल में फारसी में पुस्तकें रचित हुईं। (पृ.ix)

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विदेशी भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान-भंडार का अनुवाद के जरिए शिक्षा में उपयोग कर पाने की स्थिति बनती है। जैसाकि ऊपर चर्चा की जा चुकी है, हम सभी का प्लेटो, अरस्तू, सेंट ऑगस्टाइन, मैक्यावली, थॉमस हॉब्स, रूसो, इमेनुअल कांट, जेरेमी बेंथम, जे. एस. मिल, हेगेल, कार्ल मार्क्स आदि विदेशी विचारकों के राजनैतिक विचार आदि से परिचय अनुवाद के जरिए संभव हो पाया है। इनमें उपलब्ध प्राचीन एवं नवीन ज्ञान के अनुवाद की आज की शिक्षा में उपयोग के लिए अत्यधिक आवश्यकता

है। विदेशों में हो रहे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय विकास के बारे में अद्यतन जानकारी उपलब्ध कराने में अनुवाद सार्थक माध्यम सिद्ध होता है।

यदि विशुद्ध शैक्षिक दृष्टि से देखा जाए तो ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं संबंधी विषयों के सार्थक शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए उन्हें अद्यतन बनाए रखने की आवश्यकता है। यह तभी संभव हो पाता है जब देश-विदेश में हो रही बौद्धिक और वैज्ञानिक गतिविधियों एवं अनुसंधानों को अपनी भाषा के साथ निरंतर जोड़े रखा जाए। यह जुड़ाव अनुवाद को माध्यम बनाकर ही सार्थक ढंग से संभव हो पाता है। इससे जहाँ देश-विदेश का अधुनातन ज्ञान अपनी भाषा में आता है, वहीं संबंधित विषयों में मौलिक लेखन कार्य को भी बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन ज्ञान ओर विदेशी ज्ञान साहित्य का अध्ययन में व्यवहार अनुवाद के माध्यम से ही संभव है। इसके अलावा, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में लगातार हो रहे विकास से निरंतर संपर्क बनाए रखकर अपने भाषा-साहित्य को अद्यतन बनाए रखने में अनुवाद अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

साहित्येतर-अनुवादक से अपेक्षाएँ और अनुवाद-उपकरण

अनुवाद, एक भाषा की विषय-वस्तु एवं उसके भाषिक सौंदर्य को समझकर दूसरी भाषा में प्रस्तुत करने से संबंधित कार्य है। एक भाषा से दूसरी भाषा में स्थानांतरित की जाने वाली विषय-वस्तु, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान अथवा कला-कौशल आदि में से किसी भी ज्ञान-क्षेत्र से संबद्ध हो सकती है। लेकिन यह कार्य स्रोत भाषा में उपलब्ध सामग्री का लक्ष्य भाषा में शब्दांतर करते हुए अभिव्यक्ति करने से ही नहीं निपट जाता। अनुवाद में शब्दों के अर्थ के साथ उसमें निहित भाव-विचार अर्थात् कथन के आशय को भी सही तरीके से अभिव्यक्त करना होता है ताकि अनुवाद गुणवत्ता में अनुवाद का आभास न दिलाकर मूल पाठ-सा प्रतीत हो। इस आधार पर देखा जाए तो अनुवादक को अनूद्य-सामग्री से संबंधित विषय का पर्याप्त ज्ञान, पाठ के शब्दों में निहित अर्थ एवं अभिव्यक्ति की पूरी तरह से समझ होनी आवश्यक है। कथन के आशय के समुचित बोध के लिए उससे संबद्ध संकल्पनाएँ भी अनुवादक के समक्ष पूर्ण रूप से स्पष्ट होनी चाहिए। दूसरी ओर, अनुवादक का अभिव्यक्ति पक्ष भी सबल होना अपेक्षित है क्योंकि उसकी कसौटी इस बात में है कि वह मूल कथ्य, उसमें निहित आशय एवं कथ्य के प्रभाव को यथासंभव सुरक्षित बनाए रखते हुए लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करे। इसे ही समतुल्य प्रस्तुतीकरण कहा जाता है। इसके लिए अनुवादक का दोनों भाषाओं पर अच्छा अधिकार होना चाहिए।

भाषा पर अधिकार से अभिप्राय है - भाषा की स्पष्ट रूप से समझ होना। दोनों भाषाओं (अर्थात् स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा) पर अधिकार केवल शब्दों के अर्थ के बोध से ही संबंधित न होकर भाषिक मुहावरे एवं विभिन्न संदर्भों में उन शब्दों के निहितार्थ के बोध से भी संबंधित है। लेकिन अच्छे से अच्छे अनुवादक से भी भाषा के प्रत्येक शब्द के निहितार्थ एवं समस्त शब्दों के प्रयोग की शत-प्रतिशत जानकारी की अपेक्षा कोरी कल्पना ही कही जा सकती है। संभवतः उसे भी लक्ष्य भाषा में उपयुक्त समतुल्य शब्द ध्यान में न आ पाए या फिर ऐसा भी हो सकता है कि जटिल वाक्य संरचना की वजह से वाक्य के सटीक अर्थ का ज्ञान न हो पाए। यह भी संभव है कि अनुवादक स्रोत भाषा के विषय को भली प्रकार से समझने में कठिनाई अनुभव कर रहा हो या फिर उसे लक्ष्य भाषा में उपलब्ध अनेक प्रति-शब्दों में से उपयुक्त विकल्प (शब्द) का चयन करने में दुविधा भी हो सकती है। एक संभावना यह भी है कि उसे लक्ष्य भाषा में लिप्यंतरित किए जा रहे स्रोत भाषा के किसी शब्द-विशेष के उच्चारण का ज्ञान न हो। इन समस्याओं के अतिरिक्त, अन्य प्रकार की समस्याएँ भी उठ खड़ी हो सकती हैं।

अनुवाद में अनुभव की जाने वाली इन समस्याओं से जूझने के लिए अनुवादक को केवल अपनी मेधा अथवा स्मरण-शक्ति पर निर्भर न रहकर समाधान के विकल्प के रूप में विभिन्न संदर्भ साधन-उपकरणों की आवश्यकता भी पड़ जाती है। इन साधन-उपकरणों का समुचित उपयोग कर विभिन्न तरीकों एवं ढंगों से शब्दांतर एवं कथन के आशय का समुचित रूप से वहन किया जा सकता है। विषय एवं भाषा संबंधी ज्ञान के लिए ये विशेष साधन-उपकरण महत्वपूर्ण औजार सिद्ध होते हैं। इन उपकरणों में से सबसे अधिक सहायक

सिद्ध होता है- शब्दकोश। इनके अतिरिक्त, पर्याय कोश, अभिव्यक्ति कोश, विषय कोश, बोली अथवा उपभाषा कोश, पुराण कोश, साहित्य कोश, लोकोक्ति-मुहावरा कोश, विश्व कोश आदि भी सहायक सिद्ध होते हैं।

किंतु जब अनुवादक किसी विषय-विशेष संबंधित अथवा उस पर केंद्रित सामग्री का अनुवाद करता है तो उस ज्ञान-शाखा अथवा व्यवहार क्षेत्र के विशिष्ट अर्थों के व्यंजित विशिष्ट शब्दों एवं विशिष्ट प्रयुक्तियों के लक्ष्य भाषा में पर्याय खोजने पड़ते हैं। मानक भाषा के कोशों में विषय-विशेष से संबद्ध विशिष्ट तकनीकी शब्दावली एवं विशिष्ट प्रयुक्तियों का समावेश नहीं होता है। हालांकि ज्ञान-शाखा अथवा व्यवहार क्षेत्र का जानकार व्यक्ति तत्संबंधी पारिभाषिक शब्दावली से कुछ हद तक परिचित होता है और वह अपनी मेधा अथवा स्मरण-शक्ति के आधार पर उन शब्दों का व्यवहार करता चलता है किंतु इसकी भी एक सीमा होती है। ऐसे में अनुवादक को भाषा-विशेष के तकनीकी शब्दों के समतुल्य पर्यायों को जानने की आवश्यकता होती है। ऐसे में विषय-विशेष से संबंधित शब्दावली के कोशों का सहारा लेना आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य भी हो जाता है। पारिभाषिक शब्दावली को कई आकारों में एकत्र करके प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन मुख्य रूप से शब्द और शब्दकोशों के रूप में इनका उपयोग सबसे अधिक होता है। ये दोनों एकल भाषा में भी हो सकते हैं और द्विभाषा में भी। अनुवादक तत्संबंधी विषयों से संबद्ध 'पारिभाषिक शब्द-संग्रहों' (glossaries) एवं तकनीकी 'परिभाषा कोशों' (Difinitional Dictionaries) का सहारा लेकर अनुवाद कार्य करते हैं। संबद्ध सामग्री के अनुवाद में ये कोश सिद्ध होते हैं।

पारिभाषिक शब्द-संग्रह (Glossaries) : शब्द-संग्रह अंग्रेजी के विशेष 'Glossary' शब्द के समतुल्य हैं। हिंदी में इसे 'शब्द-संग्रह' के अतिरिक्त 'शब्द-सूची' के नाम से भी जाना जाता है। 'Glossary' शब्द का उद्भव लैटिन शब्द 'glossarium' से हुआ है जिसका अभिप्राय है - 'ज्ञान के विशिष्ट क्षेत्र के शब्दों का संकलन'। शब्द-संग्रह में संकलित प्रत्येक प्रविष्टि को 'gloss' के नाम से जाना जाता है, जिसका अर्थ है - 'शब्द', 'व्याख्या', 'टीका-टिप्पणी आलोचना', 'प्रतिपादन'। शब्द-संग्रह अथवा शब्दावली में विज्ञान-प्रौद्योगिकी, मानविकी-सामाजिक विज्ञान, विधि, प्रशासन आदि ज्ञान के प्रत्येक विषय-क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले तकनीकी शब्द विषयवार एकत्रित करके उन शब्दों के दूसरी भाषा में समानार्थी शब्द दे दिए जाते हैं। इस प्रकार शब्दावली या शब्द-संग्रहों में तकनीकी शब्दावली और दूसरी भाषा में उनके प्रतिशब्द पर्याय शामिल होते हैं। यही कारण है कि शब्द-संग्रह, द्विभाषिक रूप में ही अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी होते हैं - यद्यपि ये दो से अधिक भाषाओं में भी हो सकते हैं।

पारिभाषिक शब्द-संग्रहों में तकनीकी शब्दों को अकारादि क्रम में व्यवस्थित किया होता है। किंतु इनमें संग्रहीत शब्दों की परिभाषा अथवा प्रयोग, अर्थगत अथवा व्याकरणिक सूचनाओं का अभाव होता है। पारिभाषिक समानार्थक शब्दों की उपलब्धता के कारण ज्ञान-शाखा विशेष अथवा व्यवहार-क्षेत्र विशेष में लेखन अथवा अनुवाद करने वालों और अध्यापकों आदि के लिए ये शब्द-संग्रह विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होते हैं। केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के अंतर्गत वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित 'बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह' इसी प्रकार के शब्द-संग्रह का उदाहरण है जिनमें अंग्रेजी शब्दों के हिंदी (एवं अन्य भारतीय भाषाओं के) प्रतिशब्द शामिल हैं। अंग्रेजी के संकल्पनात्मक एवं पारिभाषिक/तकनीकी शब्दों के मानक प्रतिशब्द जानने का ये सशक्त माध्यम हैं।

भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा विभिन्न विषय-क्षेत्रों के लगभग पाँच लाख पारिभाषिक शब्द विकसित किए जा चुके हैं। इनमें विज्ञान, मानविकी, सामाजिक विज्ञान, इंजीनियरी, आयुर्विज्ञान, प्रशासन, कृषि, कंप्यूटर विज्ञान, मुद्रण विज्ञान, वानिकी, अंतरिक्ष विज्ञान, धातुकर्म आदि विषयों से संबंधित 'शब्दावलियाँ' शामिल हैं। आयोग ने बृहत् 'पारिभाषिक शब्द-संग्रहों' (जैसे मानविकी, विज्ञान कृषि विज्ञान, आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, नृविज्ञान, आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी एवं मुद्रण इंजीनियरी ज्ञान-क्षेत्र के बृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह) और शब्दावलियों (जैसे समेकित प्रशासन शब्दावली, मानविकी शब्दावली, कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली, इस्पात एवं अलौह धातुकर्म शब्दावली, वाणिज्य शब्दावली, समेकित रक्षा शब्दावली, अंतरिक

विज्ञान शब्दावली, भाषाविज्ञान शब्दावली, पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली, लोक प्रशासन शब्दावली, अर्थशास्त्र शब्दावली, नृविज्ञान शब्दावली, वानिकी शब्दावली, खेलकूद शब्दावली, डाकतार शब्दावली और रेलवे शब्दावली) के रूप में प्रकाशित किया है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित इन शब्द-संग्रहों और शब्दावलियों के अलावा, भारत सरकार के विधि मंत्रालय, सूचना और प्रसारण मंत्रालय के आकाशवाणी और भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय ने भी अपनी-अपनी शब्दावलियाँ तैयार की हैं।

परिभाषा कोश (Definitional Dictionaries) : परिभाषा कोश में तकनीकी शब्द-संग्रह की भाँति दूसरी भाषा के प्रतिशब्द तो दिए ही होते हैं वहीं साथ ही उन तकनीकी शब्दों की परिभाषा भी दी हुई होती है। यहाँ 'तकनीकी शब्द की परिभाषा' का अभिप्राय है - शब्द-विशेष से संबद्ध संकल्पना का संक्षिप्त विवरण। इस विवरण के अंतर्गत शब्द-विशेष का अर्थ, प्रयोग-संदर्भ एवं विभिन्न विद्वानों के मत-अभिमत एवं विवेचन आदि जानकारी शामिल होती है। उदाहरण के तौर पर अंग्रेजी के 'base' शब्द को लिया जा सकता है, जिसका पारिभाषिक हिंदी प्रतिशब्द 'आधार' है। किंतु यदि इसी शब्द को आयोग के गणित से संबंधित प्रारंभिक पारिभाषिक कोश में देखा जाए तो यह विवरण मिलेगा कि "किसी ज्यामितीय आकृति की वह भुजा या पृष्ठ जिस पर ज्यामितीय आकृति को खड़ा हुआ माना जाए। किंतु कुछ आकृतियों में विशेष भुजा या पृष्ठ को आधार माना जाता है, वर्तुल शंकु का आधार एक वृत्त होता है।" इसी प्रकार गणित के संदर्भ में 'figure' के लिए 'आकृति' शब्द की परिभाषा इस प्रकार मिलेगी - 'स्त्री (सं., आ+√कृ+क्तिन) बिंदुओं तथा रेखाओं का वह समुदाय जिसकी सहायता से किसी तथ्य अथवा विषय का निरूपण करें। जैसे, ज्यामितीय आकृतियाँ, मशीन आदि के चित्र। आकृति और आरेख में अंतर यही है कि आकृति में रूप भी साम्मिलित होता है जबकि आरेख में यह नहीं होता। आरेख में अवयवों का विन्यास ही प्रधान होता है। इस प्रकार आकृति शब्द की व्युत्पत्ति को दर्शाने के साथ-साथ उसे परिभाषित किया गया है, उदाहरण प्रस्तुत किया गया है और फिर आरेख से उसका अंतर रेखांकित किया गया है।

इसी भाँति, राजनीति विज्ञान से संबंधित पारिभाषिक शब्द 'capitalism' को लिया जा सकता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (सी.एस.टी.टी.) द्वारा प्रकाशित बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह (मानविकी) में इसके लिए प्रतिशब्द खोजा जाए तो वहाँ इसका पर्याय मिलेगा- 'पूंजीवाद'। किंतु यदि इसी शब्द को सी.एस. टी.टी. द्वारा प्रकाशित राजनीति विज्ञान परिभाषा कोश में देखा जाए तो उसमें यह जानकारी तो प्राप्त होगी ही कि 'पूंजीवाद' शब्द 'capitalism' का प्रतिशब्द है, वहीं साथ ही यह भी जानकारी मिलेगी कि पूँजीवाद क्या है, यह कब शुरू हुआ, इसकी क्या प्रवृत्तियाँ हैं आदि।

परिभाषा कोश में विषयवार आधारभूत शब्दों की परिभाषाओं को तैयार करके प्रकाशित किया जाता है। तकनीकी शब्द की इस प्रकार परिभाषा से उसकी संकल्पना एवं उसके अभिधेय का स्पष्ट बोध हो जाता है। परिभाषा से जहाँ शब्द-संकल्पना को समझने एवं उसे व्याख्यायित करने में सहायता मिलती है वहीं, साथ ही पारिभाषिक शब्द की रूप-रचना के निर्धारण में भी यह कोश सहायक सिद्ध होता है। परिणामस्वरूप शब्द-विशेष के प्रयोग की क्षमता बढ़ जाती है। परिभाषा के आधार पर ही किसी शब्द को उपयुक्त ठहराया जा सकना संभव हो पाता है। चूँकि तकनीकी शब्दों को उनकी परिभाषाओं (व्याख्याओं) के माध्यम से ठीक तरह से समझा जा सकता है इसलिए विषय-विशेषज्ञों, अध्यापकों, विद्यार्थियों अथवा अनुसंधानकर्ताओं एवं तत्संबंधी क्षेत्र में लेखन-कार्य करने वालों के लिए इस प्रकार के कोश उपयोगी सिद्ध होते हैं। अनुवादकों के लिए भी इनका विशेष महत्व है। वस्तुतः किसी भी विषय के तकनीकी शब्द की संकल्पना को सही रूप से एवं भली प्रकार से समझने में परिभाषा कोश सहायता करते हैं।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने भूविज्ञान परिभाषा कोश, शैलीविज्ञान परिभाषा कोश, प्रारंभिक पारिभाषिक रसायन कोश, उच्चतर रसायन परिभाषा कोश, रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश, पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश, प्रारंभिक पारिभाषिक कोश (गणित), गणित परिभाषा कोश, आधुनिक बीजगणित परिभाषा कोश, सांख्यिकी परिभाषा कोश, भौतिकी परिभाषा कोश, आधुनिक भौतिकी परिभाषा, प्राणिविज्ञान परिभाषा,

वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश, भूगोल परिभाषा कोश, गृहविज्ञान परिभाषा कोश, इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा कोश, आयुर्विज्ञान पारिभाषिक कोश (शल्यविज्ञान), इतिहास, शिक्षा, मनोविज्ञान, दर्शन, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, समाजकार्य, समाजशास्त्र, सांस्कृतिक नृविज्ञान, पत्रकारिता, पुरातत्व, पुस्तकालय-विज्ञान, पाश्चात्य संगीत, भाषाविज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, राजनीति विज्ञान, प्रबंध विज्ञान और अंतराष्ट्रीय विधि जैसे विभिन्न विषयों के 50 से अधिक परिभाषा कोश तैयार किए हैं।

पारिभाषिक शब्द-संग्रह/शब्दावलियों और परिभाषा कोशों में अंतर :

पारिभाषिक शब्द संग्रह और परिभाषा कोश के संबंध में किए गए उक्त विवेचन के आधार पर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि इन दोनों में अंतर क्या है? अगर अंतर है तो उसके आयाम क्या हैं? पारिभाषिक शब्दावली/शब्द-संग्रहों और परिभाषा कोशों में कोई अंतर नहीं है। पारिभाषिक शब्द और उनकी भाषाओं में अटूट संबंध है। दोनों में समान रूप से अर्थवत्ता विद्यमान है। अंतर इसके विस्तार में और इसके कलेवर में निहित है। पारिभाषिक शब्दावली/शब्द-संग्रहों में पारिभाषिक शब्द और उसका अन्य भाषा में प्रतिशब्द दिया जाता है। जबकि परिभाषा कोशों में पारिभाषिक प्रतिशब्द के साथ-साथ उसका विशिष्ट अर्थ, सरल, सुबोध, सुनिश्चित और नपे-तुले शब्दों में सुगठित वाक्य/वाक्यों में व्यक्त होता है। यही वाक्य उस शब्द-विशेष की परिभाषा का रूप ग्रहण कर लेते हैं। उल्लेखनीय है कि परिभाषा की भाषा सुगठित होती है, उसमें प्रयुक्त एक भी शब्द अनावश्यक नहीं होता। और इस तरह परिभाषा के माध्यम से पारिभाषिक शब्द-विशेष की अवधारणा और उसके अभिधार्थ का स्पष्ट रूप से परिचय प्राप्त हो जाता है।

अनुवाद-उपकरणों का महत्व

अनुवादक के लिए शब्द-संग्रह, शब्दावलियाँ और परिभाषा-कोश उपयोगी साधन-उपकरण हैं। अनुवादक के लिए ये सामान्य भाषा कोशों के पूरक का काम करते हैं। विशेषीकृत विषय-सामग्री के अनुवाद में तत्संबंधी तकनीकी शब्दों के लक्ष्य भाषा में प्रतिशब्द खोजने के लिए इस प्रकार के कोशों की आवश्यकता होती है ताकि अनुवादक अनूदित पाठ में समानार्थी शब्दों का विधान कर सके। समानार्थी अथवा समुचित पर्यायों के अभाव में अनुवादक द्वारा लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा की विषय-वस्तु एवं मंतव्य को व्यक्त करना असंभवप्राय हो जाता है। यही कारण है कि पारिभाषिक शब्द-संग्रहों का अनुवाद में विशेष स्थान है।

अनुवादकों को जहाँ पारिभाषिक शब्दों के पर्याय चयन में विशेष ध्यान अपेक्षित होता है, वहीं पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। पारिभाषिक शब्द-विशेष की परिभाषा ही उसके सटीक अर्थ को ठीक-ठीक प्रस्तुत करती है और उसी से तकनीकी शब्द की रूप-रचना भी निर्धारित होती है। तकनीकी शब्द-संकल्पना की अस्पष्टता समुचित अनुवाद में बाधक रहती है जबकि शब्द में निहित संकल्पना को समझने एवं व्याख्यायित करने की स्थिति में परिभाषा कोश सहायक सिद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए, विज्ञान संबंधी पारिभाषिक शब्द-संग्रह में 'trough' और 'depression' का अन्य शब्दों के साथ-साथ 'गर्त' पर्याय है। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञान संबंधी पारिभाषिक शब्द संग्रह में 'sex' और 'gender' के लिए हिंदी पर्याय 'लिंग' मिलता है। इस प्रकार के शब्दों में परिव्याप्त भेद को उद्घाटित करने में पारिभाषिक शब्द संग्रह अथवा पारिभाषिक शब्दावलियाँ असमर्थ होती हैं। इस प्रकार के शब्दों के भेद को जानने में परिभाषा कोश सहायक सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य स्थिति में भी परिभाषा कोशों का विशेष महत्व है। चूँकि पारिभाषिक शब्दों में प्रमुख रूप से विचार, भाव अथवा संकल्पना का समावेश होता है और उसकी पूरी व्याख्या का अभाव होता है, इस कारण जब स्रोत भाषा का कोई पारिभाषिक शब्द लक्ष्य भाषा में पहले-पहल प्रयोग में आता है तब उसकी विविध व्याख्याओं या प्रयोगों से उत्पन्न होने वाले भ्रम से बचाने के लिए उसके अर्थ को व्याख्या द्वारा स्पष्ट करना उचित माना जाता है। इस पद्धति को तब तक व्यवहार में लाया जाता है जब तक कि वह पारिभाषिक शब्द-विशेष पर्याप्त प्रचलित न हो जाए।

ज्ञान-शाखा, जीवन-व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों में नितनूतन नए-नए पारिभाषिक शब्द गढ़े जाते हैं या फिर अन्य भाषा-समाजों से ग्रहण कर उन्हें अपनी भाषा में शामिल कर लिया जाता है। इस कारण पारिभाषिक शब्द

बहुत जल्दी पुराने भी पड़ जाते हैं। इस कारण विषय कोशों, परिभाषा कोशों एवं पारिभाषिक शब्द-संग्रहों आदि को समय-समय पर संशोधित-परिवर्धित करने की आवश्यकता पड़ती है, उनके नए संस्करण प्रकाशित करने पड़ते हैं। इसलिए यह माना जाता है कि अनुवादक को विषयों से संबद्ध कोशों - पारिभाषिक शब्द-संग्रहों, परिभाषा कोश, विषय कोश आदि-में पारिभाषिक शब्दों के लिए प्रतिशब्द ग्रहण/चयन करने से पूर्व कोश-विशेष के प्रकाशन के वर्ष पर सरसरी नजर अवश्य डाल लेनी चाहिए।

तीव्र गति से विकसित हो रहे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को सही अर्थों में पूरा करने में किसी भी भाषा-विशेष में सर्वोपयुक्त पारिभाषिक शब्द-संग्रह/शब्दावली देखने को नहीं मिलती। इसलिए नए शब्द-संग्रहों/शब्दावलियों की आवश्यकता बनी ही रहती है। विविध विषयों से संबद्ध सामग्री के अनुवाद में इस प्रकार के कोशों की आवश्यकता असंदिग्ध है और सटीक अनुवाद के क्रम में अनुवादक के समक्ष आने वाली बाधाओं से निपटने में ये कारगर सिद्ध होते हैं।

– असिस्टेंट प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, ब्लॉक 15-सी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068

❑❑❑

तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद

डॉ. राजेश कुमार

साहित्य की विचारधारा जीवन और जगत से तादात्म्य बनाकर आगे बढ़ती आई है। किसी भी देश का साहित्य हो, उसमें जीवन की चित्तवृत्तियों का सम्यक् निदर्शन पाया जाता है। साहित्य में सकारात्मक वृत्तियों के संवर्धन की पुष्कल चेतना का समावेश होता रहा है। संस्कृत के मर्मज्ञ काव्यशास्त्रियों ने साहित्य में शब्द और अर्थ की रमणीयता को वरेण्य माना है। काव्य की परिभाषा के बहाने आचार्यप्रवर 'पंडितराज' जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्दों को साहित्य का आधार माना है। शब्द की अर्थवत्ता यदि रमणीय नहीं है, तो उसे साहित्य की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जा सकता है। पण्डित राज की पंक्ति विचारणीय हैं –

"रमणीयार्थः प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।"[1]

इसी कथन को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कुछ इस तरह व्यक्त किया है –

"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं।"[2]

शुक्ल जी की उपर्युक्त परिभाषा में ध्यान देने योग्य दो बाते हैं – एक हृदय की मुक्तावस्था और दूसरी आत्मा की मुक्तावस्था। आत्मा जब तक अज्ञान से बँधा रहता है, तब तक उसमें अज्ञानजनित प्रदूषण विद्यमान रहता है। आत्मा जब 'अज्ञान' से विमुक्त हो जाती है, तभी व्यक्ति ज्ञानी होता है। इसी प्रकार हृदय में 'घमंड' भरा होता है। जब हृदय घमंड से रहित हो जाता है, तब हृदय की अनुस्यूत वाणी कविता होती है।

'वड्र्सवर्थ' ने भी शांति के समय में स्मरण किए गए प्रबल मनोवेगों के स्वच्छंद प्रवाह को काव्य की संज्ञा प्रदान की है – "Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquility."[3]

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि साहित्य की विचारधारा विभिन्न भाषाओं में भले ही आबद्ध हो, किंतु उसका उत्स जीवन के रमणीय अर्थ-बोध में ही है। इस प्रकार साहित्य वह विचार-तत्त्व है, जो जीवनविधायिनी प्रज्ञा को विकसित करता है। तुलनात्मक साहित्य के अनुशीलन से हम नाना क्रियाव्यापारों की अर्थच्छवि का आकलन कर सकते हैं।

आचार्य 'मम्मट' ने 'काव्यप्रकाश' में दोषरहित शब्दार्थों को गुणसहित होने पर तथा कभी-कभी अलंकारों के समन्वय पर काव्य की संज्ञा से अभिहित किया है –

"तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।"[4]

आचार्य मम्मट की परिभाषा को रीतिकालीन कवि श्रीपति ने अनूदित कर अपनी भाव-चेतना का नवोन्मेष किया है। इस अनुवाद में सहजता, सरलता के साथ-साथ विषयवस्तु का सुंदर उपस्थापन किया गया है –

शब्द अर्थ बिन दोष गुन अलंकार रसवान।
ताको काव्य बखानिए श्रीपति परम सुजान।।[5]

तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद के समय कवि-कर्म की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें

मूल विषय के सांगोपांग लक्षणों का अनुशीलन सार्थकता और सटीकता के निकष पर किया गया हो। किसी भाषा के कथ्य को दूसरी भाषा में प्रस्तुत कर देना दुष्कर कार्य है, फिर भी अनेक प्रसिद्ध कवियों ने अपनी सहजा कारयित्री प्रतिभा द्वारा ऐसा कर दिखाया है। कहीं-कहीं तो वह मूल से भी रमणीय बन गया है। महाकवि बिहारी लाल रीति सिद्ध कवि हैं। उनका एक ही ग्रंथ 'बिहारी सतसई' रीतिकालीन काव्य का सुविन्यस्त एवं सुचिंतित ग्रंथ है। राधा की स्तुति करते समय उन्होंने 'शृंगार सप्तशती' के मूल श्लोक से और अधिक रमणीयता तथा भाव प्रवणता के साथ-साथ श्लिष्ट पदावली में अर्थगौरव का भान कराया है। बिहारी लाल का शब्द-चयन इतना मार्मिक और मर्मस्पर्शी है कि उसे देखकर काव्यप्रेमियों का मन सुखद आह्लाद से सुविकसित हो उठता है। 'शृंगार सप्तशती' का श्लोक उद्धृत किया जा रहा है -

अपनय भवबाधां मम राधे! त्वं कुशलासि।
हरिरपि दधति हरिद्युतिं यदि माधवमुपयासि।।[6]

बिहारी सतसई में महाकवि बिहारी लाल का दोहा इस प्रकार है -

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ।।[7]

उपर्युक्त दोहे में बिहारीलाल ने 'शृंगार सप्तशती' के श्लोक का भावानुवाद कर स्वयं की कारयित्री प्रतिभा के कौशल को सिद्ध किया है।

ज्योतिष के अनुसार मंगल ग्रह का रंग लाल और बृहस्पति का रंग पीला माना जाता है। वर्षा-ज्ञान के संदर्भ में ज्योतिष में सात-नाड़ियाँ मानी गई हैं। इनमें से प्रत्येक की गति चार-चार नक्षत्रों में सर्प के आकार के समान होती है। चंद्रमा, मंगल तथा बृहस्पति ग्रहों की स्थिति जब एक ही नाड़ी के चारों नक्षत्रों में से किसी एक पर होती है अथवा भिन्न-भिन्न पर होती है, तब ऐसी दशा में सर्वत्र वर्षा का योग होता है। बिहारी लाल ने 'नरपति जयचर्या' के अध्याय तीन में उल्लिखित श्लोक संख्या उनतीस का सुंदर भाषानुवाद प्रस्तुत किया है -

मंगल बिन्दु सुरंगु, मुखु ससि, केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन-जगत।।[8]

'नरपति जयचर्या' का श्लोक भी पाठकों के ज्ञान के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है -

एक नाड़ी समारुढ़ौ चंद्रमा धरणीसुतौ।
यदि तत्र भवेज्जीवस्तुदैकार्ण वितामही।[9]

बिहारी लाल ने अपने ज्योतिष-परिज्ञान का परिचय देते हुए रूपकत्व और शिलष्टत्व के द्वारा राजयोग का वर्णन किया है,तो नायिका के सौंदर्य-बोध से आकर्षित हुए नायक के मन की दशा को भी अभिव्यंजित किया है। कवि ने अपने दोहे द्वारा ज्योतिष विषयक ज्ञान का प्राकट्य किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने 'श्लेष' अलंकार की अद्भुत संयोजना की है। भाषा की सामासिक पदावली और कल्पना के रम्य विस्तार से कवि ने जिस उदात्तीकृत भाव-चेतना का संस्पर्श किया है, वह विद्वानों के लिए बौद्धिक व्यायामशाला की तरह है। पहले बिहारी का दोहा दृष्टव्य है -

सनि कज्जल चख-झख लगन उपज्यो सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेसु सबु देहु।।[10]

इसी संदर्भ को जातक-संग्रह में इस तरह प्रस्तुत किया गया है -

तुलाकोदंडमीनस्थो लग्नस्थोअपि शनैश्चरः।
करोति भूपतेर्जन्म वंशे च नृपतिर्भवेत्।।[11]

आचार्य राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में आलोचक के लिए सहृदयता और निष्पक्षता को आवश्यक माना है। स्वामी, मित्र, मंत्री, शिष्य और आचार्य-ऐसा कौन-सा संबंध है, जो भावक का कवि के साथ नहीं होता है।

स्वामी मित्रं च मंत्री व शिष्य आचार्य एव च,
कवेर्भतति हि चित्रं किं हि तद्यन्न भावकः।[12]

अंग्रेजी में 'Pope's Essays on Criticism' के आधार पर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने समालोचक के लक्षण बताए हैं, जो अनुवाद की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं -

सकै दिखाय मित्र कौं जो तिहि दोष असंसै,
औ सहर्ष सत्रुहुँ के गुन कों भाषि प्रसंसै?
धारे रस अनुभव जथार्थ, पै नहिं इक अंगी,
ग्रंथनि कौ औ मनुष-प्रकृति कौ ज्ञान सुढंगी,
अति उदार आलाप, हृदय अभिमान-बिहीनौ,
औ मन सहित प्रमान प्रसंसा रुचि सौं भीनौ।
पहिले ऐसे रहे बिवेचक ऐसे सुचितमन,
आर्यवर्त में भये सुभग जुग में कतिपय जन।[13]

महीयसी महादेवी वर्मा ने 'सप्तपर्णा' काव्य-ग्रंथ में अनूदित काव्य-सर्जना के विधिक मानकों का संस्पर्श

कर आर्षवाणी का निरूपण किया है। कवि क्रांतदर्शी होकर लोक-हित की कामना को उद्‌गीरित करता है। देश-काल की सीमाओं को तोड़ते हुए कवि सभी दिशाओं में जयघोष करता है, ताकि मनुष्यता की भाव-परिधि को विस्तृत फलक पर निरूपित किया जा सके। यहाँ 'सामवेद' की पंक्तियाँ दी जा रही हैं -

परि प्रासिष्यदत् कविः
सिन्धोरूर्मावधिश्रितः
कारुं विभ्रत पुरुस्पृहम्।[14]

इस संदर्भ में महादेवी वर्मा की कारयित्री प्रतिभा का अनुवाद में वैशिष्ट्य देखिए -

लोक-हित-तंत्री संभाले
सिंधु-लहरों पर अधिश्रित
बह चला कवि क्रांतदर्शी
सब दिशाओं में अबाधित।[15]

उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में यह कहना समीचीन होगा कि साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञान-विज्ञान के नए आयाम जाने जा सकते हैं। कविवर 'रत्नाकर' जी ने 'समालोचनादर्श' में अपनी अनूदित काव्य-शैली का निरूपण कर सिद्‌ध किया है कि 'अनुवाद' से भी मूल ग्रंथ की महत्ता का दिग्दर्शन संभव है। कभी-कभी अनुवाद इतना उदात्तीकृत चेतना से भर हो जाता है कि उसमें मूल से भी अधिक सौंदर्य का भान हो जाता है। यह अनुवादक की ज्ञान-दक्षता पर निर्भर है कि वह उसका किस प्रकार उपयोग करता है। निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य के द्‌वारा जहाँ एक ओर अनुवाद की महत्ता सिद्‌ध हुई है, वहीं ज्ञान-विज्ञान को समझने-परखने का भी यथेष्ट उद्‌योग हुआ है।

संदर्भ सूची

1. रसगंगाधर काव्य माला, पंडितराज जगन्नाथ पृष्ठः 4
2. चिंतामणि भाग-1, आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. 'Preface to lyrical Ballads' Wordsworth
4. काव्यप्रकाश आचार्य मम्मट 1/4
5. भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा भाग-1, संपादकः डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
6. शृंगार सप्तशती
7. बिहारी रत्नाकर प्रणेता श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, राजनैतिक लोकभारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, मूल्य 60/-, द्‌वितीय लोकभारती संस्करण 2000 ई., पृष्ठ : 21
8. वही, पृष्ठ : 44
9. नरपति जयचर्या अध्याय-3, श्लोक-29
10. बिहारी रत्नाकर पृष्ठ : 25
11. जातक-संग्रह राजयोग-प्रकरण, श्लोक-13
12. काव्यमीमांसा, आचार्य राजशेखर
13. समालोचनादर्श रत्नाकर पहला भाग, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ : 47
14. साम., पूर्वाचित 5-10
15. सप्तपर्णा महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ : 87

– एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, सेठ पी. सी. बागला (पी. जी.) कालेज, हाथरस- 204101 (उत्तर प्रदेश)

❑❑❑

भारतीय साहित्यिक परंपरा में अनुवाद

डॉ. संध्या वात्स्यायन

अनुवाद एक प्रक्रिया है, एक रूपांतरण है। भाव का भाव में, शब्द का शब्द में। अंग्रेजी में अनुवाद शब्द 'ट्रांसलेशन' के लिए रूढ़ है। हालांकि इसका एक और अर्थ है-किसी के भाव या व्यवहार को समझना।[1] 'शब्दकल्पद्रुम' के अनुसार संस्कृत शब्द 'अनुवाद' 'अनु' अर्थात् पीछे तथा वद्(वाद) अर्थात् बोलना से व्युत्पन्न है। जिसका अर्थ है- निश्चित अर्थ बताने वाला वाक्य, पुनरुक्ति, किसी निश्चित अर्थ को फिर कहना, वाणी द्वारा व्यर्थ अधिकार जमाना।[2] 'शब्दकल्पद्रुम' में अनुवाद का यही अर्थ है। जिसका अर्थ है कि संस्कृत कोशों में अनुवाद का बहुप्रचलित अर्थ-किसी एक भाषा के कथन या वक्तव्य का किसी दूसरी भाषा में रूपांतरित करना या कहना।

अनुवाद भाषाओं के बीच संप्रेषण की एक प्रक्रिया है। अंग्रेजी में इसके लिए 'ट्रांसलेशन', फ्रेंच में 'ट्रडुक्शन', अरबी में 'तर्जुमा' आदि शब्द प्रचलित हैं। 'ट्रांसलेशन' शब्द लैटिन शब्द है जो 'ट्रांस+लेशन' शब्द से बना है जिसका अर्थ है, 'पार ले जाना'। संस्कृत में भाषांतर या रूपांतर के लिए 'छाया', 'टीका' तथा 'भाषा' आदि शब्द प्रचलित हैं। वास्तविक या रूढ़ अर्थ "किसी भाषा के प्रत्येक वाक्य को उसके प्रायः सभी पदों का अर्थ देते हुए अन्य भाषा में प्रस्तुत करना[3] ही अनुवाद का प्रचलित अर्थ है।" भारतीय परंपरा अनुवाद के शुरुआती रूप निःसंदेह भाष्य, टीका आदि में मिलती है। मूलतः आर्ष ग्रंथों की व्याख्या को 'भाष्य' कहा जाता है। भाष्य और टीका 'अवधारित' अर्थात् 'किसी निश्चित अर्थ को फिर से कहना' की प्रक्रिया की देन है। इस दृष्टि से भाष्य एवं टीका एक तरह के अनुवाद ही कहे जा सकते हैं। इसलिए टीका को क्लासिकल संस्कृत ग्रंथों की व्याख्या कहा जाता है।

भारतीय साहित्य परंपरा में अनुवाद का एक रूप 'पद-पाठ' तथा 'निरुक्ति' भी मिलता है। पद-पाठ का अर्थ है-संहिताबद्ध वेद मंत्रों के पदों को अलग-अलग करना। इसी आधार पर आगे चलकर ब्राह्मण ग्रंथों से निरुक्त ग्रंथों का पाठ तैयार होता है। अनुवाद के अन्य रूप निरुक्त में भी किसी एक शब्द के एक धातु या अनेक धातुओं के आधार पर नए अर्थ निर्धारित होते हैं। वेदों का सबसे पहला भाष्य ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है। वेदों के भाष्यकारों में सबसे पहला नाम यास्क का आता है। यास्क से लेकर सातवीं शती तक कई भाष्यकार हुए जिनमें प्रमुख हैं: स्कंदस्वामी, नारायण, उद्गीथ, उनके पश्चात् माधव भट्ट, वेंकटमाधव, धानुष्कयज्वा, आनंदतीर्थ आत्मानंद आदि जैसे कई भाष्यकारों ने ऋग्वेद का पूर्ण या आंशिक भाष्य किया। चौदहवीं शती में सायणाचार्य ने ऋग्वेद का भाष्य प्रस्तुत किया। आधुनिक युग के भाष्यकारों में श्रीमद् दयानंद सरस्वती (19वीं शती) का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति' के सिद्धांत का समर्थन किया।

व्याख्याकारों या भाष्यकारों की तरह ही टीकाकार अन्वय(गद्यक्रम) में दंडशंवय अथवा खंडन्वय पद्धति का आश्रय लेकर मूल पाठ का सरल अर्थ प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ-साथ वे व्याकरणशास्त्र, अंतरक्रियाओं, कामशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र का उद्धरण देते तथा काव्य शास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर काव्य सौष्ठव प्रस्तुत कर

उसके नियमों की ओर संकेत करते। भाष्य एवं टीकाओं के उदाहरणों के सामने रस विवेचन कर आप पाते हैं कि दोनों 'अनुवाद' के वर्तमान स्वीकार्य अर्थों में 'अनुवाद' नहीं कहे जा सकते। क्योंकि भाष्य अथवा टीका मूल भाषा में भी सरलार्थ प्रस्तुत करते हैं, किसी अन्य भाषा में नहीं।

भारत में, विशेषत: भारतीय साहित्य की परंपरा में अनुवाद की एक लंबी परंपरा रही है। वास्तविक अनुवाद का आंरभ तभी से हुआ जब से किसी भारतीय रचना का किसी अन्य बाहरी भाषा में अनुवाद हुआ हो। इस दृष्टि से किसी भारतीय साहित्यिक रचना का पहला अनुवाद छठी शती में खुसरो अनौशेखाँ (531-579) के शासन काल में हुआ।[4] अनुवादक थे- हकीम बुर्जोई और रचना थी-पंचतंत्र। यह अनुवाद पहलवी भाषा में किया गया। इसके पश्चात् पंचतंत्र का अरबी भाषा में 'कलिलह दियनह करटक दमनक' नाम से अनुवाद किया गया। जिसके अनुवादक थे- अब्दुल्ला इब्नल मोफ्फा।[5] सन् 1657 ई. में दारा शिकोह ने उपनिषदों का अनुवाद फारसी भाषा में किया।

आधुनिक युग ने अनुवाद के क्षेत्र में क्रांति ला दी। 'नवजागरण' तथा प्रिंटिग प्रेस ने इस क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन ला खड़ा किया। लगभग संपूर्ण वैदिक साहित्य, (वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद), पुराण-महाभारत, रामायण, प्रबंधकाव्य, गद्य काव्य, नाटक साहित्य के अतिरिक्त स्मृति ग्रंथ, चिकित्सा, विधि आदि से जुड़ी संस्कृत रचनाओं-ग्रंथों के अनुवाद अनेक विदेशी भाषाओं जैसे-जर्मन, फ्रैंच, अंग्रेजी, फारसी, चीनी, रूसी, सिंहली आदि में हुए। जैसे -फ्रीडिक रोज़न ने लैटिन में ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का अनुवाद किया। संपूर्ण ऋग्वेद का अनुवाद एस. एच. विल्सन और आर. टी. एच. ग्रिफिथ ने अंग्रेजी में किया। इसके अतिरिक्त एच. ग्रासमान, ए. लुडविग और एच. ओल्डन बर्ग ने जर्मन में तथा लांग्वा ने फ्रैंच में संपूर्ण ऋग्वेद का अनुवाद किया। मैक्समूलर, मैक्डोनल, विंटरनित्स जैसे विद्वानों ने ऋग्वेद के कई महत्त्वपूर्ण स्थलों का अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त शुक्ल यजुर्वेद का टी. एच. ग्रिफिथ ने अंग्रेजी भाषा में, कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता का अनुवाद कीथ ने, सामवेद तथा अथर्ववेद का अनुवाद क्रमश: जे. स्टीवेंसन तथा ह्विटनी और लैनमैन ने किया। इस प्रकार जर्मन भाषा में कई वैदिक साहित्य के अनुवाद किए गए।[6]

ब्राह्मण ग्रंथों का अनुवाद भी उन दिनों कई भाषाओं में किया गया। अंग्रेजी भाषा में इनका अनुवाद सबसे अधिक हुआ। अंग्रेजी भाषा में जे. ईल्गिंग ने शतपथ ब्राह्मण का, ऐतरेय ब्राह्मण तथा कौशीतकी ब्राह्मण का ए. बी. कीथ ने, ऐतरेय ब्राह्मण का मार्टिन हाग ने तथा पंचविश अथवा तांडव महाब्राह्मण का केलेंड ने अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। उपनिषदों में से लगभग ग्यारह उपनिषदों का अनुवाद जी. ए. जैकब ने अंग्रेजी भाषा में किया। जी. ए. जैकब ने 108 से 200 उपनषिदों में से उन्हीं ग्यारह उपनिषदों को चुना जिनका भाष्य शंकराचार्य ने प्रस्तुत किया था और कुल उपनिषदों में से यही ग्यारह उपनिषद सबसे ख्यात रहे। इनमें से 'ईशोपनिषद' का सबसे अधिक अनुवाद हुआ। यह खंड यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय है। पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त कई भारतीय विद्वानों ने उपनिषदों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया। जैसे- 'केनोपनिषद' का अंग्रेजी अनुवाद हिरियन्ना और वरदाचार्य ने किया। तैत्तरीयोपनिषद का महादेव शास्त्री ने, छांदोग्य उपनिषद का गंगानाथ झा ने तथा वैष्णवोपनिषद का टी. आर. श्री निवास आयंगर ने अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया।

माना जाता है कि अच्छा अनुवाद वही है जिसमें प्रत्येक वाक्य को उसके सभी पदों का अर्थ देते हुए अन्य भाषा में प्रस्तुत किया जाए। पाश्चात्य विद्वानों के साथ-साथ भारतीय अनुवादकों ने इसका पालन किया। ये शाब्दिक अनुवाद करते हुए अपनी ओर से कोई शब्द नहीं जोड़ते। आवश्यकता पड़ने पर कोष्ठक का सहारा लेते हैं। इसका अनुपालन प्राय: वैदिक सहित्य के अनुवाद के समय खूब किया गया। उदाहरण के तौर पर ऋग्वेद की इन ऋचाओं का अनुवाद देखिए, जिसे मैक्डोनल ने प्रस्तुत किया है-

अमि मीले पुरोहितं
यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्
यद्ङग् दाशुषे त्वम्
अग्ने भद्रं करिष्यसि
तवैत्तत्सत्यमंगिर:।। का अंग्रेजी अनुवाद है-

I Magni Agni The domestic Priest sacrifice,
Divine the Minsitrant of the treasure,

The invoker, best bestower of Just what good thou, O Agni Will do for the worshipper

That (purpose) of the comes true

O Angiras

(Translated by : Macdonell)

इस अनुवाद में मैकडोनल ने शाब्दिक अनुवाद का पालन करते हुए न तो अनावश्यक शब्द जोड़े, न व्याख्या की। आवश्यकता पड़ी तो कोष्ठक देकर अपनी बात कह दी।

उपनिषदों के पश्चात् भारतीय साहित्यिक परंपरा में सूत्र-साहित्य का स्थान आता है। इसके अंतर्गत 'पाणिनी शिक्षा' का अंग्रेजी अनुवाद मनमोहन घोष ने तथा 'निघण्टु-निरुक्त' का अनुवाद लक्ष्मणस्वरूप ने किया। प्रातिशाख्यों का भी अनुवाद कई भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने किया। ऋक्-प्रातिशाख्य का जर्मन भाषा में अनुवाद एफ. मैक्समूलर ने तथा अंग्रेजी में मंगलवेद शास्त्री ने। सामवेद के प्रातिशाख्य ऋक्तंत्र तथा अथर्वप्रातिशाख्य का अंग्रेजी अनुवाद सूर्यकांत ने किया। जी. पर्त्श ने जर्मन भाषा में ऋग्वेद के उपलेख सूत्र का अनुवाद किया। व्याकरण ग्रंथों में लघु-सिद्धांत कौमुदी का अंग्रेजी अनुवाद वी. वी. मिराशी ने तथा सिद्धांत कौमुदी का अनुवाद के. राय ने किया।[7]

रामायण, महाभारत तथा पुराणों का अनुवाद भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों साहित्यिक परंपरा में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। वाल्मीकि रामायण का पद्यबद्ध अंग्रेजी अनुवाद आर. टी. एच. ग्रीफिथ ने किया। लैटिन में श्लैग्ल ने, फ्रैंच में ए. रोसेल, इतालवी में जी. गोरेतियो, जर्मन में प्रथम कांड का जे. मनराड तथा कुछ अंशों का फे. रूकर्ट और भारतीय अनुवादकों में मन्मथनाथ ने अंग्रेजी में अनुवाद किया। गीता प्रेस ने अंग्रेजी में गद्यानुवाद छापा है। महाभारत का ग्यारह भागों में अंग्रेजी गद्य का अनुवाद प्रतापचंद्र राय ने किया। महाभारत के ही प्रख्यात अंश 'श्रीमद्भागवत गीता' का लगभग सभी विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। 'श्रीमद्भागवत' का अंग्रेजी में गद्यानुवाद जे. एम. सान्याल ने किया और उसके संक्षिप्त रूप का डॉ. वी. राघवन ने। 'मार्कंडेय पुराण' का एफ. ई. पर्जिटर ने तथा 'मत्स्य पुराण' अनुवाद अवध के एक ताल्लुकेदार ने किया। 'अग्निपुराण' तथा 'हरिवंश पुराण' का भी अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है।

इसके अतिरिक्त महाकाव्यों, नाटकों, गीतिकाव्यों का भी विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। कालिदास के 'मेघदूत' तथा 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का लगभग सारी भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी, जर्मन, फ्रैंच, इटालियन, स्वीडिश, रूसी, तिब्बती तथा चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का हिंदी में पहला अनुवाद राजा लक्ष्मण सिंह ने किया। उदाहरण देखिए-

कालिदास- यास्यत्यद्य शकुंतलेति हृदयं संस्पृष्टयुत्कण्ठया कंठः स्तम्भित वाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ता जडं दर्शनम्।

वैक्लव्य मम तवादीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गहिणः कथं नु तनयाविश्लेदुःखैर्नवैः।।

राजा लक्ष्मण सिंहः

आज शकुंतला जाएगी मन मेरो अकुलात,
रुकि आँसू गदगद गिरा, आँखिन कछु न लखात।
मो-से बनबासीन जने इतौ सतावत मोह,
तो गेही कैसे सहें दुहिता प्रथमं-बिछोह।।[8]

इसी परंपरा में महादेवी वर्मा ने भी कालिदास के द्वंद्व का अनुवाद किया-

आज विदा होगी शकुंतला, सोच हृदय आता है भर-भर
दृष्टि हुई धुँधली चिंता से, रूद्ध अश्रु से कंठ रुद्ध स्वर।
जब ममता से इतना विचलित व्यथित हुआ वनवासी का मन,
तब दुहिता विछोह नूतन से, पाते कितनी व्यथा गृहीजन।[9]

कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का उर्दू में अनुवाद विश्वेश्वर प्रसाद मुनव्वर ने किया तथा अंग्रेजी में एम. एस' विलियम्स ने। इनके अतिरिक्त 'किरातार्जुनीय', बुद्धचरित', 'रावणहो अथवा सेतबंध' (प्राकृत) का भी अंग्रेजी, जर्मन, फ्रैंच आदि भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। 'साहित्य दर्पण' का अनुवाद 'दि मिरर ऑफ कंपोजिशन' के नाम से हुआ।

हिंदी में कई रचनाकारों ने पुरानी रचनाओं को भावानुवाद के आधार पर नया विधान रचा। इन रचनाओं

में 'अमरूक शतक', 'आर्यासप्तशती', 'गाथासप्तशती' जैसी रचनाएँ कई रीतिकालीन कवियों के लिए प्रेरणास्त्रोत रहीं। बिहारी ने 'अमरूक शतक' तथा 'आर्यासप्तशती' के कुछेक पदों का भावानुवाद कर बिल्कुल नया रूप दिया। जैसे-

चिहुर-विसारण-तिर्यड्-नतकण्ठी विमुख वृत्तिरपि बाला।
आर्यासप्तशती त्वामियमंगुलि- कल्पित- कचावकाशा विलोकयति।।

कंजनयनी मज्जनु किए बैठी ब्यौरति बार।
कच अंगुरी बिच दीठि दै चितवति नंदकुमार।।[10]
(बिहारी सतसई)

अतः इस प्रकार उपरोक्त उदाहरणों एवं अनुवाद की वृहद् परंपरा को देखते हुए भारतीय साहित्यिक परंपरा में अनुवाद की महत्ता को समझा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं. डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-14

2. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं- डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-14

3. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं- डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-14

4. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं- डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-17

5. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं- डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-17

6. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं- डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-18

7. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं- डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-19

8. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं- डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-21

9. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं- डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-22

10. अनुवाद विज्ञान, सिद्धांत और अनुप्रयोग, सं. डॉ. नगेंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सं.1993, पृ.-24

– एसोसिएट प्रोफेसर, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

अनुवाद के क्षेत्र एवं आयाम

डॉ. अर्चना झा

भाषा एवं साहित्य संवाद और संप्रेषण की वजह से जीवंत होकर एक कंठ से दूसरे कंठ, एक समाज से दूसरे समाज में देश से लेकर विदेश तक प्रवाहमान हो उठे तब यह शाश्वत और ऊर्जित है जो पुनरुत्पादन की संभावना से परिपूर्ण है। साहित्यकार अपनी ऊर्जा एवं चेतना के स्पर्श से मिथक, बिंब, प्रतीक, उपमानों के प्रयोग से संकेत को भी प्रांजल, लालित्यपूर्ण भाषा का रूप प्रदान कर उसमें नवीन अर्थबोध, नवल सौंदर्य प्रवाहित करता है। साहित्य की भाषा केवल मस्तिष्क या प्रयोजन से नहीं बल्कि हृदय से जुड़ी होती है तभी तो वाल्मीकि एक सामान्य सी घटना को शब्दों का स्पर्श देते हैं और संपूर्ण काव्य प्रवाहमान हो उठता है। विद्यापति के श्रृंगारिक पद हों या कबीर का खंडन-मंडन या जयदेव की पदावली, वड्र्सवर्थ, शैली, कीट्स या पंत का सृजन संसार या शेक्सपियर, प्रेमचंद, गोर्की या राहुल सांस्कृत्यायन या कालिदास का भावप्रवण ललित सौंदर्य हो ये सब प्रवाहमान होकर विभिन्न अर्थबोध, सौंदर्यबोध, चेतना को रचना में परिभाषित करते हुए भाषा की दीवार को तोड़ हृदय और मानस को छूते हैं तो 'अनुवाद' की आवश्यकता होती है।

अनुवाद वस्तुतः 'परकाया प्रदेश' की प्रक्रिया है, जिसमें हम दो चरणों से गुजरते हैं- एक तो उसके शब्दिक अर्थ दूसरे उसके भाषिक संरचना में छिपे वैयक्तिक अर्थ से। हैंकोक के अनुसार अनुवाद का अर्थ द्विमुख होता है- प्रथमतः मूलार्थ का ठीक-ठाक अनुवाद दूसरे मूल की शैलीगत विशेषताओं को अनूदित सामग्री में उतारना। जिस तरह जीवन का प्रत्येक क्षण साहित्य है उसी प्रकार सृजन का प्रत्येक पल अनुवाद है। सृजन के दौरान हम जो कुछ सोचते हैं उसे शब्दों का रूप देते हैं। कई बार हमारी हृदयगत अनुभूति को मस्तिष्क उसी रूप में ढाल नहीं पाता है। यह 'स्वकाया प्रवेश' की प्रक्रिया है। अनुवाद की एक मूल आवश्यकता यह भी है कि मूल स्वरूप को पूरी तरह बदले नहीं। यह प्रयत्न लाघव न हो, अर्थ संकोच, अर्थ विस्तार, अर्थादेश, भावावेश और अर्थ की अस्पष्टता से मुक्त हो। क्योंकि 'अनुवाद कथनतः कथ्यतः निकटतम सहज प्रतिप्रतीकन की प्रक्रिया है।'

अनुवाद एक तरह से 'पुनःकथन' है, इस परिप्रेक्ष्य में जब हम इस पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परंपरा हैं जहाँ शिष्य गुरु के वचनों को दुहराते थे यह 'अनुकथन' भी एक तरह का अनुवाद है। कबीर, जिन्हें निरक्षर माना गया है। उनके 'कथन' भी अनुकथन हैं। पौराणिक आख्यायन महाभारत में संजय भी पुनर्पाठ करते हैं। जिस घटना को वे अपनी आँखों से देखते हैं, उसे धृतराष्ट्र को सुनाते हैं। 'अनुवाद' वस्तुतः सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक विरासत का आदान-प्रदान है। कालिदास के 'अभिज्ञान शांकुतलम' का अनुवाद अंग्रेजी में किया जाता है, वह जर्मन में भी अनुवादित होता है। रांगेय राघव शेक्सपियर के दस नाटकों का अनुवाद हिंदी में करते हैं। 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद 'वेनिस के

सौदागर' के रूप में होता है। भारत से गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद के ज्ञान का अनुवाद अरब से होते हुए रोम तक पहुँचा। भारत में संस्कृत के धर्मग्रंथों का अनुवाद, वेद, उपनिषद एवं पौराणिक आख्यानों का अनुवाद भारत की लगभग सभी भाषाओं में हुआ है। विदेशों में भी जहाँ भारतीय भाषा अध्ययन केंद्र हैं। वहाँ प्रेमचंद, निराला, कबीर, तुलसी और सूर से लेकर पंतजलि, पाणिनी, कौटिल्य, राहुल सांस्कृत्यायन की कृति अनुवादित हैं, हमारे बौद्ध ग्रंथ जो पाली भाषा में थे उनका अनुवाद तिब्बती, चीनी आदि भाषाओं में हुआ। सर, विल्यिम जोंस ने संस्कृत के लिए एक नई भूमि तैयार की रॉयल एशियाटिक सोसायटी के रूप में। भाषिक अभिव्यक्ति, सृजन का यह संसार जितना प्रांजल और विस्तृत होता गया अनुवाद भी "एक भाषा में अभिव्यक्त विचारों या भावों को दूसरी भाषा में रूपांतरित करना भर नहीं रह गया। आज यह केवल भाषिक अनुवाद न रहकर भिन्न कालखंड संस्कृति, सभ्यता, साहित्य के परस्पर आदान-प्रदान का एक सेतु बन गया है जो सरहद, सांस्कृतिक सीमा से इतर एक संपर्क और संप्रेक्षण सेतु बन रहा है।"

अनुवाद एक तरह से 'एक्सरे' है जो कई सोपानों से गुजरता है-

पाठ → अध्ययन विश्लेषण - शिल्पगत/भावगत अभिव्यंजना बोध→ पुनः सृजन।

यह एक्सरे ध्वनि और उच्चारण के स्तर से होते हुए, लिपि रूप-स्तर पर विश्लेषित होता अर्थ स्तर पर विचारणीय बनकर प्रयुक्ति स्तर पर अभिव्यक्त होकर पुनः सृजित होता है।

आज के समय में अनुवाद केवल एक आवश्यकता ही नहीं 'अर्थोपार्जन' का एक साधन भी है। इस संदर्भ में जब अनुवाद के प्रकारों पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि, अनुवाद के मूलतः दो रूप हैं-

1. साहित्यिक अनुवाद
2. साहित्येतर अनुवाद

अनुवाद का संबंध व्यक्ति और समाज से है। यही भाव, विचार की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है जब साहित्यिक अनुवाद किया जाता है तो अनुवादक कृति की आत्मा को बसा लेता है। उसके बाह्य आकार, रूप के साथ-साथ अंतर से भी एकाकार होता है। और फिर लक्ष्य भाषा में पुनर्रचना करता है।

मूल पाठ → विश्लेषण - भाव विचार बोध → एकात्मक → पुनःसृजन।

इसके तीन प्रमुख अंग हैं-

स्रोत भाषा → विषय → लक्ष्य भाषा

यह प्रक्रिया बोध और अभिव्यक्ति पर निर्भर होती है क्योंकि किसी भी कृति में हम 'रूप' या शैली तत्व को अलग नहीं कर सकते। 'फिट्जराल्ड' के अनुसार अनुवाद शब्द-प्रतिशब्द नहीं होना चाहिए। अनुवादक को अपनी रुचि के अनुसार अनूदित कृति के रूप में पुनः सृजन करना चाहिए। साहित्यिक अनुवाद में जीवतंता प्रांजलता एवं मूल कृति के साथ तादातम्य होना चाहिए। साहित्य की भाषा सृजनात्मक होती है जो जीवन स्पंदन से संबद्ध है जहाँ यह गंध, स्पर्श, ध्वनि, चेतना से जुड़ी होती है जो हमारी इंद्रिय को जगाकर भाव और रस से जोड़ती है। ऐसे में 'काव्यानुवाद' में हम कई स्तर पर कठिनाईयों से जूझते हैं। क्योंकि अनुवाद में 'काव्य' के छंद, प्रतीक, बिंबविधान, स्पर्श, लय का अनुवाद नहीं कर पाते हैं। इसके लिए आवश्यक है 'पुनःसृजन' पर ध्यान दिया जाए। निराला की 'राम की शक्ति पूजा', मुक्ति-बोध की 'ब्रह्मराक्षस', नरेश मेहता की 'संशय की एक रात', मोहन राकेश की 'लहरों के राजहंस' ये सभी लालित्यपूर्ण काव्य नाटक हैं जिनका अनुवाद असंभव नहीं पर मुश्किल है। तत्कालीन परिवेश में 'साहित्येतर अनुवाद' का प्रयोग बढ़ा है।

1. राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वैचारिक आदान-प्रदान के क्षेत्र में
2. वाणिज्य एवं बैंकिंग के क्षेत्र में
3. विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में

आज प्रत्येक राष्ट्र विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में विकास कर रहा है परंतु अपने शोधकार्य अपनी भाषा में कर रहे हैं पर इसका अनुवाद अन्य भाषाओं में हो रहा है। अनुवाद द्वारा अन्य भाषा में जानकारी साझा की जाती है।

धर्म- तत्कालीन परिवेश में विश्व की सभी भाषाओं में धर्मग्रंथों का अनुवाद हो रहा है। मार्टिन लूथर ने बाइबिल का अनुवाद अरबी भाषा में किया। भारतीय उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया गया।

संचार माध्यम के क्षेत्र में- संचार के क्षेत्र में अनुवाद ने एक क्रांति ला दी है। अनुवाद एवं संचार के माध्यम से समाज-सभ्यता-संस्कृति आदि का अंतरण, आदान-प्रदान एक विशिष्ट प्रक्रिया में होने लगा है जो जन-जन तक पहुँच रहा है। हमारे देश में इंटरनेट, अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, टी.वी. सभी जनसंचार के विविध रूप हैं। इन सभी क्षेत्रों में अनुवाद की महत्ता सर्वोपरि है। संवाददाता हो या संपादक या विज्ञापन की दुनिया इन्हें किसी न किसी रूप में अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है। हमारे देश में प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया द्वारा 'भाषा' नाम से तथा UNI द्वारा यूनिवार्ता के नाम से हिंदी समाचार का आदान-प्रदान अनुवाद का सहारा लेकर ही किया जाता हैं। बी. बी. सी, रायटर जैसी अंतरराष्ट्रीय न्यूज एजेंसियाँ 'अनुवाद' के द्वारा ही अपनी सामग्री घर-घर तक पहुँचाती हैं।

इनसे इतर अंग्रेजी से हिंदी में कितनी फिल्में अनूदित (डबिंग) हो चुकी हैं। जनसंचार की तरह अनुवाद भी सर्वव्यापी है।

प्रशासन एवं न्यायालय में अनुवाद - वर्तमान व्यवस्था में प्रशासन एवं न्यायालय के क्षेत्र में अनुवाद की आवश्यकता सर्वविदित है क्योंकि भारत एक बहुभाषी विकासशील देश है। विश्व के प्रत्येक राष्ट्र और प्रदेशों के बीच 'संप्रेषण सेतु' का काम अनुवाद करता है। आज विश्व में कई व्यावसायिक और गैर व्यावसायिक संस्थाएँ वाणिज्य के क्षेत्र में अनुवाद का कार्य कर रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था यूनेस्को विश्व की भाषा में अनुवाद का कार्य करती है। आजादी के बाद धीरे-धीरे अंग्रेजी के स्थानापन्न में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। वर्तमान समय में अनुवाद एक ऐसा साधन बन रहा है, जिसके जरिए जनता और प्रशासन के बीच एक संप्रेषण सौहादिपूर्ण बन रहा है।

सांस्कृतिक, कला एवं सभ्यता के क्षेत्र में अनुवाद- आज का परिवेश एक ग्लोबल विलेज के रूप में ढलता जा रहा है। संपूर्ण विश्व एक दूसरे की साहित्य, संस्कृतिक कला को जानने समझने का आग्रही है। यह आग्रह अनुवाद के सहारे परिपूर्ण किया जाता है। विश्व की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का आदान-प्रदान अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाया। ग्रीक के बहुआयामी चिंतन को रोम ने अनुवाद के माध्यम से आत्मसात किया। ग्रीक महाकवि 'होमर' की रचना इलियट का अनुवाद जार्ज चापमैन ने किया। उमर खैयाम की रूबाइयों के अनुवाद ने तो धूम ही मचा दी। रवींद्र नाथ टैगोर ने कबीर के सौ पदों का अंग्रेजी अनुवाद कर कबीर के रहस्यवाद को योरोपीय देशों में फैलाया।

इन सबसे इतर साहित्येतर अनुवाद की भाषा एक आयामी, पारदर्शी होने के साथ-साथ अभिधात्मक होती है जिसका संबंध मस्तिष्क से है। अनुवाद के विभिन्न क्षेत्रों के अलावा प्रकृति के आधार पर अनुवाद के कई प्रकार हैं।

1. **शब्दानुवाद**- शब्दशः अनुवाद शब्दानुवाद कहलाता है, परंतु इस तरह के अनुवाद में अभिव्यक्ति और अर्थ के स्तर पर कई बार भ्रामक स्थिति उत्पन्न होती है। इसलिए आजकल यह प्रचलन में नहीं है साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्रों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों के अनुवाद में यह उपयोगी है।

भावानुवाद- इस तरह के अनुवाद में कृति में निहित भाव एवं विचार को आत्मसात कर अनुवाद किया जाता है। जिसमें कथ्य का प्रतिपाद्य संप्रेषित होता है उसकी संवेदना की भावाभिव्यंजना, सौंदर्य एवं लालित्य का अनुवाद नहीं हो पाता है। उदाहरण अगर हम 'उसने कहा था' कहानी का अनुवाद करते तो इसकी अंतरात्मा नष्ट होने की संभावना होगी।

व्याख्यानुवाद- धार्मिक पुस्तकों के अनुवाद में व्याख्यानुवाद की आवश्यकता होती है। काव्यशास्त्र, दर्शन, आयुर्वेद आदि ग्रंथों के भाष्य इसी के अंतर्गत लिखे जाते हैं। रामायण, महाभारत, पुराण, पंचतंत्र, चाणक्य नीति आदि के व्याख्यानुवाद हैं।

सारानुवाद- युगीन परिवेश में सारानुवाद का विशेष महत्व है क्योंकि संक्षिप्तता, सहजता, सरलता प्रामाणिकता इस तरह के अनुवाद के तत्व हैं। राजनैतिक बहस, वार्ता, साक्षात्कार, प्रतिवेदन के सार को अनुवादित किया जाता है। विधान मंडल की चर्चा, न्यायालय की बहस जिसमें कथ्य को पूर्णतः सुरक्षित कर अनुवाद किया जाता है।

विधा परिवर्तन- इस तरह के अनुवाद में कृतियों की विधा परिवर्तित कर अर्थात् उपन्यास को नाट्य रूप

में तथा कहानी नाटक उपन्यास आदि का आज सीरियल, फिल्म के रूप में परिवर्तन हो रहा है।

आशु अनुवाद- इस अनुवाद में दुभाषिए की आवश्यकता होती है जो राजनीतिज्ञ, खिलाड़ी वैज्ञानिक आदि के बीच संप्रेषण सेतु का कार्य करता है। आज के परिवेश में आशु अनुवादक तथा दुभाषिए का महत्व बढ़ता जा रहा है।

भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं बल्कि समाज और राष्ट्र की अस्मिता है। भाषा का संरचनात्मक रूप, स्वरूप उसके प्रयोग के आधार पर बनता है।

बोली- विभाषा- राजभाषा/राष्ट्रभाषा

राजभाषा- यह तकनीकी रूप भारत के संविधान में सरकारी काम-काज के लिए प्रयोग किया गया। राजभाषा हमेशा प्रशासनिक कार्य-क्षेत्र से जुड़ी होती है। स्वंतत्रता के पश्चात् संघ की राजभाषा के रूप में देवनागरी में लिखित हिंदी भाषा को मान्यता मिली। 14 सितंबर 1949 को डॉ. राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में गठित समिति के द्वारा राजभाषा का क्षेत्र विधि, न्याय, प्रशासन के अतिरिक्त वाणिज्य बैंक, रेलवे आदि जगहों पर भी है।

आचार्य देवेंद्र शर्मा के अनुसार-राजभाषा का प्रयोग मुख्यत: चार क्षेत्रों में अभिप्रेत है- शासन, विधि, न्यायपालिका और कार्यपालिका। इन चारों में जिस भाषा का प्रयोग हो उसे राजभाषा कहेंगे। राजभाषा का यही अभिप्राय और उपयोग है।

कार्यालयी साहित्य का अनुवाद मुख्यत: कार्यालयी अनुवाद है जो तकनीकी एवं सूचना प्रधान होता है। यहाँ अनुवादक तंत्र का एक अंग होता है इसलिए वह तटस्थ निर्वेयक्तिक होता है।

कार्यालयी अनुवाद की एक समस्या है कि पारिभाषिक शब्दावली में हिंदी के शब्द तो बन गए हैं। परंतु इन शब्दों के संदर्भ या परिभाषा कोश नहीं होने की वजह से जटिल और दुरूह हो जाते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि अनूदित सामग्री का मूल्यांकन किसी विशेषज्ञ के द्वारा हो।

कार्यालयी अनुवाद तकनीकी है जिसमें 'वाक्य संरचना' स्थापित होती है और पारिभाषिक शब्दावली के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसके हर शब्द में 'अर्थ' एक विशेष प्रयोजन के लिए होता है।

युगीन परिवेश में अनुवाद केवल साधन नहीं बल्कि साध्य और अर्थोपार्जन से लेकर सरहद की सीमा लांघते हुए संप्रेषण का सशक्त साधन बन गया है। आज यह साहित्य, संस्कृति, कला, शिक्षा, विज्ञान, आविष्कार, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय सरोकारों के आदान- प्रदान का एक सशक्त माध्यम है जिसकी वजह से विश्व आज ग्लोबल समाज बन रहा है। ऐसे में अनुवादक का दायित्व हो जाता है कि वस्तु निष्ठता, तथ्यात्मकता, प्रामाणिकता का ध्यान रखे, पक्षपात, दुराग्रह एवं भ्रम से बचे। भाषिक संरचना, शब्दावली अभिव्यंजना, अभिव्यक्ति लक्ष्य भाषा के अनुरूप हो एवं स्रोत भाषा के निकटतम हो। किसी विद्वान ने कहा है - "प्रत्येक भाषा का एक सांस्कृतिक परिवेश होता है जिसका निर्माण परंपरा इतिहास, नृतत्व विज्ञान एवं भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से होता है।"

युगीन परिवेश में अनुवाद एक सहज प्रक्रिया के रूप में जीवन के प्रत्येक आयाम से संपृक्त हो रहा है। यही वजह है कि आज हिंदी भाषा केवल साहित्य पठन-पाठन नहीं बल्कि कार्यालयों के सीमित सांचे से निकलकर जनसंचार, उपभोक्तावादी संस्कृति, बाजार विपणन से गुजरती, ज्ञान-विज्ञान की दुनिया में पैठ बनाती, जनता से लेकर 'ब्यूरोक्रेट' तक की आवश्यकता बन गई है ।

– विभागाध्यक्ष - हिंदी विभाग, सेंट एन्स कॉलेज फॉर वुमन, मेंहदीपटनम, हैदराबाद

❑❑❑

साहित्येतर साहित्य में अनुवाद और हिंदी....

अशोक मनोरम

हिंदी के अंतरराष्ट्रीय भाषा-निर्माण यज्ञ में आहुति तो सभी ने दी है- क्या हिंदी भाषी और क्या हिंदीतर। कुछ विद्वान जो अहिंदीभाषी हिंदी-लेखकों की श्रेणी में भी अपना स्थान अल्पतम दिखा रहें हैं। इसका एक मात्र कारण संभवत: यह रहा हो कि इनकी मातृभाषा हिंदी ही रही शायद यही कारण रहा कि हिंदी क्षेत्रों में कुछ स्थानों से प्रदेय सौहार्द-सम्मान से भी वे वंचित ही रहें। इन अचर्चित हिंदी-सेवकों का उल्लेख हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहास में भी प्राय: नहीं हो सका है।

आर्य समाजी विद्वान के रूप में सुचर्चित पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय भी हिंदीतर विषय के शिक्षक और माध्यमिक विद्यालय के प्राचार्य रहे; लेकिन वैदिक साहित्य के अंतर्गत अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथों- 'ऐतेरय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण के मानक हिंदी अनुवाद, हिंदी पाठकों के लिए किया।

हिंदी अचर्चित इस श्रेणी में प्रथमत: उल्लेख हैं- पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र, जिन्होंने लगभग सौ वर्ष पूर्व हिंदी में संस्कृत के पुराणों, व्याकरण ग्रंथों तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के अपने द्वारा किए अनुवाद प्रकाशित कराए थे। मिश्र जी व्यवसाय से कथावाचक तथा धर्म-प्रचारक थे; लेकिन बहुसंख्यक हिंदी पाठकों को उनके द्वारा किए अनुवादों के माध्यम से संस्कृत के धर्मग्रंथों एवं पुराणों को जानने-समझने का अवसर मिला। मुंबई के निर्णय सागर प्रेस ने मिश्रजी को कभी चैन से बैठने ही नहीं दिया। यह सर्वविदित है कि उन दिनों अनुवादकों को प्राप्त अत्यल्प पारिश्रमिक की राशि आज उल्लेखनीय प्रतीत नहीं होती है।

इस श्रेणी में एक और नाम आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का है, जो ड्रेनिंग कॉलेज में अध्यापक तो शिक्षा शास्त्र के थे, परंतु इन्होंने भी संपूर्ण कालिदास ग्रंथावली का हिंदी अनुवाद करके असंस्कृत पाठकों को कालिदास की काव्य-प्रतिभा के वैभव का स्वाद चखाया। पं. ज्वाला प्रसाद के 'समीक्षाशास्त्र' और 'नाट्यशास्त्र' विराट कलेवर वाले हिंदी ग्रंथ भी उल्लेखनीय हैं। उनके उपयुक्त ग्रंथों के प्रणयन का समय 1935 के आस-पास प्रारंभ होता है।

उस काल के दौरान वैदिक वाङ्मय के अंतर्गत ही पूरे अथर्ववेद का हिंदी-अनुवाद अनेक खंडों में प्रस्तुत करने का श्रेय क्षेमकरण दास त्रिवेदी को है- त्रिवेदी जी भले जन्मना खत्री थे, परंतु तीन वेदों के अध्येता और अनुवादक होने के कारण उन्होंने अपने नाम में 'त्रिवेदी' जोड़ लिया था।

वैदिक वाङ्मय के विद्वानों और सहृदय-जनों के हृदय में हमेशा भारतीय भाषा और साहित्य के उन्नयन की परिकल्पना और इसके विकास हेतु कुछ कर गुजरने की संकल्प शक्ति ही हमेशा दिखी। इसके प्रेरणास्रोत बने महर्षि दयानंद सरस्वती...। इन्होंने गुजराती होकर भी अपने अधिकांश ग्रंथों का प्रणयन हिंदी में ही किया। हिंदी के इसी प्रसंग में वेदमूर्ति पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का नाम भी श्रद्धा से उल्लेखनीय है, जिन्होंने चारों वेदों की विस्तृत हिंदी व्याख्याएँ की।

युग-निर्माण-योजना के संस्थापक आचार्य श्रीराम शर्मा ने भी वेदों और स्मृतियों के अनुवाद सर्वसाधारण के लिए हिंदी में प्रस्तुत किए। जनसामान्य को सदाचार की प्रेरणा देने वाले विशाल-साहित्य की भी रचना इन्होंने हिंदी में की। स्वामी हरिश्चंद्र सरस्वती (करपात्री) जी ने 'वेदार्थ-पराजित' 'रामायण मीमांसा' तथा 'मार्क्सवाद और रामराज्य' संज्ञक विशालकाय विचारपरक ग्रंथ हिंदी में प्रस्तुत किए। 'कल्याण' के संस्थापक-संपादक स्व. हनुमान प्रसाद पोद्दारजी की प्रेरणा से गीताप्रेस की धार्मिक ग्रंथ प्रकाशन-योजना से जुड़कर अनेक संस्कृत विद्वानों ने अत्यंत महत्वपूर्ण हिंदी सेवा की।

गीता-प्रेस के द्वारा प्रकाशित 'वाल्मीकीय रामायण' के हिंदी अनुवाद के रूप में यों तो इस रामायण पर किसी का नाम नहीं छपा है, फिर भी इसकी भूमिका के अंत में छपे नाम से यह अनुमान स्वभावत: होता है कि इसका श्रेय पं. जानकी नाथ शर्मा को है। 'कल्याण' के विशेषांकों के रूप में छपे अनेक पुराणों के अनुवाद का श्रेय भी संभवत इन्हीं दोनों को है।

गीता-प्रेस से ही प्रकाशित 'विष्णु पुराण' के अनुवादक मुनिलाल गुप्त हैं। ये सभी अनुवाद अत्यंत परिष्कृत, प्रांजल एवं सुबोध हिंदी में हैं। इनकी शैली में संस्कृतज्ञों का पंडिताऊपन न होकर मानक हिंदी की रसमयता है, जो पाठक को ऊबने नहीं देती है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल मूलत: प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्व के विश्वविख्यात् पंडित थे; लेकिन 'वेद-रश्मि', 'गीता-नवनीत', 'भारत सावित्री' तथा जायसी कृत 'पद्मावत' काव्य की हिंदी टीका प्रभृति-ग्रंथ उनकी उत्कृष्ट हिंदी-सेवा के प्रतीक हैं। अत्यंत कठिन विषय को सरल बनाकर प्रस्तुत करने में उन्हें नैपुण्य प्राप्त था।

संस्कृत के परिनिष्ठित काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की हिंदी में सर्वप्रथम अवतारणा का विशेष श्रेय पं. हरिमंगल मिश्र, आचार्य विश्वेश्वर सिद्धांत शिरोमणि तथा डॉ. सत्यव्रत सिंह सदृश संस्कृत - मनीषियों को जाता है। इन्होंने 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश' तथा 'साहित्य दर्पण' जैसे आकर शास्त्रीय ग्रंथों के प्रामाणिक हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किए। हिंदी-विद्वानों की पुरानी पीढ़ी को छोड़ कर अधिकांश वर्तमान हिंदी प्राध्यापकों और छात्रों ने इन्हीं अनुवादों की सहायता से पारंपरिक काव्यशास्त्र का ज्ञान अर्जित किया है। कला अथवा सौंदर्यशास्त्र की प्राच्य और पाश्चात्य परंपरा को हिंदी में प्रामाणिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है- 'स्वतंत्र कलाशास्त्र' (दो भागों में) (स्व.) डॉ. कांतिचंद्र पांडेय ने।

हिंदी-सेवा के संदर्भ में उन विद्वानों का योगदान भी अविस्मरणीय है, जिन्होंने विदेश में रहते हुए तथा अपनी जीविका विषयक सारा कार्य-कलाप विदेशी भाषाओं में करते हुए भी हिंदी भाषा और साहित्य को अनुवाद या कोश-रचना के माध्यम से विदेशी पाठकों तक पहुँचाया। इस संदर्भ में निम्न उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं।

95 वर्षीय डॉ. जगवंश किशोर बलवीर, जिन्होंने संस्कृत की उच्चशिक्षा प्राप्त कर पेरिस में अंतरराष्ट्रीय लोक सेवक के रूप में यूनेस्को में नौकरी करते हुए 'कामायनी' तथा अनेक हिंदी-कृतियों का फ्रांसीसी में अनुवाद किया और अपनी फ्रांसीसी पत्नी निकोल के साथ मिलकर 'बृहद हिंदी फ्रेंच कोश' तथा 'फ्रेंच हिंदी कोश' का निर्माण करने के साथ फ्रांसीसी साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों को भी हिंदी में अनूदित कर उनसे हिंदी पाठकों को परिचित कराया। ऐसे हिंदी-सेवकों की संख्या बहुत बड़ी है, जिनकी जानकारी के लिए अभी तक हिंदी में न कोई कोश है और न इतिहास....।।

विदेशों में भारत की हिंदी

मारीशस: मारीशस हिंदी बहुल देश है। आबादी में 69% लोगों की मातृभाषा हिंदी है। 1975 तथा गतवर्ष विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन मारीशस में किया गया था।

सूरीनाम

(1) सूरीनाम विश्व का तीसरा देश है। वहाँ प्रवासी भारतीयों के कारण हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ।

(2) सूरीनाम में अधिकांश विश्वविद्यालयों में हिंदी एक विषय के रूप मं पढ़ाई जाती है, इसका श्रेय गर्वनर लोहमान को जाता हैं।

(3) सूरीनाम के हिंदी सेवक हैं शीतलाप्रसाद। 1910 में ये सूरीनाम प्रवासी संस्था के पहले अध्यक्ष बनें और हिंदी प्रसार-प्रचार के कार्य को गति दी।

(4) श्री महात्मासिंह का जन्म सूरीनाम में हुआ। उन्होंने हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के कार्य में अपना जीवन समर्पित कर दिया। इन्होंने 1910 में सातवें अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का आयोजन किया।

भारत के पड़ोंसी देश

भारत के पड़ोंसी देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार काफी मात्रा में है। पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, म्याँमार, श्रीलंका में हिंदी का प्रचलन महत्वपूर्ण हैं।

एशियाई देश

इंडोनेशिया, मलेशिया, थाइलैंड, सिंगापुर, कोरिया, एशियाई देशों में हिंदी पर्यटन, व्यवसाय और संस्कृति के निकट समझी जाती हैं।

जापान एक हिंदी प्रेमी देश के रूप में हमारे सामने आता हैं। जापान आते रहतें हैं। भारतीय संस्कृति, बौद्ध धर्मो के वे अध्येता हैं।

– आर. जेड-31, ब्लॉक-X, न्यू रौशनपुरा, नजफगढ़, रिसाल सिंह मार्ग,
नई दिल्ली-110043

❑❑❑

वर्तमान तकनीकी और अनुवाद

डॉ. नितीन कुंभार

आज जब वैश्वीकरण की अवधारणा उत्तरोत्तर बलवती होती जा रही है। सूचना प्रौद्योगिकी ने व्यक्ति के दैनंदिन जीवन को एक दूसरे के निकट लाकर खड़ा कर दिया है। क्षितिज तक फैली दूरियाँ सिमट गई हैं। ऐसे में अनुवाद और अनुवादक की महिमा एवं उपयोगिता पर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। अनुवाद वह साधन है जो हमें भौगोलिक सीमाओं के उस पार ले जाकर दूसरी दुनिया के ज्ञान विज्ञान/कला संस्कृति साहित्य की शिक्षा की क्षमता से परिचित कराता है। दूसरे शब्दों में, दुनिया में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में हो रही प्रगति या अन्य गतिविधियों का परिचय हमें अनुवाद के माध्यम से मिल पाता है।

एक भाषायी और सांस्कृतिक परिवेश में मनुष्य का जो भी रागात्मक अनुभव है उसकी साझेदारी दूसरे प्रदेश एवं समाज से करे बिना इस रागात्मक संप्रेषण को विश्व का नीड़ बनाने की कल्पना पूरी नहीं हो सकती। इसके लिए अनुवाद का महत्व जितना आज है उतना पहले कभी नहीं रहा होगा।

दैनिक जीवन से संबंधित विविध क्षेत्रों में भाषा व्यवहार होता है अर्थात् मानव जीवन से संबंधित कोई क्षेत्र भाषा से अछूता नहीं रहा है। वैसे तो पशु-पक्षियों की भी अपनी भाषा होती है जिसे समझने के लिए मनुष्य असमर्थ है। परंतु अध्ययन का विषय मानव भाषा है। शिक्षा, वाणिज्य, उद्योग, प्रशासन, जनसंचार के माध्यम आदि समस्त क्षेत्रों में विचारों का आदान-प्रदान भाषा के माध्यम से ही होता है।

इन सभी क्षेत्रों में भाषा के साथ उनके अनूदित स्वरूप की भी जरूरत होती है। अतः पूरे संसार में बहुत सी भाषाएँ हैं। सभी लोग अपने देश की भाषा और मातृभाषा भली-भाँति जानते हैं परंतु किसी अन्य देश की भाषा सीखनी पड़ती है। आज का युग विज्ञान का युग है। आधुनिक युग में विज्ञान तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र पर अंतरराष्ट्रीय संपर्क एवं सहयोग लिया जा रहा है। जोकि इस क्षेत्र में अनुवाद की विशेषता प्रासंगिकता एवं अनिवार्यता प्रमाणित कर रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में कुछ देश अत्याधिक प्रगति कर रहे हैं। वह निरंतर अपने विकास की गति तेज बनाना चाहते हैं। वैसे प्रत्येक देश विज्ञान तकनीकी और प्रौद्योगिकी के मोह में बँधा अधिकाधिक उन्नति करना चाहता है और वैज्ञानिक उन्नति के अभाव से स्वयं को हीन समझता है।

एशिया में सबसे बड़े भौगोलिक क्षेत्र वाले भारत देश के लिए प्रौद्योगिकी तकनीकी तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगतिशील होना जरूरी है। भारत विभिन्नताओं का देश है यहाँ कई विभिन्न भाषाओं के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव हुआ है।

सत्य तो यह है कि विज्ञान तकनीकी और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र के विकास में सभी देशों का योगदान रहा है। पुराने समय में भारत ने वैज्ञानिक तथ्यों के प्रकाशन में नेतृत्व किया था। संख्याएँ और दशमलव प्रणाली के आविष्कार के रूप में भारत ने अरब का गणित में पथ-प्रदर्शन किया। वैज्ञानिक तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी साहित्य का प्रचार व प्रसार अनुवाद के

जरिए से ही प्रसारित होता है। अनुवाद कार्य दो तरह के होते हैं-

1. शुद्ध तकनीकी
2. लोकप्रिय

वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य का हिंदी में अनुवाद करने के लिए सबसे पहले यह देखना होगा कि अनुवाद किस प्रकार की सामग्री का करना है तथा किस प्रणाली के आधार पर करना है। शुद्ध तकनीकी का अनुवाद एकदम साफ और अमिधा युक्त होता है तथा लोकप्रिय अनुवाद के अंतर्गत अनुवाद थोड़ा स्वतंत्र होता है और सुविधानुसार अर्थ तकनीकी तथा सामान्य कोटि के शब्दों का प्रयोग भी कर सकते हैं।

तकनीकी अनुवाद में विषय वस्तु को प्रमुखता देना ही उचित है। अन्य विषय के अनुवाद की भाँति ही तकनीकी विषयों का पूर्णानुवाद करना भी संभव नहीं है क्योंकि प्रत्येक भाषा की अपनी विशेषता होती है। फिर भी इतना ध्यान तो रखना ही होगा कि अनुवाद में मूल कृति का प्रतिबिंब दिखाई दे अर्थात् मूल कथन को लक्ष्य भाषा में यथावत रखा जाए। इसके लिए लक्ष्य भाषा में उपलब्ध तकनीकी शब्दावली में से उपयुक्त शब्दावली का चयन ही अनुवादक की दक्षता है।

अनुवाद से ही विश्व साहित्य की अवधारणा विकसित हुई है। अनुवाद के माध्यम से प्रेमचंद, प्रसाद, टैगोर, टॉलस्टॉय जैसे महानतम रचनाकारों की रचनाओं से विश्व परिचित हुआ और इसके फलस्वरूप साहित्य और कला की विश्व दृष्टि का विकास भी हो रहा है।

अनुवाद भाषा व साहित्य की सृजनात्मक चेतना के साथ वर्तमान तकनीकी और वैज्ञानिक युग की अपेक्षाओं की पूर्ति कर हमारे ज्ञान-विज्ञान के विविध आयामों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर से जोड़ रहा है। अनुवाद के क्षेत्र में अपनी सीमाएँ और चुनौतियाँ होने के बावजूद इसकी महत्ता क्षीण नहीं होती है।

– कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, धारूर जिला-बीड़, महाराष्ट्र

❑❑❑

हिंदी और अनुवाद में रोज़गार के अवसर

प्रो. पूरनचंद टंडन

"सांस्कृतिक संवेदनाओं की सरहदों को लांघने का रचनात्मक प्रयास अनुवाद कार्य ही करता है"[1]

आज किसी भी क्षेत्र में अगर आपको रोजगार के लिए बढ़ना है तो हर कार्य में दक्षता या 'परफेक्शन' चाहिए। अधिकतर हम आधी-अधूरी मानसिकता के साथ रोजगार की तलाश में निकलते हैं। ऐसे में असफलता ही प्राय: हाथ लगती है। इससे तनाव भी बढ़ता है। हम लोग यह सोचकर आगे जाते हैं कि प्रयास करते हैं..... कोशिश करते हैं..... हो जाएगा तो बहुत अच्छा.... नहीं तो पुन: प्रयास करेंगे। यहीं से गड़बड़ शुरू होती है। अत: आप लक्ष्य साधकर, कटिबद्ध होकर अपने जीवन के लिए 'कुछ लक्ष्य' अवश्य निर्धारित कर लीजिए। 'कुछ लक्ष्य' इसलिए, क्योंकि अब 'एक लक्ष्य' निर्धारित कर आगे बढ़ना खतरे से खाली नहीं है। आपको विकल्प रखने पड़ेंगे। दो-तीन-चार विकल्पों में आपको यह बोध होना आवश्यक है कि इन विकल्पों के आधार पर मैं किस लक्ष्य-प्राप्ति हेतु आगे बढ़ूँगा या बढ़ूँगी और फिर उससे किस प्रकार की नौकरी को प्राप्त/लपक कर लक्ष्य-सिद्धि होगी।

यह तो आवश्यक नहीं कि हम भाषा, साहित्य या अन्य अनुशासनों के सभी विद्यार्थी अध्यापक अथवा प्रोफेसर बन जाएँ...। हो सकता है कि हममें से कुछ लोग शिक्षण कार्य में चले भी जाएँ। किंतु यह लक्ष्य कठिन और चुनौतियों से भरा है तथा सफ़र भी लंबा है।

जो लोग विश्वविद्यालयी शिक्षण-क्षेत्र में जाने हेतु संघर्षरत हैं; उनमें से किसी से भी चर्चा करेंगें तो आपको ज्ञात होगा कि विगत कई वर्षों से स्थायी नौकरियाँ नहीं हैं। यदि हैं तो वहाँ तक पहुँचना बहुत कठिन कार्य है। यदि वर्तमान समय की बात करें तो अब कहीं-कहीं संविदा-पदों या अनुबंध नियुक्तियों की बात होने लगी है। कहीं अतिथि और तदर्थ पदों की बात हो रही है। आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि अब तो कहीं-कहीं मात्र निष्पादन के आधार पर योग्य अभ्यार्थियों की नियुक्तियाँ की जा रही हैं। यह समस्त स्थितियाँ, यह सारा परिदृश्य इस बात का द्योतक है कि आपको केवल-और-केवल शिक्षण पर निर्भर न करके, अन्य या दूसरे अनुशासनों तथा रोजगार के अवसरों की तरफ भी ध्यान देना चाहिए।

जो छात्र सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी करते हैं और भारतीय प्रशासनिक सेवा व्यवस्था का अंग बनना चाहते हैं, उनको भी अगर दो-तीन अवसर दो-तीन आयाम न प्रदान किए जाएँ तो असफल होने की स्थिति में उन्हें घोर निराशा का सामना करना पड़ता है। चूँकि दो या तीन बार आपने तैयारी की, परीक्षा दी और गंभीर प्रयास किया परंतु कहीं-न-कहीं अटक गए तो आपको बहुत परेशानी होती है, तनाव बढ़ जाता है कि जीवन के आठ-दस वर्ष व्यर्थ चले गए और नौकरी प्राप्त नहीं हो सकी। ऐसे में लगता है कि आपको यह ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा कि कुछ चुनौतियों के लिए अपने को

अवश्य तैयार कर लीजिए।

उपाधि एवं व्यावसायिक डिप्लोमा आदि प्राप्त करने के बाद का समय है नौकरी प्राप्त करना, हिंदी के माध्यम से यह कठिन चुनौती नहीं है। केवल-और-केवल दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है। संकल्प की आवश्यकता है। ध्यान रहे कि हिंदी में तथा अनुवाद के क्षेत्र में नौकरी प्राप्त करने हेतु कुछ शर्तें हैं, अर्हताएँ हैं और उनके लिए अपने को तैयार करना अत्यंत आवश्यक है।

भाषा और साहित्य के अध्ययन क्षेत्र में अब एक सबसे बड़ी चुनौती है- पठनीयता की कमी। आज पुस्तकों के पढ़ने की प्रवृत्ति लगातार घट रही है। हम और आप मोबाइल और कंप्यूटर पर तो बेहद समय गुजारते है। किंतु भाषा और साहित्य के अध्ययन में जो समय देना चाहिए, वो हम नहीं दे रहे। अब चूँकि समाज यह चाहता है कि पेशेवर नौकरी में जाने से पूर्व आपकी दक्षता (प्रत्येक क्षेत्र में) का मूल्यांकन किया जाए। उसकी उचित परख या पहचान की जाए। यदि आप योग्य हैं तो आज का व्यावसायिक समाज आपको इस क्षेत्र में 'सिर-आँखों पर' बैठाता है।

हम लोग सूर-तुलसी-कबीर आदि को पढ़ लेते हैं। संवेदनशील भी हो जाते हैं। कविताएँ और कथन भी पर्याप्त मात्रा में याद कर लेते हैं। यह ठीक है कि परीक्षा- तक तो यह सारी चीजें काम आती हैं किंतु जब व्यावहारिक जीवन में हम आगे बढ़ते हैं तो केवल-और-केवल साहित्यिक अध्ययन से बात नहीं बनती। साहित्यिक अध्ययन-अध्यापन से इतर क्षेत्रों में गए बिना अब काम नहीं चलेगा। अत: भाषा और साहित्य शिक्षण के संदर्भ में भाषा-शिक्षण के चार चरण या आयाम स्मरण रखने योग्य है।

किसी भी भाषा पर आधिकारिक ज्ञान हेतु उस भाषा विषयक अधिक-से-अधिक पठनीयता होनी चाहिए। केवल उतना न पढ़ें जितना पाठ्यक्रम का हिस्सा है या पाठ्यक्रम में निर्धारित है। दुख तो इस बात का है कि अब हम उतना भी नहीं पढ़ते जितना पाठ्यक्रम में है। अब तो हम मूल-पाठ भी नहीं देखते। मूल पाठ्य पुस्तकों की जगह गाइड से तथा कुंजियों से काम चला लेते हैं। अब तो इतनी आधुनिक संस्कृति है कि बच्चे मोबाइल फोन पर पाठ सामग्री लेकर कक्षा में लघुतम मार्ग अपना रहे हैं। यह अनुवाद तथा रोजगार के क्षेत्र में एक बड़ी बाधा है क्योंकि आपने मूल-पाठ को देखा ही नहीं है तो सहायक सामग्री के आधार पर कैसे विषय बोध-होगा। अत: पहले पठनीयता की आदत को अपनाइए उसे समृद्ध कीजिए। साहित्य पढ़िए, साहित्येतर सामग्री पढ़िए, भाषा पढ़िए...। अख़बार पढ़िए। पत्रिकाएँ पढ़िए। यदि रेडियो, टेलीविजन का उपयोग करे भी तो सोचिए कि अर्जन क्या कर रहे हैं? कमा क्या रहे हैं उनसे? सीख क्या रहे हैं- उनसे? यह उद्देश्य ध्यान में अवश्य रखना चाहिए। दूसरा अब तो मोबाइल, कंप्यूटर, इंटरनेट सी.डी., डी. वी. डी. और यू-ट्यूब आदि का ज़माना है। अब ऑडियो- वीडियो का ज़माना है। इससे बहुत-सारी सामग्री, बहुत सी जानकारियाँ हमारे लिए अत्यंत सहायक साबित हुई हैं। अब तो सरकारें भी इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रही हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या (दृश्य/श्रव्य माध्यम) से हम तात्कालिक लक्ष्य का निर्धारण कर रहे हैं या फिर दूरगामी परिणामों की चिंता भी हमारे ज़ेहन का हिस्सा है? जो कुछ भी आप देख सुन रहें हैं, जो कुछ आप स्क्रीन पर पढ़ रहे हैं- वह कितना और कैसे लाभकारी है? इसकी चिंता भी आपको करनी चाहिए।

तीसरा चरण है- 'बोलना'। भाषा अगर शुद्ध बोलनी नहीं आ रही। उसका वाचन ठीक नहीं है। उच्चारण ठीक नहीं है। हम शब्दों का वाचन भी उचित प्रकार से या मानक रूप में नहीं कर पा रहे हैं, तो रोजगार के असीम क्षेत्र स्वयं आप से दूर हो जाएँगे। आप मीडिया, सिनेमा, मनोरंजन इत्यादि किसी भी क्षेत्र में यदि देखें तो ठीक उच्चारण की कमी के अभाव में आप वंचित ही रह जाएँगे। अत: इस ओर पूरी गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। क्षेत्रीयता के दबाव से, व्यक्तिगत अज्ञानताजन्य सीमाओं से, भूल या चूक से, अचानक अध्ययन और अभ्यास की कमी से हम उच्चारण की शुद्धता पर ध्यान नहीं दे पाते हैं। क्या फर्क पड़ता है, की मानसिकता ने अनर्थ किया है।

आपको समाचार पत्र या पुस्तक पढ़ते समय उच्च स्वर में बोलने का अभ्यास करना चाहिए। आपको स्वयं सुनाई दे कि आप क्या बोल या पढ़ रहे हैं। इससे क्या होगा? इसी से उच्चारण दोष का निवारण होगा। आपको

स्वयं पता चल जाएगा कि आप शब्दों का उच्चारण ठीक प्रकार से कर पा रहे हैं या नहीं...। अगर कोई समस्या है तो निरंतर अभ्यास से इसे ठीक करने का प्रयास किया जा सकता है।

'लेखन का अभ्यास' भाषा अर्जन का एक मुख्य तथा अन्य महत्वपूर्ण पहलू या चरण है। कहा जा सकता है कि काफी हद तक 'मोबाइल' और 'कंप्यूटर' ने हमें पंगु बना दिया है। अब हम स्क्रीन की-बोर्ड पर बैठकर तो कार्य करते हैं। किंतु हाथ से स्वयं लिखने का प्रयास लगभग समापन की ओर है। इस कारण आपकी स्मरण-शक्ति भी प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। इसके पीछे भी एक महत्वपूर्ण कारण है। जब हम किसी 'शब्द' या 'विषय' को स्वयं अपने हाथ से लिखते हैं तो वह मात्र कागज पर अंकित न होकर हमारे स्मृतिपटल पर हमारे मनोमस्तिष्क पर भी अंकित हो जाता है। इसी कारण वह हमें बरसों स्मरण रहता है। वह स्मृति कंप्यूटर में फीड हो जाती है।

मुझे याद है कि मैंने विद्यार्थी जीवन में सन् 70-80 के दशक में जो नोट्स तैयार किए थे। मैं आज भी उन्हें एक नज़र देख लूँ तो वह पुनः मुझे याद हो आते हैं।

अस्तु, लिखना, पढ़ना, बोलना और सुनना। यदि इन चार-चरणों पर हम अपना ध्यान केंद्रित कर इन्हें साध लें तो निश्चित ही जीवन के साथ-साथ रोज़गार के क्षेत्र में भी हमें सफलता प्राप्त होगी।

सामान्यतः हिंदी के विद्यार्थियों के सम्मुख एक बड़ी समस्या यह है कि उन्हें 'हिंदी' ही आती है और वह भी नितांत कम। हम स्वीकार करते हैं कि किसी भी भाषा को सीखने हेतु मात्र 'एक जीवन' बहुत कम हैं। कोई एक व्यक्ति यह पूर्णतः नहीं कह सकता कि 'मुझे हिंदी पूरी तरह से या समग्रतः आती है, या हिंदी का सब कुछ आता है। अभी भी हमें महसूस होता है कि बहुत कुछ है सीखने को, पढ़ने को। समस्त ज्ञान को अर्जित कर लेना एक जीवन में संभव नहीं है। जरूरत तो यह है कि हम शुद्ध तथा मानक-लेखन पर अधिक बल दें। "सब चलता है..." कि मानसिकता को अब उखाड़ फेंकने की आवश्यकता है। एक मानसिकता यह बन गई है कि भाषा और व्याकरण तथा वर्तनी अगर ग़लत भी हो तो क्या फर्क पड़ता है..? हम यह बात भुला देते हैं कि व्यावसायिक क्षेत्र में यह गलतियाँ बहुत बड़ा महत्व रखती हैं। जितनी भी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ है। वह इन छोटी-छोटी अशुद्धियों को क्षम्य नहीं मानते।

आज के युग में तो 'मीडिया' क्षेत्र भी मल्टीनेशनल हो गया है। आज यह क्षेत्र मात्र भारतीय नहीं है। इसका भी वैश्वीकरण हो चुका है। आज कामकाज या रोजगार के क्षेत्र में एक मुहावरा प्रायः चलता है-

"कार्य वह जो हम चाहें, पैसा वह जो आप चाहें .....।"

अतः धन या पूंजी का अभाव अब नहीं है। हिंदी-भाषी कार्यकर्ताओं को भी 'मुँह मांगा' पैसा दिया जाता है। बशर्ते वह यह सिद्ध कर दें कि उनसे बेहतर कोई दूसरा नहीं है। जिस समय यह आत्मविश्वास अभ्यर्थी में आ जाता है। उसकी 'पाँचों उगलियाँ' घी में होती हैं।

आज एकाधिक भाषाओं के 'कार्य-साधक ज्ञान' का होना अत्यंत आवश्यक है। आज वर्तमान युग में इनके अभाव में सफलता हासिल करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। यह 'हिंदी' एवं 'अंग्रेजी' का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर संपूर्णता को प्राप्त करने में मदद करते हैं।

कितना भी कहा जाए कि अंग्रेजी हटाओ! अंग्रेजी को बाहर निकालो...। यह सब राजनैतिक दुष्चक्र बनकर रह गया है। वास्तविकता तो यह है कि इस समाज में रहना है और जीवनयापन करना है तो अंग्रेजी का 'कार्य-साधक-ज्ञान' भी होना चाहिए। हम हिंदी के विद्यार्थी हों... इतिहास के विद्यार्थी हों या राजनैतिक शास्त्र आदि के विद्यार्थी हों। हमें हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में आधिकारिक पकड़ बना लेने की आवश्यकता है।

अक्सर अंग्रेजी-भाषी को हिंदी तथा हिंदी-भाषी को अंग्रेजी नहीं आती। इस अधूरे ज्ञान से आज के युग में रोजगार की कल्पना करना महज़ कपोल तथा काल्पनिक यथार्थ की सृष्टि करता है। देखा तो यह भी गया है कि अंग्रेजी अभ्यर्थियों को हिंदी में एक पत्र लिखने हेतु कह दिया जाए तो उनके 'हाथ-पाँव फूलने लगते हैं। इसके विपरीत हिंदी के अभ्यर्थियों के साथ भी लगभग यही स्थिति हैं। स्थितियाँ विडंबनात्मक और विकराल रूप

तब ग्रहण कर लेती हैं जब अंग्रेजी वाला अभ्यर्थी-अंग्रेजी तथा हिंदी वाला अभ्यर्थी- हिंदी भी पूर्णत: शुद्ध एवं मानक नहीं लिख पाता। स्वतंत्र भारत में यह बहुत अच्छी स्थिति नहीं है। अंग्रेजी की लंबी रेखा के सामने हमें हिंदी की उससे भी लंबी-रेखा खींचनी होगी। यह तभी संभव होगा जब हम मिलकर हिंदी के लिए, हिंदी में काम करेंगे। हिंदी की बात नहीं, हिंदी में बात करेंगे।

आज हमें कंप्यूटर का 'कार्य-साधक-ज्ञान' भी होना चाहिए। ऐसा इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि बिना कंप्यूटर ज्ञान के हम रोजगार के अधिकांश क्षेत्रों (अध्यापन कार्य सहित) में सहज प्रवेश नहीं पा सकते। आज जब स्कूलों में अध्यापकों की नियुक्ति होती है तो उससे भी कंप्यूटर ज्ञान के संदर्भ में प्रश्न पूछे जाते हैं। यदि यह ज्ञान न भी हो....। ऐसे में यदि कुछ समय संकल्प के साथ प्रयत्न किए जाएँ तो निश्चित रूप से इस क्षेत्र में ज्ञान तथा सफलता हाथ लगेगी।

यदि आप उपर्युक्त बातों पर अधिकार प्राप्त कर लें तो निश्चित ही नौकरी आपके पास होगी। आज के युग में नौकरियों की असीम बाढ़ है। बशर्ते आपके पास उचित योग्यता के साथ-साथ दक्षता एवं निपुणता भी हो। आज का युवा जब साक्षात्कार हेतु जाता है तो आधी-अधूरी तथा अधकचरी जानकारी के साथ जाता है। यही प्रमुख कारण भी है कि असफलता हाथ लगती है। ऐसे अयोग्य पात्र जमाने में यह भ्रम फैलाते है कि - "साहब, हालत बहुत खराब है.....। नौकरियाँ बिल्कुल नहीं हैं।" एक मानसिकता हमने यह भी बना ली है कि नौकरी तो मात्र पहुँच/पैरवी से मिलती है। ऐसा बिल्कुल नहीं है। यदि हम रोजगार-प्राप्त व्यक्तियों से चर्चा करें तो पता चलता है कि रोजगार क्षेत्र में योग्यता और दक्षता का महत्व आज भी है।

यदि हम 'अनुवाद' क्षेत्र की बात करें तो यह अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान या एप्लाइड लिंग्विस्टिक्स की एक शाखा है। भाषा-विज्ञान के अनुप्रयोग क्षेत्र की एक शाखा है। इसमें भाषा का व्यावहारिक ज्ञान अपेक्षित है। आपने साहित्य पढ़ लिया....। कविताएँ याद कर ली..। वक्तव्य-कथन याद कर लिए। मुहावरे व लोकोक्तियाँ भी स्मृति में रखकर कंठस्थ कर ली किंतु इनका अनुप्रयोग कहाँ करेंगे, किस प्रकार करेंगे? यह बोध न हो सका, तो सब व्यर्थ है। मुहावरों का प्रयोग हम बचपन से ही करते आ रहे हैं। मौका प्राप्त होते ही प्रयोग कर बैठते हैं। किसी के कार्य न कर पाने की स्थिति में हम बेबाकी से कह देते हैं कि-

"नाच न जाने आँगन टेढ़ा"

अर्थात् यह व्यावहारिकता अनायास ही हमारे कौशल का अंग बनकर सामने आ जाती है। यही व्यावहारिकता हमें रोजगार हेतु चाहिए।

आपके पास शब्द-संपदा यदि है तो निश्चित ही नियति भी आपका साथ देती है। वैसे भी, हमारे शब्द भंडार में उतने ही शब्द भंडारित रहते हैं, जितना हमने अध्ययन किया होता है। अत: अध्ययन का स्तर उच्च एवं व्यापक होना चाहिए। पाठ्यक्रम के इतर भी हमें पुस्तकें पढ़ने एवं ज्ञानार्जन करने की जरूरत है। जिस प्रकार कंप्यूटर में जितने शब्दों का भंडार संचित किया जाता है, उसके अतिरिक्त शब्द-खोज करने की स्थिति में वह प्रश्नचिह्न(?) दर्शाता है। ठीक यही स्थिति हमारे मनो-मस्तिष्क के साथ भी घटित होती है। जो पठन में नहीं आया। हम उसका प्रयोग नहीं करना जानते। अत: पठनीयता अवश्यभावी है। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि यदि 'भाषा और साहित्य' के माध्यम से आपको रोजगार के क्षेत्र में प्रवेश करना है तो आपकी ज्ञान रूपी जेब भरी होनी चाहिए। आपके पास समृद्ध एवं प्रचुर मात्रा में 'शब्दावली' हो। उसके उचित मुहावरेदार प्रयोग का ज्ञान हो और फिर उचित संदर्भों में प्रयोग की समझ विद्यमान हो। सफलता तभी हाथ लगेगी।

"अनुवादक की विवेकशीलता बहुत महत्वपूर्ण होती है और इसी विवेकशीलता पर अनुवाद की सफलता-असफलता निर्भर करती है।"[2] इसके लिए हमें कठोर अनुशासनबद्ध तरीके से चलने और गहन-गंभीर अध्ययन करने की आवश्यकता है।

यदि आप विज्ञापन के विशाल क्षेत्र पर गौर करें तो वहाँ ग्लैमर भी है, पैसा भी है। साथ-साथ एक आत्मतोष भी है। इस क्षेत्र में वह व्यक्ति ही सफलता अर्जित करता है- जिसका भाषा पर अधिकार है। जो अभ्यर्थी भाषा को तोड़-मोड़ कर प्रयोग करना तथा उसका पल्लवन-संक्षेपण भली-भाँति करना जानता है, वह इस क्षेत्र में बेहतर परिणाम हासिल कर सकता है।

कहाँ कम शब्दों में बात करनी है। कहाँ ज्यादा शब्दों में बात करनी है। कहाँ किस शब्द के आने से प्रभाव पैदा होगा और कहाँ किस शब्द के प्रयोग से प्रभाव नष्ट हो जाएगा। अगर यह ज्ञान प्राप्त हो जाए तो रोजगार तथा विज्ञापन के क्षेत्र में असंख्य संभावनाएँ प्राप्त की जा सकती है। सटीक एवं सार्थक शब्द चयन की यह कला अभ्यास -सापेक्ष है।

यदि मैं बहुराष्ट्रीय कंपनियों में कार्यरत विज्ञापन शाखाओं की बात करूँ तो यह विज्ञापन कंपनियाँ अपनी टेग या पंच लाइन अपने साथ लेकर आती है। मुझे वह पंच लाइन आज भी याद है जिसने बहुत ख्याति अर्जित की थी-

"ढूँढते रह जाओगे।"

'दाग' के लिए उन्होंने इसका प्रयोग किया कि उस वाशिंग पाउडर द्वारा कपड़ों को धोने से आप दाग ढूँढते रह जाएँगे। अब भले ही कुछ नया नहीं इसमें, किंतु एक उपयुक्त जुमला अवश्य है, जो दशकों जीवित रहा। इसी प्रकार-

"ऊँचे लोग, ऊँची पसंद"

यहाँ भी कुछ नया नहीं है किंतु बाजार-मनोविज्ञान किस प्रकार भाषा के साथ आगे बढ़ता है। यह इसमें साफ नजर आता है। इस मनोविज्ञान को भाँप लेने के उपरांत ही किस प्रकार का विज्ञापन किस वर्ग के लिए तैयार किया जाना है। इसका बोध किया जाता है। जैसे एक उदाहरण दिया जा सकता है। टाटा ने जिस समय के दौरान अपने वाहन बाजार में उतारे तो इंडिका एक महत्वपूर्ण कड़ी थी। एक पंच लाइन के साथ यह कार बाजार में उतरी थी...

"Per car more car"

अब एक बड़ा प्रश्न यह है कि इसे हिंदी में अनूदित करना हो तो कैसे किया जाए? चूँकि अंग्रेजी की पंच लाइन पर यह कार बिक तो रही है किंतु बड़े स्तर पर बिक्री हेतु तो हिंदी मुहावरे की मुखापेक्षी ही है। हिंदी का ग्राहक भारत में, अंग्रेजी की तुलना में बहुत अधिक है। अतः यह स्थान एवं समय की आवश्यकता है कि विज्ञापन हिंदी में हो। ऐसे में अगर कंपनी प्रोडक्ट का सही 'विज्ञापन-अनुवाद' हो सका तो गाड़ियाँ धड़ाधड़ बिकेंगी। एक कार 'इंडिगो' के लिए तो यहाँ तक कहा गया-

"Spoil yourself and buy Indigo"

यदि इसका सही दर्शन अथवा अर्थ समझ न आए तो इसका अनुवाद कभी ठीक नहीं हो सकता। Spoil का तो अर्थ ही 'बिगड़ा हुआ' होता है। इसके पीछे 'चार्वाक दर्शन' है। यह दर्शन कहता है।

"Eat, Drink and Be Merry....."

अर्थात्, 'खाओ, पीयो और मौज करो'

Spoil yourself- घिस-घिस कर जीवन क्यों जीए? यह दुबारा नहीं मिलने वाला। भोग लो और भोगने के लिए समस्त सुविधाओं से संपन्न कार Indigo कार का इस्तेमाल करो। यह पूरा मनोविज्ञान इसके पीछे कार्यरत है।

एक कार मेटीज़ आई थी डायवु की। यह कार बाजार में मारुति-800 की प्रतिस्पर्धा स्वरूप लाॅन्च की गई थी। यह दोनों छोटी कारें थीं तथा अपनी-अपनी पंच लाइनों के साथ आई थी। मेटीज़ की पंच लाइन थी-

"The Big Small Car....."

इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया-

"छोटी कार..., बड़ा आकार...।"

"The Big Small Car...."

यह अनुवाद कंपनी द्वारा बेहद सराहा गया था। संभवतः कंपनी द्वारा इसका इस्तेमाल भी किया गया। यदि अनुवाद इससे भी बेहतर करने की ख्वाहिश ज़ेहन में बनी हो, अनुवाद यह किया जा सकता है-

"छोटी कार, जगह अपार..."

वास्तव में अनुवाद कोई भी अंतिम नहीं होता। उसमें संवर्धन -परिवर्तन की संभावना हमेशा रहती है। भाषा में मौलिक लेखन करते हुए भी यही स्थिति रहती है। इसीलिए कहते हैं कि 'अनुवाद एक अंतहीन यात्रा' है। उस समय कम स्थान के अधिकतम उपयोग मैक्सिमम यूटिलाइजेशन ऑफ स्पेस की अवधारणा जोरों पर थी। बाज़ार तथा उत्पादों में इसका प्रभाव स्पष्ट नजर आता था। रेफ्रिजरेटर थे तो 165 लीटर ही किंतु अंदर जगह अधिक थी। धीरे-धीरे दीवारें भी 18 से 12 इंच तदुपरांत 9 इंच से 3 इंच तक लघु आकार में प्रयोग में लाई जाने लगीं। यह मनोविज्ञान है। यदि आपको समय और समाज के मनोविज्ञान की परख है तो निश्चित ही बाजार तथा रोजगार आपकी राह तक रहा है। यदि यह

अभ्यास नहीं तो लक्ष्य प्राप्ति दूर है। अत: सदैव स्मरण रखना चाहिए-

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात के सिल पर पड़त निसान।।

एक पूरी दुनिया है- विज्ञापन की। सफर के दौरान आपने देखा होगा किस प्रकार से विज्ञापन प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पैठ जमा रहा है। अनुवाद इस क्षेत्र में रोजगार के द्वारा खोलने का काम करता है किंतु सजग अनुवादक के अभाव में अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती। यात्रा के दौरान आपने देखा होगा कि लिखा होता है-

"Accident Prone Area"

अर्थात्

"दुर्घटनाग्रस्त क्षेत्र"

यह भ्रष्ट अनुवाद है। यदि क्षेत्र दुर्घटना से ग्रस्त हो ही चुका है तो फिर इसे बंद किया जाना चाहिए? कुछ जगह लिखा होता है-

"दुर्घटना संभावित क्षेत्र"

अर्थात्, यहाँ दुर्घटना होगी! आओ और दुर्घटना करो।

हमें ज्ञात होना चाहिए कि 'संभावना' सकारात्मक शब्द है जबकि 'दुर्घटना' नकारात्मक शब्द। आखिर दोनों कैसे मिल सकते हैं? हमें सही भाव समझने की आवश्यकता है। अंतत: हमने यह शुद्ध अनुवाद किया-

"दुर्घटना आशंकित क्षेत्र"

अर्थात्, यहाँ दुर्घटना की आशंका है इसीलिए गाड़ी सावधानी से चलाएँ। 'आप' और 'हम' ही नहीं प्राय: 'हिंदी-अधिकारी' भी इस ओर ध्यान नहीं देते। उनको यह लगता है कि हमें अनुवाद कार्य करना है तो .... अनुवाद कर दिया।...बस....। यह एक चिंतनीय समस्या है। फिर से दक्षता, निपुणता की आवश्यकता पुष्ट होती है।

हाल ही में, केंद्र सरकार द्वारा एक बड़ा परिवर्तन अनुवादकों के लिए किया गया है। यह प्रस्ताव पास किया जा चुका है तथा जल्द ही लागू होने जा रहा है। अब पदनाम हटा दिया गया है। अब इसे जूनियर हिंदी ट्रांसलेटर ऑफिसर कर दिया गया है। यह जो परिवर्तन अनुवाद क्षेत्र में आया है। यह इस बात की ओर संकेत कर रहा हैं कि आज 'अनुवादको' की सरकार को बहुत बड़े स्तर पर आवश्यकता है। अब कनिष्ठ या वरिष्ठ, अनुवाद अधिकारी होंगे।

'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' इसका प्रमाण है। "विभिन्न मूल पाठों का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद करवाना, शब्दकोशों, विश्वकोशों का निर्माण, अनुवाद कार्य में सहायक-कंप्यूटर सॉफ्टवेयर तैयार कराना, अल्पविधि अनुवाद पाठ्यक्रम चलाना, अंग्रेजी से अन्य भारतीय भाषाओं के मध्य एक भारतीय भाषा से अन्य भारतीय भाषाओं तथा विश्व की प्रमुख भाषाओं के मध्य मशीनी अनुवाद तथा मशीनी संशोधित अनुवाद को प्रोत्साहन देना आदि राष्ट्रीय अनुवाद मिशन के प्रमुख तथा महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं।"[3] हम यदि गौर करें तो पाते हैं कि सरकार इस क्षेत्र के प्रति सजग एवं सकारात्मक रुख अपना रही है।

हिमाचल सरकार द्वारा भी अपनी संस्कृति हिंदी में तथा अन्य भाषाओं में और फिर संपूर्ण विश्व में प्रसारित करने का प्रयास अनुवाद माध्यम से किया जा रहा है।

कर्मचारी चयन आयोग प्रतिवर्ष 300-400 पद अनुवादकों के लिए विज्ञापित करता है। यह आयोग 300-400 पदों में से योग्य 100-150 अभ्यार्थियों को ही नियुक्ति-प्रक्रिया में सफलता प्रदान करता है चूँकि योग्य अनुवादकों का अभाव एक बड़ी समस्या है। कई दफ़ा यह भी होता है कि संस्थाओं द्वारा कहा जाता है कि-

"Nobody was found suitable. The Post maybe Re-advertised."

योग्य अनुवादकों की मांग है। अवसर बेहद हैं किंतु अवसरों का सही प्रयोग करने वाले बेहद कम। स्वयं भारतीय संसद में सैकड़ों अनुवादक कार्य कर रहे हैं। माननीय प्रधानमंत्री, माननीय राष्ट्रपति आदि भी जब विदेश यात्रा पर अथवा अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रों में जाते हैं तो तत्काल भाषांतरकर्ता इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है तो साथ लेकर जाते हैं। संपूर्ण संसदीय कार्यवाही अनुवाद पर आधारित है। प्रत्येक सांसद के समक्ष डेस्क पर बटन लगे होते हैं। इस अवस्था में जब कोई अन्य भाषी सांसद अपनी मांग प्रस्तुत करता है तो अन्य भाषी सांसद उस बटन का प्रयोग कर उसका अनुवाद अपनी भाषा में सुन सकते हैं। 'साथ-के-साथ' आपको समग्र वक्तव्य अपनी भाषा में सुनने को मिलेगा।

इसका मतलब है कि यदि हम चाहें तो अनुवाद के क्षेत्र में रोजगार के तमाम अवसर प्राप्त कर सकते हैं।

अन्य क्षेत्रों पर यदि बात करें तो भारत ने 'यात्रा एवं पर्यटन' क्षेत्रों को आय का स्रोत पहले कभी नहीं बनाया था किंतु आज वक्त बदला है। टूरिज़्म एक बड़ा व्यावसायिक क्षेत्र बनकर उभरा है। अब मात्र भारतीय ही विदेशों में नहीं अपितु विदेशी-जन भी भारत में भ्रमण करने आते हैं। ऐसे में उन्हें एक अनुवादक या आशु अनुवादक की बड़ी आवश्यकता होती है। यह अनुवादक उन्हें भ्रमण के दौरान उनकी भाषा में पर्यटन स्थलों का इतिहास आवश्यक जानकारियाँ प्रदान करता है। इस एवज़ में उसे बड़ी मात्रा में पारिश्रमिक या मानदेय प्राप्त होता है। यदि 'हिंदी' के साथ-साथ आपको अपनी एक रीजनल लैंग्वेज भी आती है। इसके साथ ही यदि आपने एक विदेशी भाषा भी सीख रखी है तो यह आपके लिए- 'सोने-पे-सुहागा' है। अब आप मार्केट के लिए 'हॉट केक' है। आपकी डिमांड (मांग) सदैव बनी रहेगी, निरंतर बढ़ती रहेगी।

भारत सरकार के अधीन कार्यरत राष्ट्रीय अनुवाद मिशन ने, केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने संपूर्ण उच्च शिक्षा को प्रत्येक भाषा-भाषी के अध्ययन के दायरे में पहुँचा दिया है।

अब सरकारी कार्यालयों में आपको यह संवैधानिक अधिकार (Constitutional right) प्रदान कर दिया गया है कि कोई यह कह नहीं सकता कि आप हिंदी में कार्य मत करो। देश की सर्वोच्च सत्ता एवं सर्वोच्च पद पर आसीन माननीय राष्ट्रपति जी द्वारा आपको यह अधिकार प्रदान किया जा चुका है। अत: "अनुवाद की उपयोगिता इस दृष्टि से भी अधिक है कि उसके आधार पर सरकारी कर्मचारी सरकारी कामकाज में प्रयोग के लिए विकसित होने वाली हिंदी की भाषा-शैली को अपनाएँ।"[4]

अनुवाद ने हिंदी के गौरव को और अधिक बढ़ाने का कार्य किया है। पहले अंग्रेजी ऊपर हुआ करती थी तथा हिंदी नीचे। आज हिंदी ऊपर है तथा अंग्रेजी नीचे ...। परिवर्तन धीमी गति से किंतु सार्थकता की ओर अग्रसरित अवश्य है।

सिनेमा-जगत एक बड़ा कार्य-क्षेत्र है। यदि आपका इस बात से परिचय हो कि दुनिया में सर्वाधिक धनार्जन करने का रिकॉर्ड किस फिल्म के नाम दर्ज है- तो वह फिल्म 'बाहुबली' है। क्यों? क्योंकि यह फिल्म विभिन्न भाषाओं में वाइस-ओवरिंग तथा डबिंग-कर प्रस्तुत की गई थी। यह कार्य अनुवादकों द्वारा पूर्ण किया जाता रहा है। इससे पता चलता है कि एक अनुवादक के तौर पर रोजगार की बहुत बड़े स्तर पर संभावनाएँ विद्यमान हैं। यही एक प्रमुख कारण भी है कि अक्सर कहा जाता है-

"अनुवाद में सार्थक शब्दों के चयन का विशेष महत्व है।"[5]

भाषा के प्रयोग-अनुप्रयोग के प्रति उदासीनता एक प्रमुख कारण है कि हम रोजगार हेतु योग्य पात्र नहीं बन सके। दरअसल, हम भारतीय लोग अपनी भाषा का सम्मान नहीं करते और मानते हैं कि अंग्रेजी 'विश्व-भाषा' है। वास्तविकता तो यह है कि यदि गूगल पर सर्च किया जाए तो दुनिया के मात्र 5 देशों से अधिक जगह अंग्रेजी नहीं बोली जाती। अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा भाषी विदेशी क्षेत्र अपनी ही भाषा पर गौरव अनुभव करते हैं। अत: अपनी ही भाषा में बात करना भी पसंद करते हैं।

हिंदी का सम्मान मात्र दीप प्रज्ज्वलन करके नहीं होगा। यह तो हिंदी के प्रति व्यावहारिक समर्पण भाव से होगा। जब-तक हम स्वयं योगदान नहीं करेंगे तो कोई व्यक्ति या संसार की कोई भी शक्ति हमारी सहायता नहीं करेगी। "जिस प्रकार किसी देश की उन्नति और वैज्ञानिक प्रगति से संपूर्ण देशवासी लाभान्वित होते हैं। उसी तरह किसी भाषा की साहित्यिक उपलब्धि से अन्य भाषा-भाषी भी परिचित होना चाहते हैं। किंतु वह दूसरी भाषा को नहीं जानता या ज्ञान का अभाव इसमें बाधा उत्पन्न करता है। इस अभाव को दूर करने में अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए सेतु का कार्य करता है।"[6]

मूल बात यह है कि हम जिस देश की रोटी खाते हैं। जिस देश का नमक खाते हैं। उस देश की भाषा का सम्मान नहीं करते। जब हम अपने देश के राष्ट्रध्वज का सम्मान कर सकते हैं.....। राष्ट्रीय गान का सम्मान कर सकते हैं.... तो आखिर अपनी राष्ट्रभाषा का सम्मान क्यों नहीं कर सकते? यह एक बड़ा 'प्रश्न' है।

अंग्रेजी से हम इतने आक्रांत है कि हम मान बैठे हैं कि पढ़े-लिखे तो तब दिखाई देंगे, जब अंग्रेजी बोलेंगे। फिर चाहे गलत ही क्यों न बोलें। सारा का सारा कार्य चोरी की अंग्रेजी से चल रहा है। पुरानी फाइलों से कॉपी किया एक पत्र बना दिया। ड्राफ्ट बना दिया।... टिप्पणी कर दी। इससे हिंदी का नुकसान बहुत अधिक हुआ है। इस स्थिति के कारण ही मामा वरेरकरे ने कहा भी था- "लेखक होना आसान है किंतु अनुवादक होना अत्यंत कठिन।"

आपको स्मरण होगा कि एक फिल्म 'लगान' को ऑस्कर पुरस्कार के लिए नामित किया गया था। संपूर्ण देश का मत था कि यह एक नई थीम पर आधारित फिल्म है अत: इसे पुरस्कार मिलेगा। किंतु पुरस्कार मिला नहीं। उस दौरान तत्कालीन खेल मंत्री सुनील दत्त का साक्षात्कार टेलीविजन पर प्रसारित किया गया था। संवाददाता द्वारा प्रश्न पूछने पर कि- "सर, क्या कारण रहे कि 'लगान' जैसी फिल्म को ऑस्कर न मिल सका? प्रति उत्तर में दत्त साहब ने बेहद खेद के साथ यह बात कही थी कि-

"हमारे देश के लोग अपनी भाषाओं का सम्मान नहीं करते।"

संवाददाता द्वारा पुन: इसका कारण पूछने पर उन्होंने कहा था कि इस फिल्म का जो 'केंद्रीय विचार' था। वह अनुवाद में ठीक -ठीक सामने नहीं आ पाया। यह फिल्म जिस भाव को प्रस्तुत करना चाहती थी। ठीक वही भाव सही अनुवाद के अभाव में सामने न आ सका। उन्होंने फिल्म 'मदर इंडिया' के हवाले से अपनी बात कहने का प्रयास किया था कि 'मदर इंडिया' जब ऑस्कर के लिए नामित हुई तो इसका केंद्रीय विचार यह रखा गया कि भारतीय महिला कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी गलत बात से समझौता नहीं करेगी। भले ही इसके लिए उसे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। भले ही इसके लिए उसे अपने बेटे की जान ही क्यों न (न्याय की रक्षा हेतु) लेनी पड़े। हम यह संदेश फिल्म के माध्यम से संसार को पहुँचाना चाहते थे किंतु भारतीय नारी के चरित्र के यह मूल्य गलत अनुवाद के कारण भ्रामक रूप में निर्णायकों तक संप्रेषित हुए। जिस कारण एक निर्णायक ने यहाँ तक कह दिया कि- "यह भारतीय बेवकूफ महिला। यह क्यों संघर्ष कर रही है? एक धनी जमींदार इसे घर ले जाना चाहता है...। इसके बच्चों का पालन-पोषण करना चाहता है...। यह क्यों नहीं चली जाती उसके साथ?" यह सारी की सारी दुर्दशा गलत भाषिक अनुवाद के कारण ही हुई थी। यह हमारी अनुवादजन्य विफलता थी इसीलिए हम रिजेक्ट हुए।

हमारी युवा पीढ़ी ने हमारे बच्चों के मनो-मस्तिष्क में यह बात ठूस-ठूसकर भर दी है कि- अंग्रेजी के बिना गति नहीं है। अंग्रेजी अच्छी होगी तो कुछ भी संभव है। भले ही क्लर्क बन जाएँ....। ऐसा कर हमने योग्य तथा प्रतिभाशाली लोगों की प्रतिभा को भी कुंद कर दिया। जूठन या नकल-जीवी संस्कृति का निर्माण कर दिया। भाषा और साहित्य में असीम अवसर हमारे पास हैं उनको 'एक्स्प्लोर' करना हमें आना चाहिए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों में जितने भी अभ्यर्थी विदेशों में भेजे जाते हैं अधिकांश वे लोग है- जिनका अनुवाद पर अधिकार है।

ठीक इसी प्रकार, 'मीडिया ट्रांसलेशन' का भी रोजगार की दृष्टि से विशेष महत्व है। जितनी भी खबरें हम देखते हैं। वह सारी-की-सारी अन्य देशों की भाषाओं से अंग्रेजी में और अंग्रेजी से हिंदी में तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करके ही प्रसारित या प्रकाशित की जाती हैं। अंग्रेजी से हमारे यहाँ जब खबरें आती हैं तो यहाँ कार्यरत अनुवादक इसे अंग्रेजी से हिंदी में तदुपरांत अन्य भाषाओं में अनूदित कर अन्य राज्यों में प्रसारित करने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं यह सारा सिलसिला अनुवाद से जुड़ा हुआ है।

मुझे याद है कि पहले ग्रीटिंग कार्ड्स अंग्रेजी में ही उपलब्ध थे किंतु अनुवाद की सुविधा के चलते आज के समय में यह हमें तमिल, तेलुगु, गुजराती आदि देश की लगभग सभी भाषाओं में प्राप्य हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि अब परिदृश्य में बदलाव आया है। यह अनुवादकों की दृष्टि से लाभकारी है।

यदि व्यापार और अनुवाद के मेल की बात करें तो यह मानकर चलिए कि अनुवाद आपके 'व्यापार' को कहीं अधिक विस्तृत कर देगा। अनुवाद से धनार्जन के मार्ग खुलेंगे। एक एम.बी.ए. व्यक्ति, जिसका मानदेय एक लाख रुपए है वह आपके दरवाजे पर 10 रुपए का साबुन बेचने आता है। क्यों? क्योंकि कंपनी का उत्पाद

बेचकर उनकी पूंजी बढ़ानी है। इसके लिए भाषा मनोविज्ञान की शरण लेनी पड़ती है। यह अनुवाद से भी संभव है। वह आपकी भाषा की मनोवैज्ञानिक कल्पना करने के बाद, आपका मनोविज्ञान समझकर आपके ऊपर अपना प्रभाव अंकित करता है। इसकी बकायदा ट्रेनिंग उन्हें प्रशिक्षण के दौरान प्रदान की जाती है।

अनुवाद के माध्यम से रोजगार प्राप्ति का एक बड़ा मार्ग यह भी है कि आप घर बैठे एक 'ट्रांसलेशन एजेंसी' आरंभ कर सकते हैं। इंटरनेट का लाभ लेकर आप कुछ बेहतर अनुवादकों के माध्यम से यह कार्य कर सकते हैं। आप विभिन्न अनुवादकों के पैनल बनाकर 'जापानी-हिंदी अनुवाद', 'अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद'; 'हिंदी-अंग्रेजी अनुवाद' आदि के माध्यम से यह कार्य कुशलतापूर्वक कर सकते हैं। आय की दृष्टि से यह एक बेहतर विकल्प है।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि अनुवाद-क्षेत्र में इतना बड़ा बाज़ार क्षेत्र आता है। जिसमें अनंत संभावनाएँ व्याप्त हैं। आज बैंक, बीमा कंपनी, अस्पताल, एयरपोर्ट-अथॉरिटी, एयरलाइंस इत्यादि बिना अनुवाद कार्य के चल ही नहीं सकती। वर्तमान समय में जितने जरूरी दस्तावेज हैं, फिर चाहे वह पहचान-पत्र हो, राशन कार्ड हो अथवा आधार कार्ड हो आज सब कुछ अनुवाद के दायरे में आता है क्यों? क्योंकि संवैधानिक प्रावधान दिए गए हैं।

रोजगार हेतु खेल जगत एक रोमांचक क्षेत्र बनकर उभरा है। खेल कमेंट्री को ही लीजिए। अब यहाँ भी 'द्विभाषावाद' के आधार पर अनुवादकों की मांग बढ़ी है। आप किसी भी खेल-चैनल को देख लीजिए। आपको उसका हिंदी-संस्करण अवश्य मिल जाएगा। टेन स्पोर्ट्स, स्टार स्पोर्ट्स ऐसे-ही चंद बड़े नाम है। इनके हिंदीकरण का एक बड़ा कारण इनकी अधिकतम बिक्री के साथ जुड़ा हुआ है। इसका एक बड़ा प्रमाण- 'कौन बनेगा करोड़पति' धारावाहिक है। इस धारावाहिक शृंखला को आपने सराहा तो इसका एक बड़ा कारण 'हिंदी' ही था। 'महाभारत' 'रामायण', 'चाणक्य' इत्यादि धारावाहिक विभिन्न भाषाओं में अनुवाद के कारण ही संभव हो सके।

मानसिकता के धरातल पर हम सोचते बहुत कुछ हैं किंतु बोलते कम हैं। उसको संशोधित करते हैं यह सारी प्रक्रिया अनुवाद के माध्यम से ही पूरी होती है। हमें माता-पिता के सामने, मित्र मंडली के सम्मुख किस प्रकार शब्दों का प्रयोग करना है उसका चयन कर, तोल-प्रक्रिया से होकर गुजरता है।

साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद की महती भूमिका है। भक्त कवि तुलसीदास हो या रीति कवि सोमनाथ अनुवाद का परचम हर युग में लहराया है। हजार चुनौतियों के बावजूद "सामाजिक रुचि का पार्थक्य होने पर भी सोमनाथ ने अत्यंत सावधानी से अनुवाद किए और उनमें पूर्णत: सफलता हासिल की।"[7] इसके समान ही गोस्वामी "तुलसीदास के अनुवादक रूप पर गंभीर शोधपरक तथा तुलनात्मक विश्लेषणात्मक कार्य की अभी बहुत सी संभावनाएँ शेष हैं...।"[8] अत: अनुवादक तथा अनुवाद कार्य प्रत्येक युग की आवश्यकता रहा है।

प्रतिवर्ष कर्मचारी चयन आयोग द्वारा लगभग 300-400 पद रिक्तियों के रूप में विज्ञापित होते हैं। पहले की अपेक्षा अब बैंकों के भर्ती मंडलों में भी इज़ाफा किया गया है। अब यह भर्ती मात्र 'एक मंडल' द्वारा न होकर नवीन स्थापित 'सात मंडलों' के आधार पर की जाती है और लगभग प्रतिवर्ष इसके 250-300 पदों पर रिक्तियाँ विज्ञापित की जाती हैं। अनुवाद, हिंदी कंप्यूटर ऑपरेटर, हिंदी अधिकारी, राजभाषा अधिकारी, अनुवादक, हिंदी सहायक, क्षेत्रभाषा अधिकारी, आशु अनुवादक आदि की मांग लगातार बढ़ रही है। यदि आप में शैक्षणिक योग्यता कलानिष्णता है तो आप अनुवाद के आधार पर 'हिंदी अधिकारी' बनकर 60-70 हजार रुपए प्रति माह मानदेय से शुरुआत कर सकते है। यह पदोन्नति के साथ-साथ एक लाख-दो लाख या अधिक बढ़ सकती है।

"विश्व सभ्यता के विकास में अनुवाद की सराहनीय भूमिका रही है।... क्योंकि अनुवाद ही वह अकेला माध्यम है। जिसकी सहायता से विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों, धर्मों एवं सामाजिक स्तरों से देश-विदेश में संवाद स्थापित हो पाता है।"[9] यह एक बड़ा 'फ़ैक्टर' है क्योंकि देश के संपूर्ण 'मंत्रालय' तथा मंत्रालयों की

रिपोर्ट्स अनुवादक के स्तंभ पर ही टिकी है।

अनुवाद 'नए भारत' की पहचान बनकर सामने आया है। "अनुवादक, वास्तव में जीवन के युद्ध को जीतने का मूल मंत्र है। आत्मविश्वास से प्रदान करने वाला शुद्ध संकल्प है।"[10] सत्य तो यह है कि आज हम जिस युग में जी रहे हैं।- वह 'अनुवादक का युग' है। यह जिम्मेदारियों से भरा 'अग्निपथ' है...। यहाँ आधी-अधूरी तथा अधकचरी जानकारी से बात नहीं बनेगी। आपको सिद्ध करना होगा कि आप योग्य पात्र हैं। भाषा तथा अनुवाद के माध्यम से देश एवं समाज की आपसे जो भी अपेक्षाएँ हैं। उन्हें आप बतौर अनुवादक सहज रूप से पूर्ण कर सकते हैं। ऐसा कर पाने की स्थिति में निश्चित रूप से आप एक जिम्मेदार अनुवादक बन सकेंगे। फलस्वरूप रोजगार रूपी ध्येय की पूर्ति भी स्वत: ही पूर्ण होगी...।

आज अनुवाद की प्रासंगिकता और उपादेयता प्रतियोगी- परीक्षाओं में, प्रवेश परीक्षाओं में, शिक्षा और उच्चशिक्षा में, कार्यक्रमों के कुशल संयोजन में, रेडियो, टी.वी. के कार्यक्रमों, धारावाहिकों में, पुस्तक-प्रकाशन आदि क्षेत्रों में लगातार बढ़ रही है। सांस्कृतिक समन्वय तथा समेकित संस्कृति के विकास-विस्तार में अनुवाद एक वरदान सिद्ध हो रहा है। भारतीय मनीषा से, भारतीय प्रतिभा से, भारतीय कलाओं तथा कलाकारों से, साहित्य, दर्शन, अध्यात्म तथा नीतिगत मूल्यों से, भारतीय चिकित्सा पद्धतियों से, मानव संस्कृति की ओर उन्मुख तथा सामाजिक भारतीय प्रयासों और कदमों से अवगत कराने का सशक्त एवं सरल उपाय अनुवाद ही है। विदेशी-अनुवादकों द्वारा बिगाड़ी गई भारतीय छवि को बदलने, उसे उसकी यही पहचान दिलवाने का कार्य भी अनुवाद से ही- संभव है। बहुभाषा-भाषी भारतीय समाज और संस्कृति की अस्मिता तथा ज्ञान-गरिमा की रक्षा, विरासत का संरक्षण, पुरातन दुर्लभ पांडुलिपियों, पुस्तकों, शोध उपलब्धियों की रक्षा-सुरक्षा भी अनुवाद से ही संभव है। नए भारत के निर्माण में अनुवाद के इस शास्त्र का रचनात्मक उपयोग हमें विश्व ज्ञान से जोड़ता है। हम अद्यतन एवं अधुनातन वैश्विक ज्ञान से आदान-प्रदान अनुवाद के माध्यम से ही कर सकते हैं। आज देश-विदेश के अनूदित साहित्य की आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है। पठनीयता एवं उपयोगिता बढ़ रही है। अनुवाद और कंप्यूटर दक्षता का चोली-दामन का साथ बन रहा है। आयात-निर्यात में भी अनुवाद की रचनात्मक उपादेयता असंदिग्ध हो गई है। अत: आवश्यकता है, योग्यता, दक्षता और निपुणता सिद्ध करने की। भाषा, साहित्य और अनुवाद अब गेयता से, संगीत से, अभिनेयता से भी जुड़ गया है। नाटक, लीलाएँ, सिनेमा, विज्ञापन, शिक्षा, समाज-सेवा, अधिकार चेतना या बोध, नए-नए विमर्श, वैश्विक परिवर्तन और आविष्कार आदि भी अब अनुवाद और अनुवादक ही अवगत करा रहे हैं। इस साधना-सापेक्ष, परकाया-प्रवेश की साधना से संपृक्त राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय महत्व के कार्य की शक्ति को पहचानने और सशक्त बनने-बनाने की यह विधा रोजगार के असीम अवसर प्रदान कर रही है। आप सभी का इस क्षेत्र में स्वागत है, अभिनंदन है।

संदर्भ सूची

1. अनुवाद: डॉ. पूरनचंद टंडन (संपादक); काव्यानुवाद विशेषांक 1, भारतीय अनुवाद परिषद; अप्रैल-सितंबर 2012, संपादकीय पृष्ठ

2. काव्यनुवाद : विचार विमर्श और स्वरूप : डॉ. पूरनचंद टंडन (मुख्य संपादक); प्रथम संस्करण: 2014; भारतीय अनुवाद परिषद; अर्चना प्रिंटर्स; दिल्ली, पृष्ठ 10

3. स्मारिका : प्रो. पूरनचंद टंडन; भारतीय अनुवाद परिषद; प्रकाशन वर्ष 2018; अर्चना प्रिंटर्स; दिल्ली, पृष्ठ 186

4. अनुवाद : प्रो. पूरनचंद टंडन (संपादक); अप्रैल-जून 2017; भारतीय अनुवाद परिषद: अंक-171, पृष्ठ 47

5. अनुवाद: प्रो. पूरनचंद टंडन (संपादक); जनवरी-मार्च 2014; भारतीय अनुवाद परिषद; अंक-158, पृष्ठ 132

6. अनुवाद: प्रो. पूरनचंद टंडन (संपादक); काव्यानुवाद विशेषांक-1; भारतीय अनुवाद परिषद; अप्रैल-सितंबर 2012, संपादकीय पृष्ठ

7. प्रतिष्ठित अनुवादक : डॉ. पूरनचंद टंडन (संपादक); प्रथम संस्करण : 2012; भारतीय अनुवाद परिषद; अर्चना प्रिंटर्स; दिल्ली, पृष्ठ 193

8. रामचरितमानस के अनुवाद : डॉ. गार्गी गुप्त (संपादक); प्रथम संस्करण : 1992, भारतीय अनुवाद परिषद, लिपिका प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 220

9. अनुवाद के विविध आयाम : प्रो. पूरनचंद टंडन, तृतीय संस्कारण : 2017, तक्षशिला प्रकाशन; बालाजी ऑफसेट; दिल्ली, पृष्ठ 1

10. अनुवाद : प्रो. पूरनचंद टंडन (संपादक), अप्रैल-जून 2006; भारतीय अनुवाद परिषद; अंक-127, पृष्ठ-18.

– 'संकल्प', डी-67, शुभम एंक्लेव, पश्चिम विहार, नई दिल्ली

❑❑❑

संस्कृति संवर्धन में अनुवाद की भूमिका

डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड

आज के आधुनिक युग में प्रत्येक क्षेत्र में अनुवाद का महत्व और व्याप्ति बढ़ गई है। आज के व्यस्त मनुष्य के लिए समय, श्रम और संपत्ति के अभाव के कारण संसार की सभी भाषाओं को सीखना संभव नहीं है। अनुवाद की सुविधा ने मनुष्य की उन्नति में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। "अनुवाद की पहचान जीवन के हर क्षेत्र में हो गई है। यह आज सक्रिय साधन हो गया है। प्रशासन, चिकित्सा, कला, संस्कृति, विज्ञान, प्रतिरक्षा, विधि, प्रौद्योगिकी, तकनीकी, अनुसंधान, व्यवसाय, पत्रकारिता, जनसंचार आदि विविध क्षेत्रों में अनुवाद के बिना कार्य नहीं चल सकता है।"[1] वर्तमान समय में अनुवाद की आवश्यकता अत्यंत बढ़ गई है। अनुवाद मनुष्य की संस्कृति संवर्धन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

जिसमें अच्छे संस्कार होते हैं उसे संस्कृति कहते हैं। मनुष्य जीवन की उन्नति के लिए आवश्यक जीवन मूल्यों का समावेश संस्कृति में होता है। मनुष्य, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए संस्कृति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। धर्म, दर्शन, साहित्य और ललित कलाओं का समावेश संस्कृति में होता है। भाषा और संस्कृति एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। भाषा में संस्कृति की सूक्ष्म अभिव्यक्ति होती है। संस्कृति निर्माण के लिए अनेक वर्षों, युगों का समय लगता है। संस्कृति में ऐतिहासिक, धार्मिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक विशेषताएँ समाहित होती हैं। "आज की भारतीय संस्कृति जिसे हम सामासिक संस्कृति कहते हैं-इसके निर्माण में हजारों वर्गो के विभिन्न धर्मो, मतों, एवं विश्वासों की साधना छिपी हुई है। इन सबको आत्मसात कर भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है उसके पीछे अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह संभव नहीं है कि प्रत्येक देशवासी पड़ोसी और दूर के देशों की भाषाएँ समझे। ऐसी समस्या सुलझाने का उपाय अनुवाद ही है। सांस्कृतिक संघ अपने साथ अनुवादकों को लेकर चलते हैं।"[2]

विश्व की विभिन्न भाषाओं में लिखे धर्मग्रंथों के अनुवाद से विश्व संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद से धार्मिक चिंतन एवं अध्यात्मिक तत्वों का प्रसार हुआ है। भारतीय तथा पाश्चात्य धर्मग्रंथों के अनुवाद से धार्मिक मूल्यों के संवर्धन में सहायता हुई है। ईसाई धर्म का 'बाईबिल, इस्लाम धर्म का 'कुरान शरीफ', बौद्ध धर्म का 'त्रिपिटक' आदि अनेक धर्मग्रंथों का विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होने से धार्मिक मूल्य और चिंतन का व्यापक प्रसार हुआ है। भारत के दार्शनिक ग्रंथों के अनुवाद से विश्व में भारतीय दार्शनिक तत्व तथा अध्यात्मिक मूल्यों का प्रसार हुआ है। बौद्ध धर्म, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों के अनुवाद ने प्राचीन विश्व संस्कृति को प्रभावित किया है। जर्मन अनुसंधानकर्ताओं ने भारतीय ज्ञान को विकसित किया। मैक्समूलर द्वारा भारतीय धर्मग्रंथों का अनुवाद हुआ है। मुगल बादशाह दाराशिकोह द्वारा भारतीय उपनिषदों का फारसी भाषा में हुआ अनुवाद उल्लेखनीय है। प्लेटो, अरस्तु, सुकरात आदि जैसे दार्शनिकों के विचारों से पूरा विश्व प्रभावित हुआ है।

साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद से संस्कृति का पुनर्निर्माण कार्य होता है। अनूदित साहित्यिक ग्रंथ संस्कृति का प्रसार करते हैं। साहित्यिक रचनाओं में संस्कृति से जुड़ी बातें अभिव्यक्त होती हैं। साहित्यिक ग्रंथ के अनुवाद से उन सांस्कृतिक मूल्यों का लक्ष्य भाषा में संप्रेषण होता है। संस्कृत, हिंदी, मराठी, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश आदि भाषा में लिखे साहित्यिक ग्रंथों के अनुवाद पूरे विश्व में प्रसिद्ध हुए हैं। कालिदास की संस्कृत रचनाओं का जर्मन महाकवि गेटे द्वारा किया गया अनुवाद अत्यंत लोकप्रिय हुआ है। साहित्यिक ग्रंथों के अनुवाद के कारण विश्व के महान साहित्यकारों के विचारों का परिचय प्राप्त होता है। संस्कृत के कालिदास, हिंदी के कबीर, प्रेमचंद, अंग्रेजी के शेक्सपियर, जर्मनी के गेटे आदि जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों की प्रतिभा और उनके मौलिक विचारों के साथ-साथ उस राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान होती है।

"सृजनात्मक साहित्य में स्थित मानव जीवन के सभी भावों अर्थात् सुखात्मक-दुखात्मक, मानवीय-अमानवीय, कोमल-कठोर, हितकारी-अहितकारी, सुंदर-असुंदर तथा मंगल-अमंगल को अनुवाद के जरिए ही दूसरी भाषा के लोग समझते हैं। इसमें विभिन्न भाषा-भाषी समाज के सामने एक तथ्य स्पष्ट होता है कि मानव जीवन में भाषाएँ भिन्न-भिन्न हैं किंतु सभी प्रकारों के भाव कम अधिक मात्रा में सर्वत्र विद्यमान हैं। संस्कृति चाहे पृथक-पृथक क्यों न हो कम अधिक मात्रा में उनके भावों में समानता अवश्य पाई जाती है। अनुवाद का महत्व इस दृष्टि से भी है कि वह भावात्मक एकता के जरिए एकता का दूत बनता है और दो भिन्न भाषा-भाषियों में सुसंवाद स्थापित करने का महान कार्य करता है।"[3]

भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र के लिए अनुवाद अत्यंत उपयुक्त साधन है। बहुभाषी राष्ट्र होने के कारण यहाँ की संस्कृति भिन्न-भिन्न भाषाओं में बिखरी हुई है। "विशेषत: भारत जैसे देश में विभिन्न भाषी लोगों को आपस में एक-दूसरे की संस्कृति से परिचित होने तथा देश की भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने के लिए अनुवाद अत्यंत आवश्यक है।"[4] भारतीय भाषाओं की सांस्कृतिक परंपरा के परिचय से राष्ट्रीय एकात्मता की भावना वर्धित होती है। भारत के अलग-अलग राज्यों की संस्कृति को समझने के लिए अनूदित साहित्यिक ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम बन गए हैं। भारतीय भाषाओं के अनूदित ग्रंथों से भारत की उप-संस्कृतियों में अनेकता में एकता का परिचय प्राप्त होता है। भारत की श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद से सांस्कृतिक विविधता में एकता का भाव निर्माण होता है। "एक प्रदेश के समाज, साहित्य एवं संस्कृति आदि को दूसरे प्रदेश के लोग अनुवाद के जरिए ही समझ सकते हैं। अनुवाद ही उन्हें एक-दूसरे के करीब ला सकता है। भारत जैसे बहु-प्रदेशी देश में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं को सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक तत्वों का हिंदी में अनुवाद करने से संपूर्ण राष्ट्र प्रादेशिक सीमाओं को तोड़कर एकात्म होने की दिशा में अग्रसर है। अर्थात् राष्ट्रीय एकात्मता को दृढ़ करने का अनुवाद एक महत्वपूर्ण साधन बनता है।"[5]

अनुवाद के कारण ही 'भारतीय साहित्य' की अवधारणा साकार हुई है। साहित्य अकादमी, ज्ञानपीठ, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि संस्थानों ने 'भारतीय साहित्य' की संकल्पना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साने गुरुजी की 'अंतर भारती' ने भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया है। साहित्यिक ग्रंथों के अनुवाद से राष्ट्रीय एकात्मता के साथ-साथ सांस्कृतिक मूल्य और परंपरा को बढ़ावा मिल गया है। इससे भारतीय नागरिकों में भावात्मक एकता प्रस्थापित होने में सहायता हुई है। "भारत भाषा और संस्कृति की दृष्टि से अजायबघर की तरह है। यहाँ 1652 के करीब भाषाएँ बोली जाती हैं तथा विविध धर्मों, भाषाओं, नस्लों के लोग आए तथा यहाँ आकर उन्होंने अपने धर्म, भाषा आदि का विकास किया। भारत की खास पहचान विविधता में एकता है।"[6] साहित्यिक ग्रंथों में संस्कृति से जुड़ी बातें अभिव्यक्त होती है। भिन्न-भिन्न राष्ट्र के आचार-विचार, जीवन मूल्य, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार, परंपराएँ, धार्मिक विधि आदि का लक्ष्य भाषा में संप्रेषण होने से अनूदित ग्रंथों में सांस्कृतिक बातों का अंतरण होता है।

कई बार संस्कृति से जुड़े शब्दों का अनुवाद संभव नहीं हो पाता है। संस्कृति की अभिव्यक्ति करने वाले शब्दों के लिए लक्ष्य भाषा में समान अर्थ की अभिव्यक्ति करने वाला शब्द नहीं मिलता है तब स्रोत

भाषा में प्रयुक्त शब्द का लिप्यंतरण प्रस्तुत कर अनुवाद कार्य किया जाता है। भिन्न भाषी समाज में अपरिचित संस्कृति के शब्दों के प्रयोग के कारण लक्ष्य भाषा के भाषिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में विकास की स्थिति का निर्माण होता है। आंचलिक साहित्य में अंचल विशेष की संस्कृति और लोकभाषा का समावेश होता है। हिंदी के फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन जैसे साहित्यकारों की रचनाओं में अंचल विशेष की स्थानीय रंगत अभिव्यक्त होती है। आंचलिक रूढ़ियाँ, प्रथा, परंपराएँ, खानपान वेशभूषा, रीतिरिवाज, उत्सव-पर्व, रिश्ते-नाते, मुहावरें, कहावतें आदि संस्कृति से जुड़ी बातें अनूदित साहित्य में अभिव्यक्त होती हैं। पारिवारिक रिश्तों में संस्कृति जुड़ी हुई होती है।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान में अनुवाद की अत्यंत सराहनीय भूमिका रही है। हर राष्ट्र की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। भारत जैसे बहुभाषी बहुजातीय बहुधर्मीय, बहुप्रांतीय राष्ट्र में अनुवाद का विशेष महत्व रहा है। विश्व के अनेक राष्ट्रों की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को समझने में अनुवाद की उपयुक्तता सिद्ध हुई है। अनुवाद के जरिए भिन्न भाषा बोलने वाले व्यक्ति एक-दूसरे की संस्कृति समझ सकते हैं। सांस्कृतिक विनिमय के लिए अनुवाद अत्यंत आवश्यक है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में अनुवाद की अत्यंत मौलिक भूमिका रही है। अनुवाद के उदात्त और निष्ठापूर्ण कार्य के कारण भारत के बिखरे हुए सूत्रों में समन्वय प्रस्थापित हुआ है। भारत की अलग-अलग इकाईयों को जोड़ने में अनुवाद का कार्य अत्यंत सराहनीय है। अनुवाद विश्व भाषाओं की संस्कृति को जोड़कर भाषायी भेदभाव के कारण मनुष्य में बनी दूरियाँ मिटाने का कार्य करता है। वह विश्व की बहुभाषी जनता के लिए सशक्त संस्कृति का निर्माण करता है। अनुवाद ज्ञान, विज्ञान, अनुसंधान, साहित्य, दर्शन अध्यात्म आदि का विश्व की विभिन्न भाषाओं में आदान-प्रदान करता है। इससे विश्व संस्कृति समृद्ध बनती जा रही है। अनुवाद ने भारतीय ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व संस्कृति को पुनः जीवित किया है। अनुवाद विश्व की विभिन्न संस्कृतियों से परिचय कराता है। संत ज्ञानेश्वर की 'ज्ञानेश्वरी', रविंद्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजली' जैसे ग्रंथों ने विश्व साहित्य की संकल्पना को विकसित किया है। अनुवाद के कारण विश्व के महान प्रतिभा संपन्न साहित्यकारों की प्रतिभा से परिचय होता है। अनुवाद ने विश्व की महान संस्कृति की संकल्पना को सहज संभव बनाया है। अनुवाद ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को बढ़ावा दिया है। अनुवाद ने मनुष्य की भाषाओं की बाहरी सीमाओं को तोड़कर विश्व मानव की चेतना को आंतरिक रूप से मजबूती प्रदान की है। अनुवाद विश्व संस्कृति के प्रचार के माध्यम से विश्व मानव को ऊर्जा देने का कार्य कर रहा है। दो भिन्न भाषाओं के ग्रंथों के अध्ययन से मनुष्य के विचारों में प्रौढ़ता आती है। लोगों को एक-दूसरे की भावनाओं को समझने में अनुवाद अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के विकास में मदद होती है। अनुवाद यह संपूर्ण मनुष्य जाति के उत्कर्ष के लिए प्रयास करता है। विश्व के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में रहने वाले लोग एक-दूसरे की सभ्यता और संस्कृति से परिचित होते हैं। जैसे - प्रेमचंद के अनूदित साहित्य को पढ़कर ही प्रेमचंद के साहित्य का आस्वाद लिया जा सकता है। प्रेमचंद के साहित्य को पढ़ने के लिए हिंदी भाषा सीखने की आवश्यकता नहीं है।

इसी तरह शेक्सपियर के नाटकों को समझने के लिए शेक्सपियर के अनूदित ग्रंथों का सहारा लिया जा सकता है। डॉ. जी. गोपीनाथन बीसवीं सदी को अनुवाद और अंतरराष्ट्रीय संस्कृति की सदी मानते हैं। विश्व संस्कृति के अध्ययन में अनुवाद एक सेतु की तरह कार्य करता है। अनुवाद के जरिए विश्व में रहने वाले समग्र मानवों के मन को समझने में सुविधा होती है। अनुवाद के माध्यम से विश्व के हर राष्ट्र में रहने वाला व्यक्ति मनुष्य जीवन की प्राचीन परंपरा से जुड़ जाता है। अनुवाद मनुष्य की विवेकशीलता बढ़ाता है। नागरिकों में अपने राष्ट्र के प्रति सम्मान और गौरव की अनुभूति बढ़ जाती है। अनुवाद दूर-दूर की सीमा में विभाजित मानव समुदाय की दूरियाँ मिटाकर उन्हें एक-दूसरे के समीप लाता है।

इससे विश्व में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना का प्रसार होता है। प्रत्येक मानव समुदाय की संस्कृति अलग-अलग होती है। बोलचाल की भाषाएँ परंपराएँ रीति-रिवाज, वेशभूषा, खानपान आदि में भिन्नता दिखाई देती है। अनुवाद के माध्यम से भिन्न भाषा बोलने वाले

समाज को समझने में सहायता मिलती है। अनुवाद के कारण भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रहने वाले लागों की भावनाओं, विचारों तथा जीवनविषयक दृष्टिकोण समझने में आसानी होती है। एक-दूसरे को समझने के कारण प्रतिद्वंद्विता, असहिष्णुता तथा संघर्ष की स्थितियाँ नष्ट होकर लोगों में उदार दृष्टिकोण बढ़ जाता है। अनुवाद मानव-मानव के बीच की दूरियाँ मिटाकर उनमें आपसी प्रेम सद्भावना बढ़ाता है।

"अनुवाद के सहारे विश्व साहित्य का निर्माण एवं विकास हुआ है। अनुवाद के द्वारा एक देश अन्य देशों के विचारों, कार्यों, सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक हलचलों, अनुभवों, प्रयासों और अनुबंधों को परस्पर लाकर नए ज्ञानस्त्रों के कपाट खोलता है।"[7] अनुवाद ने विश्व की सभी भाषाओं को एक-दूसरे से जोड़ने का कार्य किया है। "वस्तुतः धर्म का मूल भाव मानव धर्म है। इस मानव धर्म को इस विशाल भूतल पर प्रतिष्ठापित करना मानव के उन्नयन के लिए आवश्यक है इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए अनुवाद का ही आश्रय लेना पड़ता है। आज अनुवाद ही एक ऐसा साधन है जो विविध देशों में दुनिया के कोने-कोने में मानव धर्म के प्रसार हेतु उपयोग में लाया जा सकता है।"

आधुनिक युग में अनुवाद का महत्व दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। विश्व की विभिन्न भाषाओं में लिखे ग्रंथों के अनुवाद से दूसरे राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति से परिचय प्राप्त हो रहा है। अनुवाद के जरिए हर राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति की पहचान होने में सुविधा हो रही है। अनुवाद विश्व की विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त सभ्यता और संस्कृति की पहचान कराने का श्रेष्ठ माध्यम है। अनूदित ग्रंथों ने विश्व संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार किया है। अनूदित ग्रंथों के कारण विश्व में रहने वाले सभी जाति, धर्म, संप्रदायों के मनुष्यों के बीच की दूरियाँ मिट रही हैं। अनुवाद विश्व के सभी राष्ट्रों की संस्कृतियों को एक-दूसरे से जोड़ रहा है। अनुवाद से विश्व मानव की अवधारणा साकार होने में सहयोग प्राप्त हो रहा है। साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद ने राष्ट्र की सीमाओं को लाँघकर विश्व साहित्य की संकल्पना को मूर्त रूप दिया है। अनुवाद ने मनुष्य की संकीर्ण विचारधारा को नष्ट कर मुक्त और उदार रूप दिया है। संस्कृति को एकरस और एकाकी रूप से निकालकर व्यापक बनाया है। अनुवाद विश्व के सभी राष्ट्रों में रहने वाले लोगों में सुसंवाद स्थापित करता है।अनुवाद विश्व संस्कृति का सांस्कृतिक सेतु है। अनुवाद ने विश्व के प्रत्येक कोने में रहने वाले मनुष्य को एक-दूसरे से जोड़ने का काम किया है। अनुवाद ने विश्वचेतना निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनुवाद ने विश्व मानव की अवधारणा को साकार किया है।

संदर्भ सूची

1. अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार - डॉ. अनुज प्रताप सिंह, पृ. 60
2. वही, पृ. 34-35
3. अनुवाद चिंतन - डॉ. अर्जुन चव्हाण, पृ 1.19
4. वही, पृ. 33
5. वही, पृ. 34
6. आंचलिकअनुवाद के सिद्धांत- डॉ. रामगोपाल सिंह जादौन, पृ. 230
7. अनुवाद स्वरूप एवं समस्याएँ - डॉ- गिरीश सोलंकी, पृ. 53

– अध्यक्षा, हिंदी विभाग, वसुंधरा कला महाविद्यालय, जुले, सोलापुर, महाराष्ट्र।

❑❑❑

अनुवाद : एक परिचर्चा - पूर्वोत्तर क्षेत्र की भाषाओं के संदर्भ में

प्रो. दिनेश कुमार चौबे

'अनुवाद' शब्द का संबंध 'पुनरावृत्ति' से है जो एक भाषा से दूसरी भाषा में होती है। अनुवाद मूल रचना को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करता है। एक भाषा में प्रकट किए गए भावों-विचारों को ज्यों का त्यों दूसरी भाषा में प्रकट करने को अनुवाद कहते हैं। कहे हुए को फिर से कहने में दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं - उसका विषय 'कथ्य' और 'भाषा'। कथ्य को अच्छी तरह समझने के लिए किसी भी अनुवादक को विषय और भाषा दोनों की बहुत अच्छी जानकारी होनी चाहिए। मूल रचना के भाव, विचार या संदेश को ज्यों का त्यों बिना घटाए-बढ़ाए वही प्रभाव डालते हुए दूसरी भाषा में कहना अनुवादक का कर्तव्य होता है। दो भिन्न भाषा-भाषी समुदायों के बीच विचारों के आदान-प्रदान के लिए अनुवादक मध्यस्थ की भूमिका निभाता है।

अनुवाद एक कला है। कला के अन्य रूपों की भांति इसमें भी कुशल होने के लिए परिश्रम एवं निष्ठा की आवश्यकता है। यह सृजनशील लेखन से किसी भी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है। वस्तुत: मौलिक लेखन से अनुवाद अधिक दु:साध्य एवं क्लिष्ट कार्य है। अनुवादक का उत्तरदायित्व दोहरा होता है उसे एक ओर मूल पाठ के प्रति निष्ठावान रहना है, साथ ही मूल लेखक के भाव-शैली को यथासाध्य प्रतिधारित करना है, तो दूसरी ओर उसे अपना कौशल एवं कला भी दर्शानी होती है। अनुवादक एक सेतु की भूमिका निभाने के कारण दो भाषाओं, भाषाओं के दोनों साहित्यों, दो संस्कृतियों-सभ्यताओं तथा सामाजिक भाव-बोध को अनुवाद के माध्यम से पाटने का कठिन दायित्व पूरा करता है। इसके लिए अनुवादक को स्रोत एवं लक्ष्य दोनों भाषाओं के साथ उनकी सम या विषम संस्कृतियों तथा समाजों का पूरा ज्ञान होना चाहिए। स्रोत भाषा (मूल भाषा) वह है जिससे अनुवाद किया जाता है और वह भाषा जिसमें अनुवाद किया जाता है लक्ष्य भाषा कहलाती है। यदि अनुवादक असमिया/खासी के मूल पाठ को हिंदी में रूपांतरित करता है तो असमिया/खासी स्रोत भाषा और हिंदी लक्ष्य भाषा कहलाएगी।

चूँकि प्रत्येक भाषा का अपना एक पृथक अस्तित्व होता है, उसकी अपनी एक विशिष्ट संरचना होती है, एक विशिष्ट शैली होती है, इसलिए अनुवादक को अनुवाद करते समय स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की प्रकृति को दृष्टि में रखकर उनकी भिन्नताओं एवं समस्याओं को समझकर अनुवाद-प्रक्रिया में प्रवृत्त होना पड़ता है। यथा-

1. मई कितापखन पढ़िसों।
   मैं पुस्तक पढ़ता हूँ।
2. मई कलों हि आहिबो ना लागे।
   मैंने कहा, उसे नहीं आना चाहिए।
3. तुमि जाबा देई।
   ठीक है, तुम जाना।

यहाँ कथन की शैली, भाव और भाषा की प्रवृत्ति का ध्यान रखना आवश्यक है। तीसरे वाक्य में 'देई' शब्द प्यार से जोर देकर कहा गया है जो हिंदी में 'ठीक है' कहकर ही समझाया जा सकता है।

असमिया भाषा के अनुभूतिपरक या स्वराघात की प्रवृत्ति अनुवादक को समझना चाहिए। यथा-

बारू, देई, सोन।

कोवा सोन बारू।

ठीक है बोलो।

आको आहिबा देई -

फिर जरूर आना - अच्छा।

तुमि काइलैई तात जाबा सोन।

तुम कल वहाँ जाना तो जरा।

खासी में 'म' की तुलना असमिया के 'बारू' से की जा सकती है।

ऊ ता शिम इआ का जनी कुप जो म।

उसने मेरा शाल लिया है, हाँ।

अनुवाद-प्रक्रिया के दो चरण प्रमुख हैं -

क. अर्थ ग्रहण-मूल रचना का अर्थ ग्रहण करना (समझना)

ख. संप्रेषण - दूसरे तक पहुँचाने के लिए अपनी भाषा में वही बात कहना (कथन) समझने की प्रक्रिया ऐसी है जिससे हर सजग पाठक भी गुजरता है। कथा साहित्य पढ़ते समय एकाध शब्द के अर्थ स्पष्ट न होने पर भी समझने में बहुत प्रभाव नहीं पड़ता। किंतु अनुवादक को वह स्वतंत्रता नहीं है। वह कुछ भी जोड़ने-घटाने का अधिकार नहीं रखता।

शब्द-बोध : अर्थ ग्रहण की अनूदित रचना को ठीक से पढ़कर क्लिष्ट शब्दों के अर्थ को शब्दकोश की सहायता से प्रसंगानुसार अर्थ समझना आवश्यक है।

उदाहरण : My brother is under treatment of Dr. D. khar चिकित्सा

His treatment of the subject is one sided प्रतिपादन

वाक्य-बोध : वाक्यों में शब्द क्रम पूर्ण वाक्य पढ़कर अर्थ का बोध होता है। अनुवाद शब्द की जगह शब्द रखने से नहीं होता।

उदाहरण : वह इस कार्य में कुशल है।

एइ क्षेत्रत सी दक्ष।

रचना-बोध : अनुदित रचना का अच्छा ज्ञान होना क्यों चाहिए। रचना का अनुवाद होता है शब्दों या वाक्यों का नहीं। अनुवाद की प्रथम प्रक्रिया अर्थग्रहण में तीन मूलभूत बातें हैं -

(i) शब्द का सही ज्ञान

(ii) शब्दों का उचित प्रयोग ताकि वाक्य का सही अर्थ स्पष्ट हो

(iii) रचना या विषय की सही जानकारी : साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, परिवेश की जानकारी।

संप्रेषण : अनुवादक की कुशलता इस बात में है कि वह अपने पाठकों के मन पर वही और वैसा प्रभाव डालने में सफल हो जैसा मूल लेखक की कृति ने पाठकों के मन पर डाला होगा। शब्द की समतुल्यता के सिद्धांत में समतुल्यता सबसे पहले शब्द के स्तर पर सिद्ध करनी होती है। शब्दों के पर्याय न मिलने पर समान अर्थ देने वाले प्रसंगानुसार शब्द चुनना चाहिए। श्लिष्ट शब्दों में सावधानी की आवश्यकता है।

वाक्य की समानार्थकता : अनुवादक को सही और समानार्थक वाक्य बनाने की क्षमता होनी चाहिए।

It was a pleasant surprise to me.

'इसमें मुझे एक सुखद आश्चर्य हुआ'। की जगह उचित है :

इसमें मुझे आश्चर्य भी हुआ और आनंद भी।

एइटो मोर बावे बर आनंद आरू आश्चर्य।

रचना की समानार्थकता : अनुवादक को अनूदित रचना को एक स्वतंत्र रचना या अवतरण मानकर पठनीय बनाना चाहिए ताकि उसमें धारा-प्रवाह खंडित न हो पाए।

अनुवाद के कई भेद हैं : भावानुवाद, सारानुवाद, स्वतंत्र अनुवाद, साहित्यिक अनुवाद आदि।

भावानुवाद : अर्थ व्यंजना के आधार पर किया गया अनुवाद है। इसमें मूल कृति के विचार-क्रम का अनुसरण करना आवश्यक है। इस विचार-क्रम को प्रस्तुत करने वाले विवरणों को विस्तार देने की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ ध्यातव्य है कि अनुवाद का उद्देश्य शब्दार्थ प्रस्तुत करना नहीं वरन् संकेतार्थ प्रस्तुत करना है। भावानुवाद में एक प्रकार की मौलिकता होती है।

सारानुवाद : स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में क्रमबद्ध और संक्षेप में किए गए सार (मूल) के अनुवाद को सारानुवाद कहते हैं जो मूल कृति के मुख्य कथ्य को प्रकट करता है। इसमें सबसे पहले अर्थ ग्रहण की आवश्यकता होती है। इसमें पाठ का सार मूल भाषा में

तैयार किया जाता है तत्पश्चात् उस सारांश का लक्ष्य भाषा में अनुवाद किया जाता है।

स्वतंत्र अनुवाद : स्वतंत्र अनुवाद में अनुवादक मूल भाषा में कही बात को अपने ढंग से कहने की पूरी छूट ले सकता है किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि कहने के क्रम में कोई दूसरी बात या विरोधी बात कही जाए।

साहित्यिक अनुवाद में कल्पनाशक्ति एवं सर्जनात्मक क्षमता की अपेक्षा होती है इसमें भावानुवाद पर बल दिया जाता है शब्दानुवाद पर नहीं। इसके लिए दोनों भाषाओं की पकड़ अनुवादक को होनी चाहिए। साथ ही मूल रचना की प्रवृत्ति और प्रस्तुति की भी अच्छी जानकारी होनी चाहिए। अरुणाचल प्रदेश में लुमेरदाई कृत 'कइनार मूल्य' 'Bride Price' से 'कन्या का मूल्य' में वहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक ज्ञान अनुवाद के लिए आवश्यक है। गारो में बांग्ला 'कृतवासी रामायण' का अनुवाद इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। मणिपुर में इबोहल सिंह कांङ्जम, अरुणाचल में ताखेकानी के गालो से अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

इस तरह के अनुवाद में साहित्यिक कृति में प्रयुक्त मुहावरों, लोकोक्तियों को अपनी भाषा में ढालना या उसके स्थान पर लक्ष्य भाषा के मुहावरों, कहावतों का इस प्रकार प्रयोग करना कि वह अनूदित भाषा में सटीक बैठे, यह अति महत्वपूर्ण है।

अनुवाद की सीमाएँ : सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य : भाषा और संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है। यहाँ संस्कृति का व्यापक अर्थ में प्रयोग है। संस्कृति का भौतिक रूप (खान-पान, आचार-विचार, दृष्टि, परंपराएँ) दोनों सम्मिलित हैं। अनुवाद में सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ वहाँ खड़ी होती हैं जहाँ स्रोत भाषा की सांस्कृतिक विशेषताएँ लक्ष्य भाषा की संस्कृति में विद्यमान नहीं होती।

असमिया भाषा के सांस्कृतिक देशज शब्द - पोन, गुछि, बिहुवान, बरकापोर, लाओपानी रिंगोरबाट (कम दूरी का रास्ता) दिकसौ बाट (अधिक दूरी का रास्ता) संबंधों के नाम जेठा, जेठाई, पेहा, पेही हिंदी में (फुफा, फुवा, बुआ) सालपति, जेठपति दोनों के लिए (साढू) आदि।

सर्वनाम - एऊँ, एखेत - ये सि - वह (He) ताई - वह (She)

विशेषण - विशेष्य, पानी केंचुआ (सबसे छोटा बच्चा) एकुरी मानूह (बीस व्यक्ति) पानीर मिठै - सबसे आसान।

इस प्रकार शब्दों का हिंदी में अनुवाद नहीं किया जा सकता। ऐसे शब्दों के पीछे एक सुदीर्घ परंपरा होती है, एक खास माहौल का बोध होता है । इसका शब्दानुवाद करने से सांस्कृतिक संदर्भ नष्ट हो जाने की आशंका रहती है। अंग्रेजी में ताऊ, फूफा, मोसा सभी के लिए एक शब्द (Uncle) चचेरा भाई, चचेरी बहन, सौसेरा भाई, ममेरी बहन, ममेरा भाई (Cousin).

ख. क्षेत्रीय सीमाएँ : भाषाओं में ध्वनि व्यवस्था, शब्द-भंडार, रूप रचना, वाक्य रचना का अंतर अनुवाद के लिए कठिनाई भरी चुनौती पैदा करता है। यथा - गरू - असमिया में पशु के साथ मूर्ख का द्योतक है। हिंदी में पशु।

वृहस्पति - तमिल में मूर्ख या नासमझ, हिंदी में बुद्धिमान

कनक - पंजाबी में गेहूँ, हिंदी में स्वर्ण

मिथुन - अरुणाचल में पशु विशेष, हिंदी में नर मादा, स्त्री-पुरुष का जोड़ा, राशि विशेष का नाम

खुबलेई - खासी में अभिवादन और कृतज्ञता ज्ञापन, हिंदी में धन्यवाद।

आज के अनुवाद जगत की दुखद स्थिति यह है कि भारतीय भाषाओं के अंग्रेजी अनुवादक अनेक हैं किंतु एक भारतीय भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने वालों की संख्या ऊँगली पर गिनी जा सकती है। असमिया भाषी यदि आदी या मणिपुरी, या गारो में अनुवाद करें तो स्थिति सुधरेगी। यहाँ तक कि प्राय: अंग्रेजी अनुवाद को मास्टर कापी की तरह प्रयोग किया जाता है। कई नामी-गिरामी संस्थाएँ भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद करने के लिए अंग्रेजी अनुवाद को सेतु बनाती हैं। इसका एक कारण यह है कि भारतीय भाषाओं को सीखने-सिखाने की ओर गंभीर प्रयास नहीं किए जा रहे हैं। इस दिशा में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण साबित हो सकती हैं भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद प्रारंभ करने की आवश्यकता है। प्रचार माध्यम में दूरदर्शन क्षेत्रीय भाषाओं में प्रस्तुति कर अनुवादकों को प्रोत्साहित करें। हर विश्वविद्यालय में अंतरभारतीय

भाषाओं के अनुवाद और प्रकाशन की सुविधा हो। प्रशासनिक स्तर पर इस दिशा में कार्य किए जाएँ तो अपने देश में अनुवाद के लिए अंग्रेजी की बैसाखी की जरूरत नहीं पड़ेगी। पाठ्य पुस्तकों, व्याकरण एवं शब्द कोश - निर्माण में भी क्षेत्रीय भाषाओं की प्रकृति का ध्यान रखा जाना आवश्यक है।

– प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग

❑❑❑

स्वर्गीय इ. के. दिवाकरन पोट्टी : अनुकरणीय अनुवादक व्यक्तित्व

डॉ. पी. लता

प्रेमचंद साहित्य तथा कई श्रेष्ठतम विदेशी रचनाओं के मलयालम अनुवादक श्री इ. के. दिवाकरन पोट्टी ने साहित्य एवं समाज इन दोनों क्षेत्रों में अपने अनुपम सेवामार्ग से अपनी अमिट छाप छोड़ी है। 'इटवनमठं' घर पुत्तनचिरा गाँव, जिला तृशूर, राज्य केरल में 28 अप्रैल 1918 को उनका जन्म हुआ। घर के नाम की अंग्रेजी वर्तनी (Etavana matam) का तथा पिता के नाम की अंग्रेज़ी वर्तनी (Krishnan Potti) मिलकर उन्हें इ. के. (E. K.) नाम मिला। वे माता-पिता की छह संतानों में पाँचवीं थे। पिता मंदिर में पुजारी थे। सातवीं कक्षा की पढ़ाई के बाद करीब चार साल पूजा कार्यों में अपने पिता की मदद की। उनके इस त्याग ने उनके सहजों की शिक्षा का मार्ग सुगम बना दिया। फिर हाईस्कूल की शिक्षा पूरी की। दसवीं कक्षा की परीक्षा में मलयालम के पर्चे में सर्वप्रथम आने के उपलक्ष्य में वे पुरस्कृत हुए। इस पर दैनिक समाचार इस प्रकार था- "पिछली दसवीं कक्षा की परीक्षा में मलयालम में सर्वप्रथम आए इ. के. दिवाकरन पोट्टी को वी. के. अच्युतमेनोन स्मारक स्वर्णपदक प्रदान किया गया है।"

पोट्टी जी ने हाईस्कूल की तीनों कक्षाओं में ऐच्छिक विषय के रूप में हिंदी पढ़ी। स्कूल के हिंदी अध्यापक श्री परमेश्वर मेनोन की प्रेरणा से हाईस्कूल शिक्षा के दरमियान 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की प्राथमिक, मध्यमा तथा राष्ट्रभाषा विशारद परिक्षाएँ पास कीं। सातवीं कक्षा के बाद के चार सालों में पूजा कार्यों में पिता जी के मददगार रहने के साथ ही साथ एक संस्कृत अध्यापक के मठ में जाकर संस्कृत भी पढ़ी।

सन् 1950 में हाईस्कूल में हिंदी अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए तो उन्होंने मलयालम और हिंदी में उच्च अध्ययन भी समांतर रूप से किया। शैक्षिक योग्यताएँ इस प्रकार हैं- सन् 1951 में राष्ट्रभाषा प्रवीण तथा हिंदी प्रचारक परीक्षा (दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास) सन् 1952 में 'मलयालम विद्वान' (मद्रास विश्वविद्यालय), सन् 1957 में मलयालम में स्नातकोत्तर उपाधि (केरल विश्वविद्यालय), सन् 1960 में मलयालम तथा इतिहास ऐच्छिक विषयों में बी. एड़ उपाधि (ब्रेण्णन ट्रेनिंग कॉलेज, तलश्शेरी) आदि। 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' का 'हिंदी प्रचारक' प्रमाण पत्र प्राप्त हुआ तो वे हिंदी प्रचारक भी हो गए। हाईस्कूल के उनके हिंदी अध्यापक श्री परमेश्वर मेनोन स्कूली शिक्षा पूरी होने के बाद भी उन्हें पढ़ने को हिंदी पुस्तकें देते थे, जो हिंदी कथा साहित्य, विशेषकर प्रेमचंद कथा साहित्य पर उनके लगाव का हेतु बनी। दक्षिण भारत में हिंदी प्रचारार्थ मद्रास में स्थापित 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' का स्थापना वर्ष ही पोट्टी जी का जन्म वर्ष है।

श्री इ. के. दिवाकरन पोट्टी अपने जन्म स्थान पुत्तनचिरा गाँव के सशक्त नायक थे। 'पोट्टी' शब्द का मलयालम अर्थ है 'संरक्षक'। (पोट्टी ब्राह्मण उपजाति का नाम भी है) अपने नाम को सार्थक करके पोट्टी जी अपने पिछड़े गाँव के सच्चे संरक्षक रहे। उन्होंने अपने सामाजिक-राजनैतिक कार्य-कलापों के अनुबंध स्वरूप मलयालम से साहित्य-रचना शुरू की। हाईस्कूल शिक्षा के दौरान की उनकी लघु कथाएँ और कविताएँ मलयालम

साप्ताहिकों के बाल स्तंभों में छपती थीं। नवीं कक्षा में पढ़ते वक्त सन् 1939 में 51 मलयालम कविताओं का संग्रह 'प्रथमांजलि' निकला। सन् 1949 में प्रकाशित कविता संकलन है 'नालत्ते प्रभातं' (कल का प्रभात)। तीन कविताओं का संकलन है 'अषिक्कोटिन्टे आह्वानं' (अषिक्कोटु का आह्वान)। ये कविताएँ श्री पनंपल्लि गोविंद मेनो की सरकार द्वारा अषिक्कोटु नामक स्थान में किए गए कृषक प्रहार के खिलाफ़ लिखी गई थीं। कोच्ची (रियासत) के राजा के 'ऐक्य केरल' संबंधी घोषणा पर व्यंग्यस्वरूप सन् 1948 में लिखित तुल्लत काव्य है 'अरियिट्टु वाष्च्चा'। इस काव्य की पंक्तियों का प्रगतिवादी विचार अधिकारियों के अनिष्ट का कारण बना, अत: यह काव्य कोच्ची सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। कोच्ची (रियासत) से तिरुवितांकूर (रियासत) में रहती प्रेयसी को भेजता संदेशं है 'खेद्योत संदेश' नामक संदेश काव्य। 'विजय रंगं' (विजय रंग, 1943), 'बलिपीठत्तिल' (बलिपीठ पर, 1943) आदि नाटक हैं। 'हिंदी-मलयालम निघण्टु' सन् 1956 में 'साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ, कोट्टयम' द्वारा प्रकाशित कोश है।

पोट्टी जी की मौलिक रचनाओं में अंकुरित प्रगतिवादी चिंतन 'अनुवाद साहित्य' में पनप उठा। 1 अगस्त 1997 में छपी 'देशाभिमानी' साप्ताहिक पत्रिका का मुखचित्र पोट्टी जी का था। मुखचित्र का 'अधोलेखन था 'विप्लवकारियाय विवर्तकन' (क्रांतिकारी अनुवादक)। मलयालम में 'विवर्त्तनत्तिन्टे कुलपति' (अनुवाद के कुलपति) विशेषण से विभूषित पोट्टी जी निरंतर अनुवाद करते रहे। समाज के पिछड़ों पीड़ितों तथा उपेक्षितों पर लिखी रचनाओं को उन्होंने अनुवाद के लिए चुना। अत: उनकी अनूदित रचनाएँ जीवनगंधी निकलीं। उनके मत में अनुवाद का विषय सर्वप्रमुख है। अत: विषय-चयन में विशेष ध्यान देना है। उन्होंने प्रेमचंद, अन्य कुछ हिंदी लेखकों तथा विदेशी लेखकों की सामाजिक तथा चिंतोद्दीपक रचनाओं का मलयालम में अनुवाद किया। विदेशी भाषा कृतियों के मलयालम अनुवाद के लिए उन कृतियों के हिंदी अनुवादों को आधार बनाया।

पोट्टी जी प्रेमचंद साहित्य के गहन अध्येता थे। प्रेमचंद जी की साहित्य रचना-प्रतिबद्धता तथा यथावत् जीवन-चित्रण शैली से वे प्रभावित हुए। अपने गाँव की समस्याओं को सुलझाने में सतत कार्यरत रहे। पोट्टी जी ने प्रेमचंद की रचनाओं का मूल्य समझ लिया। हिंदी के सामाजिक कथाकार तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कथाकार प्रेमचंद के समस्त उपन्यासों, एक नाटक, एक लंबी कहानी तथा पाँच कहानियों का उन्होंने मलयालम में अनुवाद किया। अनूदित उपन्यासों के नाम और प्रकाशन वर्ष इस प्रकार हैं- 'गबन' का अनुवाद 'वंचना' (1949), 'गोदान' का अनुवाद 'गोदानं' (1953), 'वरदान' का अनुवाद 'वरदानं' (1954), 'सेवासदन' का अनुवाद 'सेवासदनं' (1955), 'प्रेमाश्रम' का अनुवाद 'प्रेमाश्रमं' (1956), 'कायाकल्प' का अनुवाद 'कायाकल्पं' (1962), 'कर्मभूमि' का अनुवाद उसी नाम से (1963), रंगभूमी का अनुवाद उसी नाम से (1976), 'मंगल सूत्र' का अनुवाद 'मंगल सूत्रं' आदि 'डी. सी. बुक्स, कोट्टयम' तथा बाकी का 'साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ, कोट्टयम' ने प्रकाशन किया। प्रेमचंद के 'प्रेम की वेदी' नाटक का अनुवाद 'प्रेमवेदी' (1950, प्रकाशक- 'मंगलोदयं' तृशूर) स्त्री पक्ष पर लिखी पाँच कहानियों - दुर्गा मंदिर (अनुवाद - दुर्गाक्षेत्रं), प्रायश्चित्तं (अनुवाद पश्चात्ताप), शांति, सती, सुभागी आदि के अनुवादों का संकलन है। 'प्रेम पंचमी' (1948, प्रकाशक- 'मंगलोदयं, तृशूर')। लंबी कहानी 'सुहाग का शव', 'मण्णटिञ्ञ मंगल्यं' नाम से अनूदित होकर पुस्तकाकार में उपन्यास जैसा प्रकाशित हुआ। 'एक कुत्ते की आत्मकथा' (बाल साहित्य) का अनुवाद है 'ओरु पट्टियुटे आत्मकथा'।

पोट्टी जी द्वारा अनूदित अन्य हिंदी लेखकों की रचनाएँ इस प्रकार हैं- राहुल सांकृत्यायन के 'वोल्गा से गंगा तक' का अनुवाद 'वोल्गा मुतल गंगा वरे' (1954, चिंता पब्लिकेशंस, तिरुवनंतपुरम), यशपाल के 'पार्टी कॉमरेड' उपन्यास का उसी नाम से अनुवाद (1955, मंगलोदयं, तृशूर), सियाराम शरणगुप्त के 'नारी' उपन्यास का उसी नाम से अनुवाद (1958, मंगलोदंय, तृशूर), विविध कहानीकारों की आठ कहानियों का अनुवाद 'वषिपिष्च्चवर' (1966, मंगलोदयं, तृशूर) आदि।

पोट्टी जी 'प्रेमचंद साहित्य' के मलयालम अनुवादक के रूप में विख्यात हैं। उनके अन्य अनुवादकों को अधिक ख्याति नहीं मिली है। अपनी अनूदित रचनाओं के बारे में पोट्टी जी का मत है- "ऐसा कहना सही नहीं है कि मैंने अन्य लेखकों को छोड़ा। यशपाल, राहुल

सांकृत्यायन, सियाराम शरणगुप्त आदि की कृतियों का मैंने अनुवाद किया। प्रेमचंद के बारे में यह कहना चाहता हूँ कि रूस में माक्सिम गोर्की को जो स्थान था वही स्थान भारत में प्रेमचंद को है।" यशपाल, प्रेमचंद आदि हिंदी लेखकों में मलयालम में कौन अधिक प्रतिष्ठित हुए, इस संबंध में उनका जवाब है- "मलयालम में प्रेमचंद तिरस्कृत और यशपाल स्वीकृत हुए, मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ। यशपाल और राहुल सांकृत्यायन दोनों कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य रहे थे। प्रेमचंद पक्के प्रगतिशील रहते हुए भी किसी विशेष दल के पक्षधर नहीं थे। जहाँ कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव सशक्त था, ऐसे स्थानों में यशपाल चर्चित हुए, यह सहज भी है।" भारतीय साहित्य में पाश्चात्य कथा रचनाओं की समकक्ष रचनाएँ नहीं निकली हैं। इस मत के विरोध में उनका कहना है- "प्रेमचंद की कथा रचनाएँ विश्व साहित्य की कथा रचनाओं के समशीर्ष बनी हैं। जैसे- 'बड़े घर की बेटी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'नमक का दारोगा', सवा सेर गेहूँ', 'परीक्षा' आदि। ये कहानियाँ विश्व भाषाओं में अनूदित होकर सर्वत्र प्रचार न पाने के कारण तहखाने के जलते दीप रह गई हैं।"

पोट्टी जी द्वारा मलयालम भाषा में अनूदित की गई विदेशी भाषा रचनाएँ हैं- विक्टर ह्यूगो के फ्रांसीसी उपन्यास 'sentence to death' का अनुवाद 'कषुमरं' (1947) खलील जिब्रान के 'The mad man' नामक दार्शनिक गद्य संकलन का अनुवाद 'भ्रान्तनं' (1950), लोणार्ड फ्रांक के जर्मन उपन्यास 'Karl and Anna' का अनुवाद 'अन्नयुं करोलुं' (1951), टर्गनेव के रूसी उपन्यास 'Asya' का अनुवाद अशया (1956), विलियम लेंसेस के अंग्रेजी उपन्यास का 'Butcher's house' अनुवाद 'कशाप्पुशाला' (1960) आदि। इन अनुवादों का प्रकाशन 'साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ, कोट्टयम' ने किया। जूलीयस फ्यूचिक के 'Notes from the gallows' संस्मरण का अनुवाद 'कोलमरत्तिल निन्नुल्ला कुरिप्पुकल' (1955) 'प्रभात बुक्स, तिरुवनंतपुरम' ने प्रकशित किया। हालकेन के आइरिश उपन्यास 'Barbed wires' का अनुवाद 'कंपि वेलिकल' (प्रकाशक - 'केरल बुक हाउस. कोट्टुड्ल्लूर')।

अपनी अध्यापनवृत्ति तथा समाज सेवा के दरमियान इतनी स्वदेशी और विदेशी भाषाओं की रचनाओं का समर्पित भाव से मातृभाषा मलयालम में सुंदर अनुवाद किए। स्वर्गीय इ. के. दिवाकरन पोट्टी जी का मैं मन से नमन करती हूँ।

– प्रोफेसर और अध्यक्षा (पूर्व) हिंदी विभाग, सरकारी महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम्

❑❑❑

अनुवाद विधा और आधुनिक हिंदी साहित्य तथा प्रयोजनमूलक हिंदी में अनुवाद : स्वरूप एवं संभावनाएँ

डॉ. अनुराग सिंह चौहान

आधुनिक भारत के नवसृजन (सामाजिक व सांस्कृतिक जागरण) के पार्श्व में समाजसुधारकों, राजनीतिज्ञों व बुद्धिजीवियों का अनुवाद की महत्ता अनुभूत करना महत्वपूर्ण कारक रहा है। आधुनिक भारतीय भाषाओं द्वारा ज्ञान-विज्ञान को स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में संचरण करने की श्रमसाध्य प्रक्रिया ने अनुवाद विधा के तथ्यपरक रोचक स्वरूप से सुधीजन को अवगत करवाया। विदेशी भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी भाषा में भारतीय सभ्यता/संस्कृति, साहित्य व अन्य विधाओं के अनुवाद की परंपरा प्रारंभ हुई। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रणेता भारतेंदु ने देशी-विदेशी भाषाओं से अनुवाद परंपरा का प्रणयन कर समकालीन रचनाकारों को अनूदित सृजन कर्म की प्रेरणा प्रदान की। हिंदी साहित्य के इस कालखंड में नाटक उपन्यास आदि विधाओं के अनूदित सृजन कर्म ने लेखन को अन्य भाषा-भाषी स्वरूप से साक्षात् होने की आधारभूमि सृजित की।

कालांतर में द्विवेदी युग में अनुवाद की यह गौरवशाली परंपरा सशक्त प्रश्रय पाकर पल्लवित-पुष्पित होती है। वस्तुतः भाव संवहन की आदान-प्रदान प्रक्रिया सहज समन्वय हेतु अनुवाद को सांस्कृतिक आधार प्रदान करती है। इन साहित्यकारों ने अनुवाद विधा को भाषा की अभिव्यक्तिपरक विधायक शक्ति के रूप में सहज अंगीकार किया। भारतीय समाज के सांस्कृतिक/सामाजिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में पश्चिमी विचारधारा 'रिनैसाँ' पुनर्जागरण अथवा सुधार 'रिफार्मेशन' का भ्रमित स्वरूप यत्र-तत्र दृष्टव्य है।

यह विचारधारा नवीन संदर्भ लिए भारतीय परिवेश व परंपराओं में निज अस्तित्व तलाशती नज़र आई। वस्तुतः 'रिनैसा' मध्ययुगीन भाव-बोध के प्रति स्वघोषित विद्रोह था इसके केंद्र में मनुष्य आधारित मानवतावादी संस्कृति रही। कालांतर में मानवतावादी संस्कृति से व्यक्ति केंद्रित व्यक्तिवाद सांस्कृतिक चक्र में जड़े तलाशता लभ्य हुआ। इस कालखंड के राजनैतिक व्यक्तित्वों यथा: गोखले, तिलक, दादाभाई नौरोजी आदि के विचारों ने साहित्यिक परिवेश पर गहन प्रभाव डाला।

भारतीय भाषाओं मराठी, कन्नड़, बांग्ला आदि पर नवजागरण प्रक्रिया का गहन प्रभाव पड़ा, परिणामस्वरूप माइकेल मधुसूदन दत्त, नवीन चंद्र सेन सरीखे लेखकों की कृतियाँ अनूदित स्वरूप में लभ्य हुई। वस्तुतः हिंदी समीक्षकों ने साहित्य के काव्यात्मक रूप का अत्याधिक अनुशीलन किया, किंतु अनुवाद-कार्य का सहज सौंदर्य सृजनात्मक रूप से प्रायः उपेक्षित ही रहा। अनुवाद कर्म ने सृजनात्मक वैचारिकता का उत्कृष्ट परिवेश सृजन किया।

देशी-विदेशी अनुवाद की महत्ता भारतेंदु के शब्दों में स्पष्ट है, "हिंदी भाषा में जो सब भाँति की पुस्तकें बनाने के योग्य हैं, अभी वे बहुत कम बनी हैं। विशेषकर नाटक तो (कुंवर लक्ष्मण सिंह के 'शकुंतला' के सिवाय) कोई भी ऐसे नहीं बने हैं, जिनको पढ़ा के कुछ चित्त को आनंद और इस भाषा का बल प्रकट हो। इस वास्ते मेरी इच्छा है कि दो चार नाटकों का तर्जुमा हिंदी में हो जाए तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।"[1] अनुवाद का सौंदर्य भाव मर्म को आत्मसात कर अभिव्यक्ति के

नूतन मापदंड स्थापित करता प्रतीत होता है। काव्यानुवाद के अप्रतिम सौंदर्य को साहित्यरस पिपासु मैथिलीशरणगुप्त कृत 'वासवदत्ता' नाट्यकृति में अनुभूत करते हैं

मूल पद्य

(आत्मगतम्)-इयं वाला नवोद्वाहा सत्यं श्रत्वा व्यथा ब्रजेत्।

कामं धीर स्वभावेयं स्त्री स्वभावस्तु कातरः।।

रूपांतर

(स्वगत) -यह नूतन विवाहिता बाला सच सुनकर दुख पावेगी।

धीरा है, यह सहज कातरा नारी प्रकृति न जावेगी।।

वस्तुतः काव्यानुवाद प्रायः असंभाव्य है, किंतु काव्यात्मा कवि हृदय को स्पर्श कर अनुभूति के चरम क्षणों में भाव चेतना को झंकृत कर सके तो असंभाव्य भी संभाव्य की परिधि को स्पर्श कर लेता है। स्रोत भाषा के भाव को लक्ष्य भाषा में रूपांतरित होते समय लुप्त न होकर सहज परिप्राण पाता है। यद्यपि काव्य की लयात्मकता बलाघात-स्वराघात शब्द कंपन व छंदगति पूर्णतः मौलिक स्वरूप प्राप्य नहीं हो पाते किंतु अर्थ-व्यंजकता पूर्ण सौंदर्य से विद्यमान रहती है। यथाः

मूल-कनक उदयाचल तुमि देखादिल

हे सुर-सुंदरि!

कुमुद मुँद आँखि किंतु सुखे गाय पारवी,

गुंजरि निकुजे भ्रम भ्रमर-भ्रमरी

अनुवाद-स्वर्णोदय गिरि पर सुर सुंदरि देती हो तुम दरस पुनीत

मधुप-मिथुन कमलों पर आत गात है खग नव-नवगीत।

कल्पनात्मक सौंदर्य निःसृत भावावेगों के काव्य संस्कारों के शब्द सौंदर्य की प्रासंगिकता व परिवर्तन के संदर्भ में 'मेघनाद-वध' के काव्यानुवाद संबंधी गुप्त जी के विचार महत्ता व्यक्त करते हैं, ''अधिकांश स्थलों में मूल और अनुवाद की पंक्तियों की संख्या एक-सी है। जहाँ कहीं अंतर हुआ है वहाँ थोड़ा ही। 'भाव शब्द-संगीत छंद प्रवाह आदि को अनुवाद में लाने में वे घोर श्रम करते हैं। जो लोग भाषा को सरल बनाने के पक्षपाती हों उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि यह टीका नहीं, भाषांतर है, और एक काव्य-ग्रंथ का भाषांतर है। इस कारण अनुवादक को सरलता की अपेक्षा मूल ग्रंथ की ओजस्विता पर अधिक ध्यान रखना पड़ा है।''[2]

वस्तुतः अनुवाद भाषायी वैविध्य में भाव संप्रेषण द्वारा वर्ण्य वस्तु के नवीन बोध, अर्थ, रंग व गंध की मिश्रित सृष्टि गुंफित करता है। लेखकीय मनःस्थिति शब्द की अर्थच्छटा पर अनुवाद को केंद्र में रखते हुए अभिव्यक्ति के पथ-प्रदर्शन पर निर्भर करती है। अनुवाद संबंधी भारतीय साहित्यिक पृष्ठभूमि के आलोक में समसामयिक अनुवाद विधा के सौंदर्य संबंधी विविध प्रतिमानों का विश्लेषण विधा के नैसर्गिक स्वरूप/उद्भव व वैशिष्टय के तर्कसंगत उद्घाटन पर निर्भर है।

अनुवाद सृष्टि की पुनः सृष्टि है। अनुवाद के पुरातन साक्ष्य तुलसीदास सृजित काव्यों में भी सहज लभ्य होते हैं। भारतीय समाज की छवि प्रतिबिंबित करने वाले संस्कृत ग्रंथों के श्लोकों को अनुवाद कर भावगम्य दोहा, चौपाइयाँ आदि सृजित की गई हैं। यथा : गीता का भावानुवाद दृष्टव्य है,

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे

भावानुवाद :

जनि डरपह मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागिधरिहउँ नर बेसा।।

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा।।

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई।।

अनुवाद की यह पुरातन परंपरा 'बिहारी सतसई' में भी सहज जीवंत प्रतीत होती है-

मूल : सुवर्ण लहू चस्यारणि तस्य न स्यात् कर्ममदः।

नाम सम्यादहो चस्य धतस्तरोहपि मद प्रेदः।।'

अनुवाद :

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।

वा खाये बौराए जग इहि पाए बौराय।।

यद्यपि अनुवाद के पुरातन साक्ष्य भारतीय साहित्य में यत्र-तत्र सहज दृष्टव्य हैं किंतु इसका विस्तृत स्वरूप आधुनिक काल में भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति के समन्वय पर लभ्य हुआ। पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्य को वैश्विक स्तर पर प्राणवान करने हेतु अनुवाद

विधा में पल्लवन किया। एफ. एस. ग्राउन ने 'रामचरित मानस' का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया, वहीं खड़ी बोली गद्य को सुदृढ़ स्वरूप अनुवाद ने प्रदान किया। राम प्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योग वशिष्ट' संस्कृत श्लोक ग्रंथ का हिंदी अनुवाद किया।

राजा लक्ष्मण सिंह ने संवत् 1919 में 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का अनुवाद हिंदी में किया। वहीं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अंग्रेजी ग्रंथ 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद 'दुर्लभबंधु' अनूदित रचना के रूप में किया। इसके अतिरिक्त 'कर्पूरमंजरी', 'मुद्राराक्षस', 'चंद्रावली' आदि नाट्य रचनाएँ अनूदित स्वरूप में जीवंत हुईं। अनुवाद की इस परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा 'लाइट ऑफ एशिया' अंग्रेजी काव्य का अनुवाद 'बुद्धचरित' ब्रजभाषा काव्य में हुआ।

विदेशी भाषाओं में विशेषकर अंग्रेजी साहित्य का हिंदीनुवाद और भारतीय भाषाओं में बांग्ला भाषा का अनुवाद क्षेत्र में विशिष्ट दखल रहा। सर्वाधिक भाषाओं में अनूदित रचना रवींद्र नाथ टैगोर सृजित 'गीतांजलि' ने अनुवाद विधा में नूतन सोपान स्थापित किए। समसामयिक अनूदित साहित्यिक स्वरूप में वैश्विक स्तर पर विविध प्रयोग दृष्टिगत हुए हैं। अंग्रेजी भाषा से इतर अन्य भाषाओं (विदेशी) के साहित्य यथा : उपन्यास, कविता आदि का अनुवाद हो रहा है। भाषा के अभिव्यंजनात्मक कौशल में अभिवृद्धि हुई है। रूसी व दक्षिण अफ्रीकी साहित्य के हिंदी अनुवाद ने रचनात्मकता व कलात्मकता के नवीन बिंब व प्रतीक पाठक वर्ग के समक्ष उपस्थित किए हैं।

वस्तुत: भारतीय साहित्य के संदर्भ में अनुवाद परंपरा का प्रारंभ अब्दुल्ला इब्रम मोक्का द्वारा 'पंचतत्र' की अरबी भाषा में अनूदित रचना 'कलीलह दीमनह करटक दमनक' से संभवत: माना जाता है। यह परंपरा आधुनिक काल में विविध भाषी अनूदित ग्रंथों में जीवंत होती है। यथा : सूत्र साहित्य संबंधित 'पाणिनी शिक्षा' का अंग्रेजी अनुवाद मनमोहन घोष ने, 'वाल्मीकि रामायण' का अंग्रेजी भाषा में पद्य अनुवाद आर. टी. एच. ग्रीफिथ ने 'ऋगवेद' के प्रथम अष्टक का अनुवाद क्रिंड्रिंक रोज़न ने, 'श्रीमद्भागवद्' का अंग्रेजी भाषा में गद्यानुवाद जे. एम. सान्याल ने एवं गार्सा-दा-तासी द्वारा फ्रेंच भाषा में सृजित हिंदी साहित्य इतिहास ग्रंथ के प्रमुख अंशों का अनुवाद डॉ. उदयनारायण तिवारी द्वारा किया गया।

अनुवाद के विविध रूप यथा : प्रेरणानुवाद, छायानुवाद, भावानुवाद, मुक्तानुवाद आदि भारतीय भाषाओं में सर्वत्र लभ्य होने लगे। अनुवाद की प्रभावशीलता प्राकृत और अपभ्रंश रूप में परिपाक ग्रहण करने लगी, प्राकृत से संस्कृत में अनुवाद के सशक्त बिंब गुणाढ्य सृजित 'बृहतकथा' में झलकने लगे थे। अनुवाद विधा के वर्तमान स्वरूप के मूलाधार अनादिकाल से साहित्यापर्श करने लगे थे। वस्तुत: अनुवाद शब्द का संबंध संस्कृत की 'वेद' धातु से है, जिसका शाब्दिक अर्थ कहना या बोलना है।

अनुवाद का मूल अर्थ पुन: कथन का मूल कथन के बाद कहना या बोलना है। अनुवाद का मूल अर्थ पुन: कथन का मूल कथन के बाद कहना गहन प्रभाव रखता है। हिंदी शब्द अनुवाद के अंग्रेजी प्रतिशब्द Translation, जो कि मूलत: लैटिन भाषा का है, का बोधगम्य अर्थ है एक पार से दूसरे पार ले जाने की क्रिया। अनुवाद प्रक्रिया जटिल स्वरूप रखती है, इसका शाब्दिक पारिभाषिक विश्लेषण करना दुरूह कार्य है। अनुवाद विधा में मूल भाषा के संदेश के समतुल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है, "अनुवाद का संबंध स्रोत भाषा के संदेश का पहले अर्थ और फिर शैली के धरातल पर लक्ष्य भाषा में निकटतम स्वाभाविक तथा तुल्यार्थक उपादान प्रस्तुत करने से होता है।" वस्तुत: अनुवाद भाषा विज्ञान का वह अंग है, जिसमें सुनिश्चित प्रतीक समूह अन्य विन्यासगत प्रतीक समूह में हस्तांतरित होता है।

अनुवाद का शैल्पिक सौंदर्य एक भाषा में प्राप्त लिखित संदेश को दूसरी भाषा में अर्थ को यथासंभव बनाए रखने में सन्निहित है। अनुवाद विधा के इस सौंदर्य को फोरस्टन महोदय के शब्दों में अनुभूत किया जा सकता है, "अनुवाद का तात्पर्य एक भाषा की पाठ्य सामग्री के कथ्य को दूसरी भाषा की पाठ्यसामग्री में यह जानते हुए अंतरित करने से है कि इस कथ्य को कथन से पृथक करना सदा संभव नहीं होता।" वर्तमान युग में अनुवाद विधा अपने जटिल रूप और तकनीक से सामंजस्य स्थापित करते हुए रेडियो, टेलीविजन, भाषायी ऐजेंसियों, प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के समस्त

उपादानों में अपनी पूर्णतः सशक्त उपस्थिति सुनिश्चित करती है।

प्रत्येक भाषा की अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक, पौराणिक पृष्ठभूमि होती है जिनके निर्देशन में भाषा अपनी ध्वनियाँ व अर्थ स्वरूप निर्मित करती हैं। अनुवाद भाषा की इन वृत्तियों को अन्य भाषा में अनूदित कर सुधीजन तक संप्रेषित करना श्रमसाध्य व दुष्कर कार्य है। मूल कृति को आत्मसात कर अपेक्षित अर्थ को यथासंभव अक्षुण्ण रखते हुए अन्य भाषा में भाव हस्तांतरित करते हुए यथा साध्य अनूदित किया जाए। अनुवादक के समक्ष अनुवाद विधा के विशाल कलेवर में निज कार्यक्षेत्र सुनिश्चित कर पाना ऊहा-पोह की स्थिति रचित होती है।

अनुवाद के विस्तृत विभाग यथा : विषय, अनुवाद की प्रकृति, गद्यतत्व-पद्यतत्व व साहित्यिक विधाएँ अनुवाद को कार्यक्षेत्र की अपार संभावनाएँ प्रदान करते हैं। अनुवाद के मूल स्वरूप क्रमशः मूलनिष्ठ अनुवाद, मूलयुक्त अनुवाद, अनुवाद विधा को साहित्यिक व साहित्येतर अनुवाद स्वरूप के विस्तृत अंगों के विश्लेषण हेतु अनुवादक को आत्मार्पित करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। अनुवाद के ये आधुनिक स्वरूप यथाः नाट्यानुवाद, काव्यानुवाद, गद्यानुवाद (कथासाहित्य), अन्य गद्य विधा अनुवाद एवं संचार सूचना, वैज्ञानिक व तकनीकी अनुवाद, प्रशासनिक व विधिक अनुवाद, मानविकी विषयानुवाद एवं वाणिज्यक अनुवाद आदि अनुवाद में वैश्विक स्तर पर अपार संभावनाएँ समेटे नव-भाषायी संसार में अनुवादक का सार्थक अभिनंदन करते हैं।

अनुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद, शब्द-प्रतिशब्द अनुवाद को भाषायी शिल्प में प्राणवान कर देते हैं। अनुवादक कृति के स्वरूप व संभावनाओं को उपादेयता के निकष पर परखकर पूर्ण व आंशिक अनुवाद कर अनूदित स्वरूप प्रस्तुत करता है। अनुवाद अपने पूर्ण वाङ्मय स्वरूप लिए अपनी प्रकृति द्वारा विषय को आत्मसातीकरण प्रक्रिया में समाहित कर स्वानुभूत होता है। अनुवाद की विविध संकल्पनाएँ विषय गांभीर्य में अनूभूति के चरम क्षण में पुष्पित-पल्लवित होती हैं।

अनुवाद की विविध संकल्पनाएँ निम्न स्वरूप में साक्षात् होती हैं यथा : मौखिक अनुवाद, लिखित अनुवाद, सहयोग अनुवाद, भाषापरक अनुवाद, तथ्यपरक अनुवाद, यंत्रानुवाद, संस्कृतिपरक अनुवाद, सौंदर्यपरक अनुवाद ये संकल्पनाएँ विविध माध्यमों क्रमशः भाषांतर, प्रगतिकांतर, अंतर्यांतर को प्रयुक्त करते हुए प्रक्रिया वैविध्य यथा : प्रभावधर्मी, पाठधर्मी से गुजरते हुए विषय वैविध्य क्रमशः पत्रकारिता अनुवाद, बैंकिंग साहित्यानुवाद, फिल्म व डॉक्यूमेंट्री अनुवाद, रेडियो व दूरदर्शन कार्यक्रमानुवाद में पूर्णतः वांछित लक्ष्य प्राप्त करती प्रतीत होती हैं।

अनुवाद के बृहद् कलेवर में गौण अनुवाद के विविध रूप सूचनानुवाद, परोक्ष अनुवाद, रूप प्रधान अनुवाद, सारानुवाद, शैक्षिक अनुवाद, सामान्य गद्यानुवाद छवि वैशिष्ट सृजन में महती भूमिका निर्वहन करते हैं। वस्तुतः अनुवादक शब्दों व वाक्यों के महज रूपांतरण से परे अपनी कला व शिल्प विधान के ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग कर मूल कृति की संवेदना व अनुभूति को आत्मसात कर प्राप्य विचारों को अन्य भाषाओं में अभिव्यक्त करता हैं। यह कार्य/प्रक्रिया मानवीय परिवेश के अंकन को स्वीकृत कर अनुवादक को रचनात्मक परिवेश की तथ्यात्मक जानकारियों के संदर्भ में अवसर प्रदान करती है।

अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक का साक्षात्कार अनेक दुरूह समस्याओं से होता है, अनुवाद को प्रवाहपूर्ण, प्रभावशील व सहज अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु वाक्य विन्यास व वाक्य रचना में यथोचित समन्वय व परिवर्तन अनिवार्य शर्त होती है। विदेशी भाषाओं से अनूदित सृजन में अनुवादक को स्रोत विदेशी भाषा के परिवेश यथा : सभ्यता, रहन-सहन, विचारधारा, संस्कृति, लेखकीय दृष्टिकोण, वर्ण्य विषय से तारतम्यता व भाषायी स्तर पर सामंजस्य स्थापित करने हेतु निरंतर प्रयासरत रहना पड़ता है। भारतीय समाज/संस्कृति में विविध संबंध आत्मीयतापूर्ण निज विशेषता युक्त प्रतीत होते हैं, उनके स्थान पर अनुवाद में विदेशी भाषायी शब्द नीरसता लिए जड़ अनुभूत होते हैं।

विदेशी भाषायी शब्दों का भारतीय भाषाओं में अर्थग्रहण करना दुरूह कार्य है, अतः स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा प्राप्ति हेतु मूल भाषा के समीप का भावानुवाद प्राप्त किया जाता है। वस्तुतः लक्ष्य भाषा अथवा स्रोत भाषा का अधूरा ज्ञान अनुवाद के वांछित उद्देश्य प्राप्ति में अंततः बाधक ही सिद्ध होता है।

अनुवाद विधा में प्रमुखत: स्रोत भाषा संबंधी जटिलता/अर्थ रचना व अभिव्यंजना विषयक दुरूहता, परिवेशजन्य समस्या, मूल भाषा की अभिव्यक्ति, अर्थरचना व प्रभाव संबंधी समस्या आदि अनूदित रचना के सौंदर्य को प्रभावित करती है। मूलत: प्रत्येक भाषा में अभिव्यंजना का परंपरागत स्वरूप है, जो कि भाषायी संगठन में सहज दृश्य होता है। लक्ष्य भाषा व स्रोत भाषा की प्रकृति प्राय: भिन्न व जटिल होती है।

आधुनिक प्रयोजनमूलक भाषा में अनुवाद विधा में ये समस्याएँ प्रमुखत: प्राप्य हैं। प्रशासनिक भाषा अनुवाद में हिंदी से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद की महत्ता सर्वविदित है। प्रशासनिक भाषा अधिकांशत: तकनीकी भाषा लिए हुए अंशत: सामान्य भाषा को स्वयं में समाविष्ट करती है। प्रशासनिक भाषा को क्लिष्टता से दूर कर व्यावहरिक दृष्टिकोण का प्रयोग अनुवादक द्वारा किया जाता है। वस्तुत: प्रशासनिक अनुवाद के लिए प्रयुक्त भाषा वास्तविक अभिप्राय को व्यक्त करने वाली व सहज रूप लिए हो। उसमें अनावश्यक विस्तार व घुमाव न हो। कमोबेश यही स्थिति वैज्ञानिक व तकनीक विषयक अनुवाद के संदर्भ में प्रासंगिक है।

अनुवादक को वैज्ञानिक साहित्य के संदर्भ में यथोचित ज्ञान होना चाहिए, "अनुवादक को यदि स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का समुचित ज्ञान है तो वह अनुवाद कर लेता है, किंतु इसके विपरीत वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में विषय का ज्ञान अनिवार्यत: आवश्यक है।"[3] अनुवादक की भाषा शैली स्पष्ट, सटीक असंदिगध संप्रेषणीय होनी चाहिए। हिंदी भाषा का स्वरूप अंग्रेजी भाषा की भांति संलिष्ट न होने से अनुवादक को अनूदित रचना के वाक्य विधान को विभिन्न वाक्यों में तोड़कर सुबोध व सरल बनाना चाहिए।

आधुनिक प्रयोजनपरक हिंदी के अभिन्न अंग 'फीचर' विधा लेखन में अनुवादक की महती भूमिका लभ्य होती है। फीचर लेखन सहज भाषा में बोधगम्य होता है। इसके सृजन में विषय की रुचिता सरल व सुपठित शैली में पाठक अवलोकनार्थ प्रस्तुत की जाती है। फीचर लेखन के सृजन पार्श्व में अन्य भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी से प्राप्त तथ्यात्मक जानकारियों को लेखक अपनी भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

अनुवाद के विविध स्वरूपों एवं समस्याओं के विश्लेषण के आलोक में जहाँ अनुवाद का नैसर्गिक सौंदर्य प्रखर प्रतीत होता है वहीं अनुवादक को भाषायी सरलता, बोधगम्यता का विशिष्ट अनुपालन अनूदित साहित्य परंपरा में करना श्रेयस्कर होता है। यद्यपि 'अनुवाद' परंपरा वैदिक काल से भारतीय साहित्य में उपलब्ध रही है किंतु इसका वैज्ञानिक स्वरूप स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में ही दृष्टव्य हुआ।

मूलत: "हिंदी भाषा का शब्द सामर्थ्य असीमित और अपरिमित है। आवश्यकता है उससे परिचय प्राप्त करने की। किसी भी एक शब्दकोश के आधार पर हिंदी भाषा के शब्द सामर्थ्य को न तो आंका जा सकता है और न ही चुनौती दी जा सकती है। अनुवाद की उत्पत्ति से लेकर विकास में अुनवाद का अर्थ, व्युत्पत्ति, परिभाषा या व्याख्या, उसके विविध प्रकार, उसकी सीमाओं और मर्यादाओं तथा समस्याओं को विश्लेषण की कसौटी पर कसकर अवधारणाओं की स्थापना की है।"[4]

वस्तुत: अनुवाद के बृहद कलेवर के अप्रतिम सौंदर्य में निम्न तथ्य सन्निहित हैं कि अनुवादक का ज्ञान, विषय ज्ञान व गांभीर्य एक भाषा में व्यक्त विचारों भावों को अन्य भाषा में व्यक्त करना अत्यंत श्रमसाध्य व प्रत्येक कालखंड में चिरयुगीन सार्थकता लिए महत्वपूर्ण अवलंब है। प्रयोजन मूलक हिंदी के स्वर्णिम भविष्य के लिए अनुवाद विधा का उन्नत स्वरूप सरल व यथार्थवादी भाषा पर निर्भर है, जो संक्षिप्त स्पष्ट व अर्थ पूर्ण सार्थकता लिए गतिशील रहे---------।

संदर्भ सूची

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र : रत्नावली नाटक की भूमिका से.

2. मैथिलीशरण गुप्त : 'मेघनाद वध' काव्यानुवाद, पृ. 25.

3. डॉ. हरिमोहन : राजभाषा हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की दिशाएँ.

4. डॉ. रामगोपाल सिंह (संपा) : 'अनुवाद भारती'.

– विभागाध्यक्ष (हिंदी) वेदांता स्नातकोत्तर महिला

महाविद्यालय, रींगस, सीकर (राज.)

❑❑❑

साहित्यिक अनुवाद : संवेदनशीलता एवं भावना के स्तर पर

डॉ. प्रियंका कुमारी सिंह

ब्रह्मांड के अनंत विस्तार में एक कण के समान होते हुए भी पृथ्वी मनुष्यों के लिए बहुत विशाल है। इस विशाल पृथ्वी और इसकी विविधरूपा प्रकृति में जीवन के तौर-तरीके भी विविधरूपी हैं। इसमें अपने उद्‌भव से लेकर आज तक मनुष्य ने अपने क्रमिक जैविक तथा सांस्कृतिक विकास की कई मंजिलें पार की हैं और अपने अनुभवों से अर्जित ज्ञान को विविध कला रूपों में संचित किया है। साहित्य उन सभी कला रूपों में सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भाषा में होता है और इस कारण यह मनुष्य मात्र की भावनात्मक, कलात्मक या बौद्‌धिक अभिव्यक्ति का सबसे सहज साधन रहा है। दुनिया के अलग-अलग भौगोलिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों में रहते हुए मनुष्यों के अलग-अलग समुदायों ने अलग-अलग भाषाएँ, अलग-अलग संस्कृतियाँ तथा जीवन को देखने समझने के अलग-अलग दृष्टिकोण विकसित किए। ये अलग-अलग दृष्टिकोण एक-दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक होते हैं क्योंकि इस विविधधर्मी विशाल दुनिया को समझने-देखने, इसमें अपने अस्तित्व को बनाये रखने में कोई इकलौता दृष्टिकोण कारगर सिद्‌ध नहीं हो सकता। अलग-अलग संस्कृतियों तथा उनसे जुड़ी विश्व दृष्टियों को जानना-समझना सबसे अधिक साहित्य के माध्यम से होता है। जैसे हर भाषा (बोलने वालों की संख्या के आधार पर छोटी हो या बड़ी) एक विश्व दृष्टि को अपने में समाहित किये रहती है, उसी तरह उस भाषा में रचा गया साहित्य उस विश्व दृष्टि के व्यावहारिक पक्ष को मूर्त रूप प्रदान करता है। इन सभी विश्व दृष्टियों को, अलग-अलग भाषाओं के साहित्य को किसी एक भाषाभाषी तक पहुँचाने का साधन अनुवाद ही है। साहित्य के अनुवाद ने मनुष्य मात्र की एकता को प्रतिपादित करने के साथ-साथ एक मनुष्य समाज के संघर्ष से दूसरे मनुष्य समाज को प्रेरित करने तथा उन्नति का मार्ग तलाशने में योगदान किया है।

साहित्य में अनुवाद महज सूचनाएँ देने या मनोरंजन भर के लिए सीधी-सपाट कथा सुनाने के लिए नहीं होता। मनुष्य मात्र में एकता व मैत्री-स्थापना के महत्वपूर्ण सेतु के रूप में इसकी भूमिका निर्विवाद है। जिन भाषाओं के साहित्य में परस्पर अनुवाद की परंपरा रही है, उन भाषाओं को बोलने वाले समाज भी भावना और संवेदना के स्तर पर जुड़े दिखते हैं। निर्मला जैन के अनुसार साहित्य का अनुवाद एक भाषा के पाठ का दूसरी भाषा में रूपांतर भर नहीं होता बल्कि यह एक सांस्कृतिक संप्रेषण होता है। अतः यह अनुवाद ऐसा होना चाहिए जो जिसमें स्रोतभाषा के साहित्य में चित्रित-वर्णित समाज का सांस्कृतिक स्पंदन सुनाई दे। साहित्यिक अनुवाद में दो स्तरों पर इस स्पंदन, संवेदनशीलता तथा भावना का संबंध होता है। साहित्य में अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में जब हम स्पंदन, संवेदनशीलता तथा भावना का संबंध कहते हैं तो एक ओर तो इससे साहित्यिक अनुवाद का उद्‌देश्य तथा इसका महत्व समझ में आता है। दूसरा, इससे साहित्यिक अनुवाद की प्रक्रिया समझ में आती है। इस आलेख में इन दोनों ही स्तरों की समीक्षा का प्रयास किया गया है।

एक भाषा के साहित्य का अनुवाद दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) की साहित्यिक परंपरा को प्रभावित तथा समृद्ध करता है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काल के गद्य खंड के प्रकरण 2 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- "अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले पहल हिंदी में लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' ही निकला था। उसके पीछे बाबू राधाकृष्ण दास ने 'निस्सहाय हिंदू' और पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' नामक छोटे-छोटे उपन्यास लिखे। उस समय तक बंगभाषा में बहुत से अच्छे उपन्यास निकल चुके थे। अत: साहित्य के इस विभाग की शून्यता शीघ्र हटाने के लिए उनके अनुवाद आवश्यक प्रतीत हुए।"[1] इसी प्रकरण में वे आगे लिखते हैं- "इन अनुवादों से बड़ा भारी काम यह हुआ कि नए ढंग के सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के ढंग का अच्छा परिचय हो गया और स्वतंत्र उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति और योग्यता उत्पन्न हो गई।"[2] उपन्यास ही नहीं गद्य की अन्य विधाओं, नाटक, कहानी, निबंध आदि के विषय में भी यह बात लागू होती है। इन दोनों उद्धरणों से दो बिंदु मिलते हैं - (1) किसी एक भाषा के साहित्य के किसी विभाग में शून्यता हटाने के लिए दूसरी भाषा के समृद्ध साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता (2) दूसरी भाषा के उत्कृष्ट साहित्य के एक भाषा में अनुवाद से किसी भाषा में नए ढंग के मौलिक साहित्य लिखने की प्रेरणा। विश्व साहित्य वाङ्मय में नई विधाओं तथा नई प्रवृत्तियों के उभार में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण है। अनुवाद के माध्यम से ही व्यापक तौर पर पाठक तथा रचनात्मक प्रतिभा संपन्न व्यक्ति अपनी परंपरा से इतर साहित्यिक विधाओं तथा प्रवृत्तियों से परिचित तथा प्रेरित हो पाता है।

साहित्य में अनुवाद के वृहत्तर सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में डॉ. रमण सिंह ने लिखा है- "तेल अवीब विश्वविद्यालय, इजरायल के अंतर्गत एक दशक तक चलने वाले एक महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट "हिब्रू में साहित्यिक अनुवाद का इतिहास पर काम करते हुए इत्तमार इवान-जोहर ने अपने आँकड़ों से यह सिद्ध किया है कि अनुवाद को अनिवार्यत: गौण प्रणाली नहीं माना जा सकता यह साहित्यिक बहुप्रणाली विशेष की उस, शक्ति एवं सुदृढ़ता पर निर्भर करता है कि उसके अंतर्गत अनूदित साहित्यिक प्रणाली की क्या स्थिति होगी। एंग्लो- अमरीकन या फ्रांसीसी जैसी पुरानी एवं विशाल संस्कृतियों की बहुप्रणालियाँ इजरायल जैसे छोटे देश की बहुप्रणालियों से प्रकृत्या भिन्न होती हैं। एक शक्तिशाली, पुरानी एवं सुदृढ़ बहुप्रणाली में अनूदित साहित्यिक प्रणाली जहाँ हाशिए पर होती है वहीं एक युवा, कमजोर और अस्थिर बहुप्रणाली में वह केंद्रीय स्थान ग्रहण कर सकती है।"[3] एक भाषा के साहित्य में अनुवाद की भूमिका तथा स्थिति उस साहित्य की प्राचीनता तथा समृद्धि पर निर्भर करती है। जिन भाषाओं का साहित्य 'युवा', 'कमजोर' तथा 'अस्थिर' स्थिति में अर्थात् विकास की आरंभिक अवस्था में होता है उस भाषा के साहित्य में विश्व का अनूदित साहित्य स्वाभाविक रूप से केंद्र में होता है। अनूदित साहित्य 'युवा' साहित्य को दिशा देकर उसे प्रौढ़ता हासिल करने में मदद करता है। हिंदी साहित्य तथा भारतीय संदर्भों में आधुनिक काल के आरंभिक दौर में लगभग हर भारतीय भाषा के साहित्यिक विकास में अनुवाद की यह भूमिका स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। 'युवा' ही नहीं, प्रौढ़ साहित्यिक परंपरा में भी अन्य भाषाओं से अनूदित साहित्य का महत्व है क्योंकि साहित्य का अनुवाद संस्कृतियों को एक-दूसरे के निकट लाने का भी साधन है। हर उदार साहित्यिक परंपरा ने अपने साहित्य भंडार को, अपनी भावभूमि को दूसरी भाषाओं के साहित्य के संपर्क से अधिक उदार और विस्तृत किया है।

किसी भाषा विशेष के साहित्य का अपनी भाषा में अनुवाद करने हेतु अनुवादक को प्रेरित करने में भी भावना और संवेदनशीलता का हाथ होता है। सुप्रसिद्ध लेखिका राज बुद्धिराजा ने कुछ जापानी कहानियों का अनुवाद किया है जो 'जापान की श्रेष्ठ कहानियाँ' शीर्षक से संकलित-प्रकाशित हैं। तोक्यो विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान इन्होंने जापानी जनमानस को निकट से देखा-समझा। उसके सांस्कृतिक स्पंदन को महसूस किया। उन्होंने जाना कि "वर्तमान में जीने वाला जापान-वासी अंतर्मुखी होकर हर तरह की परिस्थिति का सामना करने को तैयार रहता है। साथ ही अति आधुनिक और अति रूढ़िवादी धरातलों पर एक साथ जीता है। गाँव कितनी ही तेज रफ्तार से शहर की ओर क्यों न

दौड़ता-भागता दिखाई दे, लोक-विश्वास हर समय संबल बना रहता है। ये विश्वास काबुकि, नोह, नृत्य तथा साहित्य में दिखाई पड़ता है।"[4] इस तरह एक समाज के जीने के तरीकों, उसकी मान्यताओं व विशेषताओं को महसूस कर संवेदनशील अनुवादक उस समाज के साहित्य का अनुवाद कर लक्ष्य भाषा के समाज की संवेदनशीलता को भी एक नया आयाम देता है। कक्षा में पढ़ाते समय जापानी लोक-कथाओं के संपर्क में आने से जो उद्वेलन लेखिका के मन में हुआ, उससे इन्हें प्रेरणा मिली कि "हिंदी पाठकों के लिए कुछ कहानियों का चयन किया जाए जिससे उन्हें जापान की भौगोलिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों का पता चल सके।"[5] जापानी कहानियों के अनुवाद के माध्यम से जापान की सांस्कृतिक-सामाजिक-आर्थिक स्थिति से अवगत करा कर हिंदी पाठकों की संवेदना और चेतना के स्तर को उद्देश्य एक वैश्विक आयाम देने का महत् उद्देश्य इससे ध्वनित होता है। मेघनाद-वध' के अनुवाद की भूमिका में मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है कि इस ग्रंथ की रचना से मधुसूदन दत्त उन्नीसवीं सदी के सबसे प्रतिभाशाली और युग-प्रवर्तक कवि माने गए। गुप्त जी ने ऐसे काव्य-ग्रंथ का अनुवाद इसलिए किया ताकि "मेघनाद-वध-सदृश काव्य एक प्रांत का ही धन न रहे, राष्ट्रभाषा के द्वारा वह राष्ट्रीय संपत्ति बन जाए, इतना न हो सके तो अंतत: उस रत्न की एक झलक हिंदी भाषा-भाषियों को भी देखने को मिल जाए।"[6] इन दोनों अनुवादों और प्राय: सभी साहित्यिक अनुवादों का उद्देश्य लक्ष्य भाषा (या अनुवादक की अपनी भाषा) के साहित्य को समृद्ध बनाने तथा इसके माध्यम से अपने पाठकों को स्रोतभाषा के साहित्य से संवेदना और भावना के स्तर पर जोड़कर एक महत् मानवीय उद्देश्य की पूर्ति में योगदान देना ही होता है।

किसी एक भाषा में उन दूसरी भाषाओं के साहित्य का अनुवाद अधिकता से और कुशलता से हुआ है, जिन भाषाओं और संस्कृतियों में परस्पर निकटता रही है। जैसे, हिंदी भाषा में अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य के अलावा सबसे अधिक साहित्यिक अनुवाद अंग्रेजी भाषा से हुआ। इसका एक कारण दोनों भाषाओं की आपसी नजदीकी पहचान है। अत: साहित्य के अनुवाद में एक आवश्यक शर्त यह होती है कि अनुवादक को स्रोत भाषा के समाज की धड़कनों की पहचान हो। इसे पहचाने बिना या इससे तादात्म्य स्थापित किए बिना जो अनुवाद किया जाएगा, वह उस साहित्य के साथ न्याय नहीं कर पाएगा जिसका अनुवाद किया गया है। साहित्य शब्दों में नहीं, शब्दों से संकेतित अर्थों व संदर्भों में रहता है और इन संदर्भों का साहित्य के अनुवाद में ध्वनित होना तथा लक्ष्य भाषा के पाठक तक संप्रेषित होना अनुवाद कर्म की सार्थकता है। रीतारानी पालीवाल लिखती हैं- "अनुवादक का स्थान साहित्य के सर्जक की भाँति है, जिसकी सहायता के बिना व्यापक मानवीय संस्कृति की परिकल्पना ही संभव नहीं होती।"[7] साहित्य का अनुवादक 'व्यापक मानवीय संस्कृति की परिकल्पना' को संभव बनाने में सहायक होता है क्योंकि वह अनुवाद कर्म के माध्यम से मनुष्य मात्र के बीच भावनात्मक एकता को उजागर करने का महत्वपूर्ण काम करता है।

साहित्यिक अनुवाद पर विचार करने वाले प्राय: सभी भारतीय विद्वानों ने इस बात पर चिंता जाहिर की है कि यहाँ मौलिक साहित्य सृजन की तुलना में साहित्यिक अनुवाद को निचले स्तर का काम माना जाता है। जबकि यह मौलिक सृजन से अधिक कठिन काम है जो अधिक सर्जनात्मक प्रतिभा और साहित्यिक विवेक की माँग करता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं कि हिंदी में साहित्यिक अनुवाद का काफी काम हुआ है किंतु यह यूरोपीय तथा जापानी आदि भाषाओं में हुए अनुवादों की तुलना में काफी कम है। डॉ. तिवारी इसका एक बड़ा कारण 'साधनों की कमी, अनुवादकों की कमी तथा पाठकों की कमी के साथ-साथ 'अनुवादकों के प्रशिक्षण की कमी तथा अनुवाद कार्य की कठिनाई' को मानते हैं। लेकिन साथ ही वे कहते हैं- "एक और कारण भी है। विदेशों में साहित्य का अनुवाद अच्छे-अच्छे कवि और साहित्यकार भी करते हैं, किंतु हमारे यहाँ अनुवाद करना बहुत अच्छा नहीं माना जाता। प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि एजरा पाउंड ने चीनी कविताओं के अंग्रेजी में अनेक प्रामाणिक अनुवाद किए, बोरिस पास्तरनाक ने शेक्सपियर के साहित्य का रूसी में अनुवाद किया, किंतु हिंदी के उच्च कोटि के साहित्यकार अनुवाद

करने में अपनी हेठी समझते हैं।"[8] इसी समस्या को निर्मला जैन भी रेखांकित करती हैं- "साहित्यिक अनुवाद के बारे में एक बड़ी बाधा तो यही है कि अनुवाद को मौलिक रचना की तुलना में कुछ घटिया किस्म का या कम-से-कम दूसरी श्रेणी का काम समझा जाता है। इसलिए अक्सर यह उम्मीद की जाती है कि या तो इसे दूसरी श्रेणी का साहित्यकार करेगा या फिर प्रथम श्रेणी का साहित्यकार इसे दूसरी श्रेणी का काम समझ कर करेगा।"[9] साहित्य में अनुवाद को दूसरे दर्जे का या कम महत्व का काम समझे जाने के पीछे एक बड़ा कारण इसके साहित्यिक-सांस्कृतिक महत्व को भली-भाँति न उजागर किया जाना भी हो सकता है। नवजागरण-कालीन लेखकों-चिंतकों ने इसके महत्व को समझा था। इसलिए भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर श्रीधर पाठक जैसे रचनाकारों और महावीर प्रसाद द्विवेदी से लेकर रामचंद्र शुक्ल जैसे साहित्य चिंतक विद्वानों ने पूरी लगन से अनुवाद कार्य किया और हिंदी साहित्य को अपने अनुवाद कर्म से भी उतना ही समृद्ध किया जितना अपने मौलिक रचना कर्म से।

यूरोपीय तथा जापानी आदि भाषाओं की तुलना में हिंदी में साहित्यिक अनुवाद कम होने के जो कारण डॉ. भोलानाथ तिवारी ने बताए हैं उनमें से एक है 'अनुवाद कार्य की कठिनाई'। इसके विषय में उनका कहना है- यों तो अनुवाद की कठिनाई ध्वनि, शब्द, मुहावरे-लोकोक्ति, रूप तथा वाक्य रचना आदि अनेक स्तरों पर होती है। शब्दों में भी सामान्य शब्दों में विशेष कठिनाई नहीं होती, जो होती है प्रायः सांस्कृतिक शब्दों में होती है।"[10] चूंकि हर संस्कृति अपनी विशेष भौगोलिक-ऐतिहासिक-सामाजिक परिस्थितियों के कारण अन्य संस्कृतियों से अलग कुछ तत्व रखती है। इनके लिए उसकी भाषा में कुछ विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ होती हैं जिनका भावार्थ शाब्दिक अर्थ से भिन्न होता है और जिनके लिए दूसरी भाषा में उतनी ही सटीक अभिव्यक्तियाँ नहीं होती हैं। इसलिए इनका अनुवाद सहज नहीं होता। रूसी भाषा से हिंदी अनुवाद की समस्याएँ और उनका समाधान बताते हुए पंकज मालवीय एक व्यावहारिक उदाहरण देते हैं- "सोवियत संघ में अधिक ठंड के कारण लोग ओवरकोट पहनते हैं और जब कोई मेहमान घर आता है तो उसको 'रज्दिवाइते' कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'कपड़े उतारि' है किंतु इसका भावार्थ ओवरकोट उतारने से है।"[11] ऐसे ही 'च्योरनिय मिस्ल' (बुरे विचार), 'जिल्योनय तस्का (असहनीय आघात) आदि के उदाहरण देकर वे बताते हैं कि इन पदबंधों के शाब्दिक अर्थ क्रमशः 'काले विचार' तथा 'हरा आघात' है लेकिन भावार्थ यह नहीं है। इसी तरह अंग्रेजी भाषा के कुछ सांस्कृतिक शब्दों जैसे, "वाइट कॉलर', 'ब्राउन कॉलर', 'ग्रे कॉलर', 'रेड नेक' आदि के अनुवाद के विषय में विचार करते हुए कहते हैं कि इन शब्दों के शब्दानुवाद 'सफेदपोश', 'भूरापोश' या भूरा कॉलर), खाकीपोश (खाकी कॉलर) तथा 'लाल गर्दन' से अनुवादक काम चला लेगा लेकिन यह सचमुच अनुवाद नहीं होता क्योंकि लक्ष्य भाषा के पाठक तक इन शब्दों के सटीक सांस्कृतिक अर्थ का संप्रेषण हुआ ही नहीं। डॉ. तिवारी इसे व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं-" "वाइट कॉलर मूलतः इंग्लैंड की अंग्रेजी से भारत आया और आज जो अर्थ हिंदी में है, वही अर्थ अंग्रेजी में भी है। अमरीका में 'वाइट कॉलर' मध्य वर्ग के लोगों को कहते हैं। 'ब्राउन कॉलर' प्रायः मजदूर वर्ग को कहते हैं और 'ग्रे कॉलर' दोनों के बीच के प्रायः दक्ष कामगारों (स्किल्ड लेबरर) को। 'रेड नेक' उन अमरीकियों को कहते हैं जो विदेशियों को कुछ हिकारत की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे लोग प्रायः अल्पशिक्षित होते हैं। उनमें ऐसी भावना होती है कि अमरीका सभी बातों में अन्य देशों से आगे है तथा वह अनेक देशों का भरण-पोषण कर रहा है।"[12] इस तरह के शब्दों या पदबंधों का सही अनुवाद महज भाषा की जानकारी होने से नहीं हो सकता। साहित्यिक अनुवाद की ये कठिनाइयाँ स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के समाज तथा साहित्य से अनुवादक की एक समान गहरी पहचान और उनके प्रति संवेदनशीलता और भावनात्मक तादात्म्य से ही हल हो सकते हैं। साहित्य में अनुवाद की यह एक आवश्यक शर्त है जिसके बिना अनुवाद सार्थक नहीं हो पाता।

साहित्य में अनुवाद के संदर्भ में यह सवाल महत्वपूर्ण होता है कि "किसी साहित्यिक रचना के अनुवाद में उसकी यथातथ्यता, उसका (शब्दशः) सही होना ज्यादा जरूरी है या उस अनुभव-वृत्त का पुनः

सृजन जिसे मूल कृति के द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है?"[13] लगभग हर बेहतरीन साहित्यिक अनुवाद का अनुवादक इस सवाल से जूझकर ही अनुवाद-कर्म में प्रवृत्त हो पाता है। नाटककार विजय तेंडुलकर के नाटक 'घासीराम कोतवाल'का हिंदी अनुवाद करने की प्रक्रिया के अपने अनुभव साझा करते हुए वसंत देव ने बड़ी ईमानदारी से इसे बयान किया है। अनुवाद का काम भाषिक ही होता है और इसकी मूल समस्या भाषिक (शब्द और अर्थ दोनों स्तरों पर) ही होती है। अनुवाद का आदर्श यथातथ्यता हो या कि अनुभव-वृत्त का पुनः सृजन, अनुवाद की भाषा का ही आदर्श है क्योंकि रचना साकार तो भाषा में ही होती है। अतः वसंत देव ने 'घासीराम कोतवाल' के अनुवाद की प्रक्रिया की चर्चा में भाषा की समस्या पर ही सबसे अधिक बात की है। नाटक के अनुवाद में लगने से पहले उनके सामने यह सवाल आता है कि "यह नाटक अपनी पूर्ण क्षमताओं के साथ हिंदी में लाना संभव है क्या?" क्योंकि 'घासीराम कोतवाल' की विशिष्टता उसकी खास भाषा-शैली है और उसमें तेंडुलकर ने "पारंपरिक बोली-भाषा का उपयोग नहीं किया है। नाटक की भाषा लोक-नाटकों की है। उसकी अलग प्रकार की आंतरिक यमकों को साकार करने वाली अपनी एक लय है। दूसरी बात यह कि इस भाषा के अनेक स्तर नाटक में दृष्टिगोचर होते हैं। नाना फड़नवीस की भाषा अलग तरह की, तो घासीराम की भाषा हिंदी-मराठी मिश्रित है। दोनों की जुबानी भाषा अपना अनोखापन लिए हुए ही वर्ग विशेष को भी साकार कर देती है। नाना की भाषा में उनकी धूर्तता, झूठी विनम्रता और काम-वासना जैसे उजागर होती है, वैसे ही घासीराम की भाषा में उसकी लाचारी और बाद में उसकी मगरूरी व्यक्त होती है। ब्राह्मणों की शैली कभी सामान्य जन की बोली-भाषा की तरह तो कभी पंडिताई ठाट-बाट की।"[14] अनुवादक को नाटक की खास पेशवा कालीन भाषा और उसके अनोखे तेवर को अनुवाद में समाहित कर लेना कठिन कार्य लगा। शब्दशः अनुवाद करने पर नाटक के प्रभाव को हिंदीभाषी पाठकों या दर्शकों तक संप्रेषित करना संभव नहीं होता और यह नाटक की विशेषता के साथ अन्याय होता। अतः नाटक की भाषा के मराठी लोक-भाषा पुट को हिंदी कथा-वाचकों की, खासकर सत्यनारायण की कथा बाँचने वालों की शैली का रूप देकर उन्होंने नाटक के हिंदी अनुवाद को भी मूल नाटक के समान प्रभावी बनाया। इस संदर्भ में, यानी मूल रचना के सर्जनात्मक प्रभाव को अनुवाद में सुरक्षित रखने के लिए उसके अपने मूल रूप से भिन्न दूसरा समतुल्य रूप देना उचित है या नहीं, इस पर सवाल उठते हैं। साहित्य के अनुवादक को यथातथ्यता का आग्रह रखते हुए कृति की सृजनात्मक विशेषताओं से समझौता करना चाहिए या पुनः सृजन पर आग्रह के चलते मूल कृति के रूप को किसी हद तक बदल दिए जाने का खतरा उठाना चाहिए? निर्मला जैन कहती हैं कि ऐसी स्थिति में निर्णायक बात शायद यह होगी कि किस अनुवादक ने रचना से किस हद तक सही संवाद कायम कर लिया है।"[15] रचना से सही संवाद कायम करना, रचनाकार के आशय से भावनात्मक रूप से जुड़ कर ही हो पाता है।

रचना से सही संवाद ही दरअसल वह शर्त है जो साहित्य की हर विधा के अनुवाद में आवश्यक है। हर विधा की भाषिक बुनावट अलग होती है और उसमें भाषा के प्रकार्य भिन्न होते हैं। इसके अनुसार अनुवाद की प्रविधि भी भिन्न होती है। लेकिन किसी एक विधा में भी हर रचना का भाषायी तेवर एक-सा नहीं होता। ऐसे में अनुवादक किसी प्रविधि भर से उच्च कोटि का अनुवाद नहीं कर सकता। अनुवाद में अनुवादक की मूल रचना के रचनाकार से संवेदना और भावना के स्तर पर एकमेकता आवश्यक है। अनुवादक के तौर पर रचना से सही संवाद रचनाकार के स्पंदन से परिचित होकर ही होता है। रचनाकार के आशय व उसके भावों का अनुवाद में संप्रेषण और संरक्षण अनुवादक की बड़ी जिम्मेदारी होती है। अनुवादक जब रचनाकार के आशय व भाव से गहरे जुड़ पाने में सफल हो जाता है तो अनुवादक की प्रविधि प्रक्रिया की समस्या बहुत हद तक अपने आप सुलझ जाती है। पंकज मालवीय ने काव्य के अनुवाद में कहा है- "काव्य की आत्मा रस (भाव) है। कवि के विचारों एवं भावों की रक्षा अनुवादक का महत्वपूर्ण कर्तव्य है। यदि वह उनको समझ लेता है उन परिस्थितियों का स्वयं अनुभव करता है तो निःसंदेह कविता को कवि की तरह ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है।" कविता ही नहीं, साहित्य की हर विधा

के सफल अनुवाद के लिए यह आवश्यक है।

साहित्य का अनुवाद एक सर्जनात्मक पुन:सृजन होने के साथ-साथ गंभीर और जरूरी सांस्कृतिक कर्म भी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में विभिन्न भाषा समुदायों के बीच एक राष्ट्र के स्पंदन को उजागर करने का काम हो या विश्व पटल पर नस्ल, धर्म, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक भिन्नताओं के आवरण तले प्रवाहित होती मनुष्यता की, मानवीय संवेदना की एक समान धारा को चिह्नित करने का काम, साहित्य के अनुवाद के माध्यम से ही होता है।

संदर्भ सूची

1. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2069 वि, पृष्ठ- 249

2. -वही-

3. डॉ. रमन सिन्हा, अनुवाद और रचना का उत्तर-जीवन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, आमुख से

4. राज बुद्धिराजा (अनुवाद एवं संकलन), जापान की श्रेष्ठ कहानियाँ, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987, 'अपनी बात' से

5. वही

6. रीतारानी पालीवाल, अनुवाद प्रक्रिया, ललित प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ-110

7. मैथिलीशरण गुप्त, हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध भूमिकाएँ : खंड-1 (संकलन-संपादन : कृष्णदत्त पालीवाल), सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ- 149

8. डॉ. भोलानाथ तिवारी, विदेशी भाषाओं से अनुवाद की समस्याएँ (सं. भोलानाथ तिवारी, नरेश कुमार), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ-1

9. निर्मला जैन, अनुवाद मीमांसा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2018, पृष्ठ- 68

10. डॉ. भोलानाथ तिवारी, विदेशी भाषाओं से अनुवाद की समस्याएँ (सं. भोलानाथ तिवारी, नरेश कुमार), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ-1

11. पंकज मालवीय, विदेशी भाषाओं से अनुवाद की समस्याएँ (सं. भोलानाथ तिवारी, नरेश कुमार), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ - 35

12. डॉ. भोलानाथ तिवारी, विदेशी भाषाओं से अनुवाद की समस्याएँ (सं. भोलानाथ तिवारी, नरेश कुमार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ -5

13. निर्मला जैन, अनुवाद मीमांसा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ - 72

14. वसंत देव, भारतीय साहित्य (संपादक- डॉ. मूलचंद गौतम), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ - 211

15. निर्मला जैन, अनुवाद मीमांसा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ - 73

16. पंकज मालवीय, विदेशी भाषाओं से अनुवाद की समस्याएँ (सं. भोलानाथ तिवारी, नरेश कुमार), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ - 35

– हिंदी विभाग, प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता

❑❑❑

काव्यानुवाद : प्रक्रिया, समस्याएँ और संभावनाएँ

डॉ. दिनेश चंद्र दीक्षित

काव्यानुवाद एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग आजकल अत्यंत सीमित अर्थ, अर्थात कविता मात्र के अनुवाद के रूप में रूढ़ हो गया है। यह एक ऐसा पेचीदा विषय है कि यह दीर्घकाल से विद्वानों के बीच विवादास्पद बना हुआ है। काव्यानुवाद के संबंध में विवाद और मतभेद का इतिहास संभवत: उतना ही पुराना है जितना पुराना स्वयं अनुवाद का कार्य। काव्यानुवाद को लेकर उत्पन्न नाना प्रकार के विवाद और मतभेदों पर कुछ विचारकों की यह मान्यता है कि उत्कृष्ट स्तर वाले साहित्यिक गौरव/ग्रंथों का अनुवाद मूल की कला और सौंदर्य को अक्षुण्ण रखते हुए एक प्रकार से असंभव कार्य है। इस संदर्भ में स्वर्गीय प्रो. नगेंद्र का यह कथन अत्यंत सारगर्भित है "ज्ञान के साहित्य की अपेक्षा सर्जनात्मक या रस के साहित्य के अनुवाद की समस्या अत्यधिक जटिल है और सर्जनात्मक साहित्य के अंतर्गत भी कविता का अनुवाद तो असाध्य साधना से कम नहीं। कविता का केंद्रीय तत्व है अनुभूति जिसका स्वरूप सर्वथा तरल होता है, और उसका माध्यम है बिंब जिसका संप्रेषण न होकर केवल पुन: सर्जन ही हो सकता है। इसलिए काव्यकला के मर्मज्ञों ने कविता के अनुवाद को अनुसर्जना की संज्ञा दी है।"

प्रो. नगेंद्र की काव्यानुवाद संबंधी मान्यता में तीन बातों का महत्वपूर्ण स्थान है। 1. ज्ञान के साहित्य का अनुवाद, 2. सर्जनात्मक साहित्य, उसके अंतर्गत भी कविता का अनुवाद, और 3. कविता का अनुवाद यानि अनुसर्जना।

काव्यानुवाद के संदर्भ में आगे विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि इस बात पर भी विचार किया जाए कि प्रो. नगेंद्र ने 'ज्ञान के साहित्य' अर्थात शास्त्र के अनुवाद की तुलना में काव्य के अनुवाद को 'असाध्य साधना' क्यों कहा। इस संदर्भ में यह स्पष्ट करना अत्यंत आवश्यक है कि शास्त्र तथ्यात्मक होने के कारण किसी बात को 'निश्चित और नियत' शब्दों में व्यक्त करता है। काव्य भावात्मक होने के कारण उसकी अभिव्यक्ति व्यक्तिपरक हो जाती है। इस बात को एक उदाहरण के माध्यम से इस प्रकार समझा जा सकता है। शास्त्रकार के शब्दों में बादल "जल बिंदुओ का वह समूह है जो समुद्र, नदी एवं झील के पानी से वाष्पन द्वारा उत्पन्न भाप के संघनन के कारण वायुमंडल में बहुत ऊँचाई पर बन जाता है।"

वहीं यदि किसी कवि से पूछा जाए कि 'बादल' क्या होता है तो उसकी अभिव्यक्ति का रूप कुछ इस प्रकार हो सकता है:

धरती का जल सूख-सूखकर उड़ जाता है।
नभ में जाकर वही 'जलद' पदवी पाता है।।

ऊपर बादल की शास्त्रीय अभिव्यक्ति में प्रयुक्त शब्दावली और काव्यात्मक अभिव्यक्ति में प्रयुक्त शब्दावली अर्थ की दृष्टि से लगभग समान है। जैसे समुद्र, नदी एवं झील के पानी के स्थान पर 'धरती का जल', वाष्पन के स्थान पर 'सूख-सूखकर उड़ना' एवं वायुमंडल में बहुत ऊँचाई को 'नभ' के द्वारा व्यक्त किया गया है।

चूँकि कविता में कवि की अभिरुचि का विशेष महत्व हो जाता है इसलिए कोई अन्य कवि 'बादल' की अभिव्यक्ति इस रूप में भी कर सकता है:-

हम सागर के धवल हास हैं
जल के धूम, गगन की धूल।
अनिल फेन, उषा के पल्लव
वारि-वसन, वसुधा के मूल।

यदि बारीकी से देखा जाए तो शास्त्रकार के शब्द उपकरण- 'सागर', 'जल', 'धूम', गगन, आदि यहाँ भी विद्यमान हैं, लेकिन 'बादल' का समग्र चित्र सर्वथा स्वतंत्र और नवीन है। काव्य की यह नवीनता ही उसे शास्त्र से अलग करती हे और यही विशेषता काव्य के अनुवाद में नाना प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न करती है। काव्यानुवाद में इसी प्रकार की कठिनाइयों के कारण विचारकों ने इस संबंध में नाना प्रकार के विचार व्यक्त किए। संक्षेप में यहाँ कुछ विद्वानों की काव्यानुवाद संबंधी धारणाओं को उद्धृत करना आवश्यक है:

1. All translations seems to me simply an attempt to solve an unsolvable problem.-Humbolt

2. It is useless to read Greek in translations. Translators can but offer is a vague equivelent. - Virginia Woolf

3. Nothing which is harmonised by the bond of muses can be changed from one language to another without destroying its sweetness -Dante

काव्यानुवाद के संबंध में विभिन्न विचारकों की उक्त धारणाएँ एक पक्षीय ही प्रतीत होती हैं, या यूँ कहा जा सकता है कि ये मान्यताएँ अर्द्धसत्य के ही अधिक नजदीक प्रतीत होती हैं। इसमें दो राय नहीं कि काव्यानुवाद बहुत ही मुश्किल है। लेकिन यह कहना कि काव्यानुवाद हो ही नहीं सकता अथवा असंभव है, सत्य से आँखें मूँदना ही होगा। आज तक अनेक अनुवाद हो चुके हैं, हो रहे हैं, और भविष्य में भी होते ही रहेंगे। जो हो चुका है, हो रहा है और होता भी रहेगा उसके बारे में यह कैसे कहा जा सकता है कि नहीं हो सकता।

पूर्व कथन के प्रमाण स्वरूप कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:-

ऑलिवर गोल्डस्मिथ की काव्य कृतियाँ, 'हरमिट' के दो अनुवाद, - 'एकांतवासी योगी' तथा 'योगी'। 'ट्रैवलर' के दो अनुवाद- 'श्रांत पथिक' और 'यात्री'। डेज टेंड विलेज' के अनुवाद, 'ऊजड़ गाम', 'ऊजड़ ग्राम'।

लाँगफैलो की काव्य कृतियों के अनुवाद।

एलेक्ज़ेंडर पोप की काव्य कृतियों के अनुवाद।

टॉमस ग्रे की कृति- 'एलेजी रिटर्न इन ए कंट्री चर्चयार्ड' के अनुवाद, 'ग्रामस्थ - शवागार में लिखित शोकोक्ति', 'ग्रामीण विलास', 'शोक संगीत', 'समाधि गीत' आदि।

लार्ड मैकाले की काव्यकृति- 'हौरेशस' का इसी नाम से छंदबद्ध अनुवाद।

सर एडविन आर्नल्ड की काव्यकृति 'लाइट ऑफ एशिया' का अनुवाद-'बुद्ध चरित'।

एडवर्ड फिटजेरल्ड की अनुवादित कृति 'रूबाइयात उमर ख़ैयाम' का अनेक हिंदी कवियों द्वारा काव्यानुवाद। इन अनुवादकों में श्री मैथिलीशरण गुप्त, पं. केशव प्रसाद पाठक, पं. बलदेव मिश्र, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, तथा रघुवंशलाल गुप्त प्रमुख हैं।

जॉन मिल्टन की काव्य कृतियों कें अनुवाद।

विलियम शेक्सपियर के सानेट तथा नाट्य कृतियों के अनुवाद।

पी. बी. शैली की अनूदित काव्य कृतियाँ।

जॉन कीट्स की अनूदित काव्य कृतियाँ। (महाकवि कीट्स का काव्यालोक)

विलियम वर्ड्सवर्थ की अनूदित काव्य कृतियाँ।

विलियम बटलर ईट्स की अनूदित काव्य कृतियाँ, आदि)।

कहने का तात्पर्य यह कि आज विश्व की अनेक भाषाओं की काव्य कृतियों के विपुल अनूदित काव्यकृतियाँ उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में काव्यानुवाद को पूरी तरह नकार देना किसी भी प्रकार से सही नहीं माना जा सकता। वस्तुत: काव्यानुवाद कविता का यथा संभव निकटतम समतुल्य होता है, यथावत मूल बहुत ही मशक्कत से संभव हो पाता है और अनेक बार ऐसा हो भी नहीं पाता।

इस संदर्भ में सबसे बड़ी बात यह है कि कविता का जो समग्र प्रभाव पाठक पर पड़ता है वह न तो मात्र कथ्य का होता है और न अकेले कथन शैली अथवा अभिव्यक्ति का। जो प्रभाव पाठक पर पड़ता है वह

दोनों का समवेत योग होता है। प्रत्येक भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति का तालमेल पूर्णत: अलग प्रकार का होता है और इसी के साथ तालमेल बैठाकर काव्य में अनूदित करना अनुवादक की अग्निपरीक्षा होती है। कुछ विद्वानों ने इसी बात को और आगे बढ़ाते हुए अनुवादक के कार्य को 'परकाया प्रवेश' की उपाधि दी, अर्थात् जो अनुवादक स्रोत भाषा की आंतरिक संरचना के साथ-साथ उस कविता विशेष और कवि के सामाजिक, राजनैतिक और भौगोलिक परिवेश को भली भाँति समझे बिना यदि लक्ष्य भाषा में उसका काव्यानुवाद करेगा तो वह अनुवाद मात्र अनुवाद ही होगा जिसमें न किसी प्रकार की जीवंतता होगी और न ही किसी प्रकार की प्रभावक्षमता।

अत: काव्यानुवाद के लिए पहली शर्त यह है कि स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य भाषा पर उसका समान अधिकार तो हो ही साथ ही उसका सहृद्य कवि होना भी आवश्यक है। एक कवि ही दूसरे कवि के हृदय की अनुभूतियों की गहराई को भली-भाँति समझकर उनको वाणी देने में समर्थ हो सकता है।

काव्यानुवाद की प्रक्रिया

अनुवाद प्रक्रिया का अर्थ है लक्ष्य भाषा में मूलपाठ (स्रोत भाषा का पाठ) के अंतरण की क्रमबद्ध प्रक्रिया। कवि के मन में उठने वाले विचार स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति रूढ़ियों में बंधकर मूलपाठ का आकार ग्रहण करते हैं। काव्यानुवादक अपनी प्रतिभा, भाषा ज्ञान, काव्यकौशल और विषय ज्ञान के अनुसार स्रोत भाषा (मूल भाषा) के इसी पाठ को लक्ष्य भाषा के पाठ में रूपांतरित करता है। स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद की प्रक्रिया विशिष्ट होती है। इस विशिष्ट प्रक्रिया पर 'नाइडा', 'न्यूमार्क' तथा 'बथगेट' जैसे पाश्चात्य विचारकों ने गंभीर चिंतन किया है। निष्कर्ष स्वरूप इन विद्वानों के मतों के आधार पर अनुवाद प्रक्रिया के तीन सोपान हैं, जो इस प्रकार हैं:-

(1) विश्लेषण
(2) अंतरण और
(3) पुनर्गठन।

(1) विश्लेषण

काव्यानुवादक पाठक के रूप में मूल पाठ को एक से अनेक बार पढ़ कर उसकी संरचना, व्याकरण और शब्दार्थ का विश्लेषण करता है। इस स्तर पर स्रोत भाषा के इस मूल पाठ की अभिव्यक्ति का स्वरूप अत्यंत अर्थवान होता है। मूल पाठ का विश्लेषण करते समय अनुवादक का यह प्रयत्न रहता है कि पाठ के बाह्य स्तर की संरचना का विश्लेषण करते समय उसके अंदर छिपे संदेश और अर्थ-संवेदना को भी भली-भाँति समझा जाए। इसी को परकाया प्रवेश भी कहा जा सकता है।

(2) अंतरण

स्रोत भाषा के पाठ (मूलपाठ) का भली-भाँति विश्लेषण करने के उपरांत काव्यानुवादक उसे अपने अनुसार लक्ष्य-भाषा में रूपांतरित करने का प्रयास करता है। अंतरण की इस प्रक्रिया में अनवुादक के अपने व्यक्तित्व, स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की आंतरिक और बाहरी संरचना के साथ-साथ अभिव्यक्ति-पद्धति पर गहरी पकड़ और विषय के ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इन तीनों में आवश्यकतानुसार सामंजस्य बनाते हुए स्रोत भाषा के काव्यगत कथ्य को लक्ष्य भाषा में अनुसृजित करना अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसीलिए काव्यानुवाद में अंतरण की प्रक्रिया का अन्यतम स्थान है।

(3) पुनर्गठन

अंतरण के पश्चात् पुनर्गठन की प्रक्रिया शुरू होती है। विश्लेषण द्वारा मूलपाठ (स्रोत भाषा के पाठ) के रूपांतरित होने के पश्चात ही पुनर्गठित पाठ का रूप ग्रहण करता है। "पुनर्गठन में लक्ष्य भाषा की अपनी अभिव्यक्ति प्रणाली और कथन रीति के अनुरूप पाठ को विधिवत बाँधना होता है।" वस्तुत: अनुवाद कर्म में पुनर्गठन की प्रक्रिया वह महत्वपूर्ण सोपान है जिसके द्वारा मूलपाठ (स्रोत भाषा का कथ्य) लक्ष्य भाषा में यथावत रूप में संरक्षित करने का प्रयास किया जाता है। अत: इस बात को निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पुनर्गठन की प्रक्रिया द्वारा ही अनूदित पाठ लक्ष्य भाषा के पाठक को सहज-स्वाभाविक और बोधगम्य रूप में प्राप्त हो पाता है।

वस्तुत: जब अनुवादक उक्त प्रक्रियाओं से गुजरता है तब उसके मार्ग में अनेक प्रकार की समस्याएँ आती हैं। इनमें से मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैं:-

काव्यानुवाद की मुख्य समस्याएँ

(i) स्रोत भाषा के सभी शब्दों के लिए लक्ष्य

भाषा में प्राप्त शब्द आंतरिक, बाह्य तथा प्रभाव की दृष्टि से सर्वदा समान नहीं होते।

(ii) काव्यानुवादक मूलत: कवि होता है, अत: वह अपने व्यक्तित्व को अनुवाद के बीच में लाने से चाह कर भी रोक नहीं पाता।

(iii) विशिष्ट कविता का अनुवाद विशिष्ट व्यक्तिनिष्ठ तथा विशिष्ट मूडनिष्ठ होता है- हर व्यक्ति के लिए हर कविता का अनुवाद संभव नहीं हो पाता।

(iv) मूल भाषा के अलंकारों को लक्ष्य भाषा में रूपांतरित करना अत्यंत दुष्कर कार्य होता है।

(v) काव्यानुवाद में छंदों की समस्या एक जटिल रूप में सामने आती है।

(vii) सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भौगालिक पृष्ठभूमि से संबंधित बिंबों को यथावत रूप में अनुवाद करना टेड़ी खीर होता है।

उक्त समस्याओं में से कुछ पर यहाँ संक्षेप में विचार आवश्यक है।

काव्यानुवाद में अलंकारों की समस्या

काव्य की भाषा प्राय: अलंकार प्रधान होती है और हर भाषा में समान अलंकार प्राय: नहीं मिल पाते। अलंकारों को सामान्यत: दो भागों में बाँटा जाता है- शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्दालंकार में से कुछ, यथा अनुप्रास, मूलत: ध्वनि सापेक्ष होते हैं और कुछ, यथा श्लेष शब्द सापेक्ष। अनुवाद करते समय शब्द परिवर्तन एक प्रकार से अनिवार्य हो जाने के कारण मूल के अलंकारों का यथावत अंतरण असंभव हो जाता है। हाँ, कुछ सिद्धहस्त अनुवादकों ने इस क्षति की पूर्ति प्राय: स्वतंत्र एवं समरूप अलंकार-विधान द्वारा की है; और कहीं-कहीं तो अनुवाद की शब्दालंकार-योजना मूल के काफी निकट तक पहुँच गई है। उदाहरणस्वरूप पी. बी. शैली की प्रसिद्ध कविता, 'ओड टु द वेस्ट विंड' का उल्लेख करना आवश्यक है जिसमें ध्वन्यावर्तन के द्वारा प्रभाव साम्य अक्षुण्ण रहता है:

"O Wild West Wind, Thou breath of Autum's being"

यतेंद्र कुमार ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है:

"हे प्रमत्त पश्चिमी प्रभंजन, शरदकाल के जीवनप्राण।"

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि मूल पाठ में प्रभंजन की जो प्रमत्तता 'डब्ल्यू' W की आवृत्ति द्वारा और जो प्राणप्रदता 'बी' की आवृत्ति द्वारा निरूपित की गई है वही प्रभाव काव्यानुवाद में 'प्र' की आवृत्ति द्वारा प्राप्त किया गया है। एक और भी उदाहरण देखा जा सकता है जिसमें जीवन की अस्थिरता का चित्रण करते हुए एडवर्ड फिट्जरेल्ड ने लिखा है:-

"Ah make the most of what we yet may spend,
Before we too into the dust descent
Dust into Dust, and under Dust, to lie,
Sans wine, sans song, sans singers, and -sans end,"

डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने इस अवतरण का अनुवाद इस प्रकार किया है:

अरे, अब भी जो कुछ है शेष भोग वह सकते हम स्वच्छंद,
राख में मिलजाने के पूर्व क्यों न कर लें जीभर आनंद,
गड़ेंगे जब हम होकर राख, राख में, तब फिर कहाँ बसंत,
कहाँ स्वरकार, सुरा, संगीत, कहाँ इस सूनेपन का अंत।

उक्त उद्धरणों मूल पाठ (अंग्रेजी) और काव्यानुवाद (हिंदी) की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि फिट्ज़रेल्ड ने जीवन की जिस क्षणभंगुरता, निस्सारता, अवशता का जो प्रभाव 'डस्ट' शब्द के आवर्तन द्वारा चित्रित किया है वहीं प्रभाव डॉ. बच्चन ने हिंदी अनुवाद में 'राख' की पुनरावृत्ति द्वारा पूर्ण किया है हिंदी में 'स' अक्षर की आवृत्ति द्वारा पैदा किया गया है। इतना ही नहीं मरणोपरांत के जिस वातावरण को अंग्रेजी में 'एस' (स) अक्षर की आवृत्ति द्वारा पैदा किया गया है हिंदी में 'स' अक्षर की आवृत्ति द्वारा पैदा किया गया है। यही काव्यानुवादक की सफलता का प्रमाण है। जो दोनों भाषाओं- 'स्रोतभाषा और 'लक्ष्यभाषा' पर समान अधिकार और मूलत: कवि होने के कारण संभव हो सका।

यमक अलंकार का एक सुंदर उदाहरण हमें 'सर एडविन आर्नल्ड' कृत 'लाइट ऑफ एशिया' में देखने को मिलता है:-

"Fear so to die they are afraid to fear"

शब्दालंकार का यही चमत्कार आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत उक्त कृति के काव्यानुवाद- 'बुद्ध चरित' में देखने को मिलता है:

'मृत्यु भय नर करत ऐसो भय करत भय खात'

इस संदर्भ में यह भी सच है कि अनेक बार सभी अलंकारों का अनुवाद प्राय: संभव भी नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए 'ब्लेक' की इन पंक्तियों को लिया जा सकता है।

"There is a cloud in the sky,
There is a cloud on the earth,"

उक्त उदाहरण में एक स्थान पर cloud का अर्थ 'बादल' है तो दूसरे स्थान पर 'हब्शी बच्चा। इस प्रकार के प्रयोग अनुवादक के सामने यक्ष प्रश्न बनकर उपस्थित हो जाते हैं।

काव्यानुवाद और छंदों की समस्या

कविता और छंद का साहचर्य अत्यंत प्राचीन, उपयोगी तथा महत्वपूर्ण होने पर भी निर्विवाद नहीं है। इस संबंध में डॉ. नगेंद्र का मत महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। "संस्कृत-काव्यशास्त्र का निभ्रांत मत है कि छंद कविता वैकल्पिक उपकरण है। उधर हिंदी के मध्य युगीन आचार्यों के लिए छंद के अभाव में कविता की कल्पना संभव नहीं थी। यूरोप में भी इस प्रश्न को लेकर दो दल बन गए थे- एक ओर अरस्तु और कॉलरिज जैसे आलोचक छंद को वैकल्पिक मानते थे, तो दूसरी ओर ड्राइडन आदि के मत से छंद का संगीत कविता का अनिवार्य माध्यम था।" वस्तुत: छंद कोई कृत्रिम विधान न होकर एक व्यवस्थित संयोजना है। यदि बारीकी से विचार किया जाए तो यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि लैटिन, ग्रीक और संस्कृत में जहाँ छंद योजना का आधार मात्रा अथवा वर्णगत है वहीं अंग्रेजी में वर्गगत गुरुता-लघुता को आधार न मानकर स्वराघात को आधार माना जाता है। अत: काव्यानुवादक को चाहिए कि वह स्रोत भाषा (मूलपाठ) के छंद को लक्ष्य भाषा में उपलब्ध सर्वाधिक उपयुक्त छंद में रूपांतरित कर अपने धर्म का निर्वाह करे।

ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं जहाँ आंग्ल कवियों के द्विपदों का हिंदी काव्यानुवादकों ने दोहा, रोला, रूपमाला आदि छंदों में सफलता पूर्वक मन मोहक अनुवाद किए हैं। इस प्रसंग में सर एडविन आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ एशिया' निम्नलिखित कपलेट (द्विपाद) का आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया अनुवाद एक प्रतिमान माना जा सकता है:

"We are the voices of the wondering wind
Which moan for rest and rest can never find."

हिंदी काव्यानुवाद

हम है वाहि पवन की वानी जो इत उत नित धावै।
हाहा करति विराम हेतु
पै कतहूँ विराम ना पावै।।

इसके अतिरिक्त हिंदी में अनूदित काव्य-कृतियों में चतुष्पद अनेक रूपों में विद्यमान है। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण चतुष्पद रूबाई है। इतना ही नहीं आंग्ल कवि फिट्जरेल्ड ने अपनी अमर कृति 'रूबाईयात उमर खैयाम' में इसी छंद का प्रयोग कर इसे विश्व-साहित्य में अमरत्व की श्रेणी में लाकर रख दिया। हो सकता है फिटज़रेल्ड को भी वह लोकप्रियता प्राप्त न होती जो आज है। यहाँ एक उदाहरण और उसका छंदबद्ध काव्यानुवाद प्रस्तुत है:

"And those who husbanded the Golden Grain.
And those who flung to the winds like rain.
Alike to no such avreate earth are turn'd
As burried once, men want dug up again."

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने उक्त रूबाई छंद में ही काव्यानुवाद किया, लेकिन यहाँ डॉ. हरिवंशराय बच्चन द्वारा किया गया काव्यानुवाद, जो रूबाई में न होकर अन्य छंद में है विचारार्थ प्रस्तुत है:

समेटा जिन कृपणों ने स्वर्ण सुरक्षित रखा उसको मूँद,
लुटाया और जिन्होंने खूब, लुटाते जैसे बादल बूँद,
गड़े दोनों ही एक समान हुए मिट्टी दोनों के हाड़,
न कोई हो पाया वह स्वर्ण जिसे देखें फिर लोग उखाड़।

इस प्रकार यह आवश्यक नहीं कि मूल पाठ (स्रोत भाषा का पाठ) जिस छंद में है उसी छंद में लक्ष्य भाषा में उसका काव्यानुवाद किया जाए। यह काव्यानुवादक का कर्म और धर्म है कि वह सर्वाधिक उपयुक्त छंद का चयन कर अनुसर्जना करे।

काव्यानुवाद और सांस्कृतिक परिवेश

हर भाषा के हर शब्द का अपना एक अर्थ बिंब होता है जो उसके सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक

पृष्ठभूमि से संबंद्ध हो सकता है। लक्ष्य भाषा में उसी प्रकार का प्रतिशत मिलना प्राय: संभव नहीं होता जो स्रोतभाषा में प्रस्तुत बिंब को उसी रूप में प्रस्तुत कर सके। उदाहरण के लिए 'वीरेंद्र मिश्र' की निम्नलिखित पंक्तियों को लिया जा सकता है जिसमें भारतीय जनजीवन में व्याप्त कन्या के विवाह का एक चित्र अंकित है:

सुख स्वप्नों के मंगल कलश द्वार पर,
अनचाहे दृग उठते बंदनबार पर।
और एक दिन जाती घर से लाडली,
कुंकुम की डोली में चंपा की कली।

इस प्रकार के सांस्कृतिक दृश्यों का काव्यानुवाद भिन्न सांस्कृतिक परिवेश की भाषा में करना मुश्किल ही नहीं अनेक बार असंभव हो जाता है।

इसी प्रकार रूस का जाड़ा और किसी अरब देश का जाड़ा, भारत की गर्मी और कनाडा की गर्मी 'अंगद का पैर' 'रामबाण', 'दधीचि की 'हड्डी', 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'द्रोपदी का चीर' आदि में इस प्रकार के जटिल बिंब हैं जिन्हें अनूदित कर पाना अत्यंत कठिन है। ऐसी स्थिति में मात्र पाद टिप्पणियों से ही काम चलाया जा सकता है लेकिन उससे भाषा का पैनापन संप्रेषित नहीं हो पाता।

उपर्युक्त समस्त विवेचन विश्लेषण के आधार पर एक बात उभर कर आती है कि जब काव्यानुवादक काव्यानुवाद की नाना प्रकार की कठिनाइयों और समस्याओं से जूझते हुए स्रोत भाषा के पाठ (मूल पाठ) के विश्लेषण और अतरण के उपरांत जब अपने अनुवाद कर्म का पुनर्गठन करता है तो अनेक बार मूल प्रभाव का या मूल प्रभाव उत्पन्न करने वाले मूल काव्य-तत्वों का कुछ अंश छूट जाता है, और अनेक बार कुछ अंश जुड़ जाने की भी संभावनाएँ बनी रहती हैं; जो वस्तुत: मूल में नहीं होता। काव्यानुवाद में कुछ नया जुड़ने से अनुवाद में जान तो आ जाती है लेकिन वह मूल से दूर भी हो जाता है। इस छूटने और जुड़ने की स्थिति को गणितीय पद्धति से इस प्रकार समझा जा सकता है:-

1. क = मूल कविता
2. ख = अनुवाद में छूटे तत्व
3. ग = अनुवादक द्वारा जोड़े गए तत्व।

स्पष्ट है कि-

(क-ख) = 'क' के अधिक निकट।

(क-ख) + ग = 'क' से अधिक दूर।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक है कि 'फिट्ज़रेल्ड ने 'रूबाइया उमर खैयाम' में अपनी ओर से काफी जोड़ा है, वह मात्र यथावत अनुवाद नहीं है। उनका स्पष्ट मानना है कि काव्यानुवादक को अपनी रुचि के अनुसार मूल को फिर से ढालना चाहिए। उन्होंने कहा-

"भूसा भरे गीध की अपेक्षा मैं जीवंत 'गौरेया' पसंद करूँगा।"

उनके अपने शब्दों में,

"I am persuaded that the translator must re-cast the original into his own likeness- better a live sparrow than a stuffed eagle."

इसमें सबसे विचारणीय मुद्दा यही है कि 'फिट्ज़रेल्ड' का 'भूसा-भरा गीध' (stuffed eagle) तथा जीवंत गौरैया से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कि -फिट्ज़रेल्ड' 'stuffed eagle' तथा "live sparrow' के माध्यम से क्रमश: निर्जीव अनुवाद (शब्दानुवाद) तथा 'जीवंत अनुवाद' (भावानुवाद) की ओर संकेत करना चाहते हैं। बिना पूर्वापर संबंध समझे यदि शब्दानुवाद कर दिया जाता है तो किस प्रकार अर्थ का अनर्थ होने की संभावना बनी रहती है, इस पर आगे प्रकाश डाला जाएगा।

काव्यानुवाद का व्यावहारिक पक्ष

काव्यानुवाद के व्यावहरिक पक्ष पर जब हम बात करते है 'फिट्ज़रेन्ड' का चिंतन अधिक सार्थक जान पड़ता है। सुप्रसिद्ध 'कला-दार्शनिक' क्रोचे ने भी इसी बात को प्रतिपादित किया है। उनका स्पष्ट मत है कि जिसे हम 'अनुवाद' कहते हैं, वह वास्तव में दूसरी कृति ही होती है। इस प्रसंग में अब यह आवश्यक है कि कुछ उद्धरणों के माध्यम से काव्यानुवाद के नितांत व्यावहारिक पक्ष पर विचार किया जाए। इस संबंध में सर्वप्रथम शेक्सपियर के निम्नलिखित सॉनेट को लिया जा सकता है जिसमें 'काल' की कठोरता और दुर्दमनीयता के निरूपण के लिए 'Brass' का भी प्रयोग किया गया है-

"Since brass, nor stone, nor earth, nor boundless sea,

But sad mortality o'ersways their power---"

हिंदी काव्यानुवाद:

"वज्र धातु हो या प्रस्तर हो धरणी हो या दुर्दम
सागर ये हैं नतशिर सभी सामने क्रूर काल के"

यदि मूल पाठ में आए के 'Brass' के लिए अनुवाद में प्रतिशब्द 'पीतल' का प्रयोग किया जाता जो वह प्रभाव नहीं आ पाता जिसके लिए मूल कवि शेक्सपियर ने Brass का प्रयोग किया था। इसी संदर्भ में पी. बी. शैली की प्रसिद्ध कविता 'ओड टू द वेस्ट विंड की पहली ही पंक्ति को लिया जा सकता है जिसमें यूरोप और नार्थ अमेरिका की पतझड ऋतु Autum का सजीव चित्रांकन किया गया है:

"O wild west wind, thou breath of Autum's being----"

इसके दो अनुवाद हमें देखने को मिलते हैं:-

1. "ओ पश्चिमी समीर! शरद की प्राणवायु मतवाली"

2. "हे प्रमत्त पश्चिमी प्रभंजन, शरदकाल के जीवन प्राण। पहला अनुवाद मात्र शब्दानुवाद प्रतीत होता है जब कि दूसरे अनुवाद में अनुवादक ने 'परकाया प्रवेश' के द्वारा इस कविता के समस्त कथ्य, तथा शब्दों के परस्पर संबंध को ध्यान में रखते हुए 'wind' के लिए 'प्रभंजन' तथा 'wild' के लिए 'प्रमत्त' प्रतिशब्द का प्रयोग किया जो सर्वथा सार्थक और प्रसंगानुकूल है।

अनुवाद करते समय अनेक बार काव्यानुवादक के सामने ऐसी भी स्थिति आती है कि उसे मूलपाठ में कही हुई बात को स्पष्ट करने और समग्र अर्थ में सुसंगति स्थापित करने के उद्देश्य से मूल शब्द के अर्थ के स्थान किसी अन्य शब्द का प्रयोग करने के लिए एक प्रकार से बाध्य होना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप मिल्टन की इन पंक्तियों को लिया जा सकता है:-

"Doth God exact day- labour light denied?
I fondly ask. But patience to prevent
That murmur soon replies-----"

हिंदी और अंग्रेजी के निष्णात विद्वान प्रो. नगेंद्र ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है:-

तो मेरा अविवेक प्रश्न करता है मुझसे
दृष्टिहीन जब किया मुझे मेरे सृष्टा ने,
फिर क्यों आशा करता है मुझसे अर्चन की?
किंतु तभी मेरा विवेक जागृत हो कहता.....

अनुवाद में fondly (मूर्खता) के लिए 'अविवेक' का प्रयोग किया गया है जो मूल का प्रतिशब्द तो नहीं उसके निकट अवश्य है लेकिन Patience (धैर्य) के लिए 'विवेक' का प्रयोग किया गया है जो कहीं से भी मूल शब्द का अर्थ नहीं देता। यहाँ विचारणीय बात यह है कि Patience के लिए विवेक शब्द के प्रयोग से कविता के समग्र अर्थ में कोई अंतर नहीं आता, और यदि गहराई से देखा जाए तो 'धैर्य' 'विवेक' से ही प्रेरित होता है। एक विवेकशील प्राणी ही धैर्यवान हो सकता है। साथ ही, अनुवाद में 'विवेक' और 'अविवेक' को आमने-सामने रखकर एक विरोध के माध्यम से काव्य में संगति लाने का प्रयास किया गया है और मूल कथ्य के समग्र प्रभाव में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं आने पाया है।

भावानुवाद का एक और भी उदाहरण देखा जा सकता है जिसमें काव्यानुवादक ने मूल को अपनी रुचि के अनुसार ढालते हुए अनुसर्जना की है लेकिन मूल प्रभाव में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं आने पाया है। इस संदर्भ में पी. बी. शैली की निम्नलिखित कविता को लिया जा सकता है:-

"See the mountains kiss the high heaven
and the waves claps one another
the winds of heaven mix for ever
with a sweet emotion.
The sunlight claps the earth,
and the moon beams kiss the sea,
what is all that sweet worlds worth
if you kiss not me."

इसका एक हृदय स्पर्शी काव्यानुवाद देखिए जिसमें अनुवादक ने प्रतिपाद्य में अंतर लाए बिना एक भव्य अनुवाद किया है:-

शिराएँ पर्वतों की चूमती हैं मृदुल मुख शशि का
उदधि की बीचियाँ करती हैं आलिंगन तरंगों का।
बजाता प्रेम की बंशी, उड़ता गंध दिशि-दिशि में-
वहे स्वर्गिक पवन-मंथर जगाता मदन मन-मन में।।
प्रभा दिनकर की चूमे है सुनहरी अंक धरणी का,
शशि की रश्मियाँ चुंबन करें देखो समंदर का,

मगर क्या लाभ इन सबके प्रकंपित हृदय भावों का

अगर तुम भी न लो निज अंक में यह अंक शरमा कर।

जब अनुवादक मूल पाठ की संवेदना को भली भाँति समझे बिना, शास्त्र की गहराई में जाए बिना कविता में प्रयुक्त उपमानों का शाब्दिक अनुवाद कर देता है तब किस प्रकार अर्थ से अनर्थ हो जाता है इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है:

काली-आँखों में कितने,
यौवन के मद की लाली।
माणिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली। - 'आँसू' - प्रसाद।

अंग्रेजी अनुवाद:

"How flushed were those dark eyes
with the blushing glow of youth
who filled that sapphire-cup
with ruby-wine in truth?"

इस काव्यानुवाद में यदि अनुवादक ने मूल पाठ की प्रथम दो पंक्तियों की संवेदना को समझा होता तो 'sapphire-cup' के प्रसंग में मूलपाठ की *माणिक-मदिरा'* के लिए शब्दानुवाद 'ruby-wine' कदापि न किया होता। लक्ष्य भाषा में इस प्रकार का कोई प्रयोग नहीं है। वस्तुत: यदि यहाँ 'ruby wine' के स्थान पर 'red-wine' का प्रयोग किया जाता तो सर्वोत्तम होता। 'red-wine' का प्रयोग अंग्रेजी साहित्य में उपलब्ध भी है और यह पश्चिम का लोकप्रिय पेय भी है।

वस्तुत: काव्यानुवाद विषयक कठिनाइयों एवं समस्याओं का संबंध विषय, भाषा, परिवेश, व्यक्ति समाज आदि के साथ जुड़ा हुआ है, इस संदर्भ में जो जितना पारंगत और 'परकाया प्रवेश' में जितना प्रवीण होगा वह उतने ही सफल काव्यानुवाद का प्रणेता हो सकता है। इसके लिए यह परमावश्यक है कि विश्वविद्यालयों में 'रस-साहित्य' के अनुवाद के शिक्षण-प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था हो। साहित्यिक अनुवादों को भी साहित्य का प्रमुख अंग मानकर साहित्यिक स्तर पर उनका मूल्यांकन एवं महत्व निर्धारित किया जाए। साहित्य-साधना के राष्ट्रीय अनुष्ठान में उनके योगदान को भी रेखांकित किया जाए। तभी हम संभवत: राष्ट्रकवि स्वर्गीय मैथिली शरण गुप्त की यह मनोकामना चरितार्थ कर पाएँगे:

सज्जनो! भगीरथ प्रयत्न फलें आपके,
ले आ सकते हैं गंगा- से प्रवाह जो।
आप अनुवाद की है योजनाएँ कर दें
तो कह सकें हम सगर्व-विश्व भर के
वाङमय में जो है श्रेष्ठ, चुन लिया हमने
और जो हमारा अपना है, अतिरिक्त है।

– A-601; मयंक अपार्टमैंट्स, प्लॉट नं. 21, सै. - 06, द्वारका, नई दिल्ली- 110075

❑❑❑

अनुवाद व्यवसाय : दिशाएँ और संभावनाएँ

प्रो. दिलीप सिंह

अनुवाद एक क्रिया है। दो भाषाओं के तुलनात्मक और व्यतिरेकी विश्लेषण के माध्यम से यह क्रिया संपन्न होती है। दो भाषाओं, दो संस्कृतियों और विषय क्षेत्र की जानकारी के साथ ही अनुवादक से भाषावैज्ञानिक ज्ञान की अपेक्षा भी अब सर्वोपरि मानी जा रही है। आधुनिक युग में अनुवाद विशेषज्ञता और कौशल का पर्याय बनता जा रहा है। इसका कारण यह है कि अनुवाद सामाजिक संप्रेषण और प्रयोक्ता सापेक्ष बनता चला जा रहा है। जैसे-जैसे समाज का व्यापक वर्ग अनूदित पाठ का जाने-अनजाने उपभोक्ता बनता है, वैसे-वैसे अनुवाद की 'मंतव्य केंद्रित' दृष्टि अभिव्यक्ति की सटीकता, प्रभावशीलता और लक्ष्य भाषा की सृजनात्मक शक्ति पर केंद्रित होने लगती है।

एक ओर हमारे सामने अनुवाद क्रिया का परंपरागत रूप है जिसके ढाँचे में सिमटा हुआ साहित्यिक और साहित्येतर दोनों प्रकार का पाठ अनूदित हो रहा है। यह अनुवाद प्रक्रिया न तो अनुवादक से किसी प्रशिक्षण की अपेक्षा रखती है, न ही सूक्ष्म भाषाविज्ञान (माइक्रो लिंग्विस्टिक्स) के ज्ञान की और न ही अद्यतन अनुवाद सिद्धांतों के परिचय की। दो भाषाओं की जानकारी ही यहाँ अनुवादक के लिए पर्याप्त मानी जाती रही है। इस स्तर पर अनुवाद व्यक्तिगत कार्य के रूप में किया जाता रहा है और आज भी किया जाता है। साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद में भी और सरकारी स्तर पर राजभाषा के क्षेत्र से संबंधित (विशेष रूप से प्रशासन, बैंक, विधि आदि में) क्षेत्रों में अनुवाद की प्रक्रिया को समझे बिना स्रोतभाषा के पीछे चलते हुए, लक्ष्यभाषा में बनावटी पाठ रूपांतरित होते देखे जा सकते हैं जिनकी सीमाओं और समस्याओं पर सतही ढंग से बहस भी जारी है कि लक्ष्यभाषा में स्रोतभाषा के समतुल्य शब्द उपलब्ध हैं कि नहीं या दोनों भाषाओं में कौन सी भाषिक इकाइयाँ अथवा व्याकरणिक संरचनाएँ समस्याएँ उत्पन्न करती हैं आदि। यह उल्लेखनीय है कि अनुवाद-चिंतन से रहित इस अनुवाद कार्य में लक्ष्यभाषा के महत्व पर भी ध्यान नहीं दिया जाता। स्रोतभाषा पाठ की प्रमुखता ही यहाँ अनुकरणीय बनती है जबकि आधुनिक अनुवाद-चिंतन यह मानता है कि अनुवादक की दक्षता लक्ष्यभाषा में, उसके शैलीगत, प्रकार्यगत और अभिव्यंजनात्मक रूपों की समस्त विशेषताओं से युक्त होनी चाहिए। ऐसा न होने से अनूदित पाठ टूटा हुआ, उखड़ा हुआ और लक्ष्यभाषा की प्रकृति से दूर जाता हुआ दिखाई देने लगता है। हमें यह स्वीकारना होगा कि अनुवाद कार्य को सही प्रक्रिया में ढालकर ही संप्रेषणीय और स्वीकृत प्रारूप (अनूदित पाठ) में अंतरित किया जा सकता है। अनूदित पाठ का अपठनीय और कृत्रिम होना इसी बात को दर्शाता है कि कई क्षेत्रों में हम आज भी अनुवाद के सामाजिक दायित्वों को उतनी गंभीरता से नहीं ले पाए हैं, जितना कि हमें लेना चाहिए था।

अनुवाद एक सामाजिक कार्य है अतः उसके विस्तार को बाधित नहीं किया जा सकता। जो लोग अनुवाद के माध्यम से एक निश्चित लक्ष्य, लाभ और प्रसार की दृष्टि से अनुवाद को उपकरण बनाते हैं वे

इसकी शक्ति और सामर्थ्य के विषय में अधिक जागरूक हैं। प्रकाशन संस्थाएँ जनसंचार के प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, बड़ी उत्पादक संस्थाएँ आदि अनुवाद की सामाजिक भूमिका को पहचान चुके हैं। वे यह जानते हैं कि राष्ट्रीय विकास देसी भाषाओं के विकास से ही संभव है और भाषा विकास की अधिकतम प्रणालियाँ अनुवाद शास्त्र के पास हैं। वे यह भी जानते हैं कि आर्थिक, औद्योगिक और व्यावसायिक विकास में जनसहभागिता आवश्यक है जिसका निर्माण जनभाषाओं (मातृभाषाओं) के माध्यम से ही संभव हो सकता है। वे इस बात के प्रति भी सचेत हैं कि जन संप्रेषण में जिस भाषारूप को आधार बनाया जाए, वह जन-प्रचलित भाषारूपों के सहारे ही बनना चाहिए और यदि इस भाषारूप को अनुवाद के द्वारा सिद्ध किया जा रहा हो तो अनुवाद प्रक्रिया को अधिक से अधिक सर्जनात्मक बनाने की जरूरत होगी, अर्थात् स्वतंत्रता के बाद उपस्थित ऐसे कई क्षेत्र आज हमारे सामने हैं जो अनुवाद में लक्ष्यभाषा के महत्व, अनूदित सामग्री के उपभोक्ता की भाषायी स्थिति तथा सर्जनात्मकता की विधियों को महत्व देते हुए अनुवाद को स्वाभाविक, स्वीकार्य, सुबोध और शक्तिशाली माध्यम के रूप में सामने लाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

कहना न होगा कि इनमें से अधिकांश क्षेत्र व्यावसायिक हैं अर्थात् अनुवाद कार्य उनके लिए व्यवसाय को विकसित करने का माध्यम होता है। इसमें वे सफलता तभी पाते हैं जब वे जनभाषाओं के निकट जाएँ। उनके लिए मातृभाषाओं के निकट जाना कोई संवैधानिक मजबूरी नहीं है और न ही वे राजभाषा नियम के क्रियान्वयन के लिए बाध्य हैं। यह उनकी व्यावसायिक जरूरत है क्योंकि उनके व्यवसाय पर जनभाषाओं का दबाव बराबर बना रहता है। इसलिए अपनी अधिकांश व्यावसायिक गतिविधियों में वे अंग्रेजी के साथ हिंदी और भारतीय भाषाओं को उनके स्वाभाविक रूप में ले आते हैं और इस प्रकार उपभोक्ता से सीधा संपर्क साधते हैं। ऐसी स्थिति में अधिकांशतः अंग्रेजी मूलभाषा होती है और भारतीय भाषाएँ लक्ष्यभाषा। विज्ञापन, बाजार समाचार, शेयर बाजार की खबरें, नए उत्पादों की जानकारी और व्यवसाय जगत की हलचलों से संबंधित पाठ निश्चित ही पहले अंग्रेजी में तैयार किए जाते हैं और फिर उन्हें भारतीय भाषाओं में अनूदित करके बड़े उपभोक्ता समुदाय तक पहुँचाया जाता है। यह स्थिति एक सीमा तक पहले से चली आ रही है लेकिन पिछले कुछ वर्षों में व्यवसाय जगत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन से इसमें तेजी आई है। यहीं से अनुवाद भी एक व्यवसाय के रूप में उभरता दिखाई देने लगा है। व्यापक व्यवसाय क्षेत्र में और भारत की बहुभाषिक स्थिति में कोई एक व्यक्ति या कुछ लोगों का समूह व्यवसाय जगत की अपेक्षाओं और भाषा समुदायों की आकांक्षाओं के अनुरूप विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित पाठ तैयार नहीं कर सकता। इसके लिए पिछले कुछ ही वर्षों में व्यावसायिक (प्रोफेशनल) कंसलटेंसीज सामने आई हैं जो इस कार्य को पूरी दक्षता के साथ कर रही हैं।

अनुवाद का व्यवसाय के रूप में प्रारंभिक विकास साहित्यिक अनुवाद से ही संबंधित है। यह प्रक्रिया अमरीका और यूरोप में बहुत तेजी से विकसित हुई। इनका लोकप्रिय साहित्य (पॉपुलर सीरीज) यदि मूल भाषा में लाखों तक पहुँचता अर्थात् उसकी बिक्री बढ़ती तो उसका अनुवाद अन्य भाषाओं में तुरंत करके उसकी मार्केटिंग की जाती। इसी तरह अब हिंदी में भी लोकप्रिय साहित्य अनूदित होकर आने लगा है। तस्लीमा नसरीन, विक्रम सेठ, खुशवंत सिंह, शोभा डे, कमला दास, अरुंधती राय आदि अनेक लेखकों की लोकप्रिय कृतियाँ हिंदी में आईं और अच्छा व्यवसाय किया। प्रकाशन जगत में पत्र-पत्रिकाओं के द्विभाषी और बहुभाषी संस्करण निकालने की परंपरा के पीछे भी निहित कारण व्यावसायिक है। इंद्रजाल कॉमिक्स, स्टार कॉमिक्स, चंदा मामा और इंडिया टुडे अंग्रेजी के साथ-साथ एकाधिक भारतीय भाषाओं में प्रकाशित किए जाते हैं। अंग्रेजी और हिंदी में समानांतर प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं की संख्या बहुत बड़ी है - ब्लिट्ज (अंग्रेजी हिंदी), रीडर्स डाइजेस्ट-सर्वोत्तम, टाइम्स ऑफ इंडिया-नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान टाइम्स-दैनिक हिंदुस्तान, इंडियन एक्सप्रेस-जनसत्ता (सभी अंग्रेजी हिंदी)। ऐसी ही स्थिति अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं की भी है जहाँ एक ही प्रकाशन समूह दोनों भाषाओं की पत्रकारिता से जुड़ा है। हिंदी और भारतीय भाषाओं में भी संबद्ध राज्यों से अखबार प्रकाशित होते हैं, विशेष रूप से उन राज्यों से जिन्होंने हिंदी को अपने राज्य की सहराजभाषा के रूप

में मान्यता दी है और जिनमें हिंदी पढ़ने-समझने वालों की संख्या अधिक है जैसे पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल आदि। प्रकाशन जगत की इस व्यावसायिकता को सरकारी प्रकाशन संस्थाएँ भी पर्याप्त ढंग से प्रोत्साहित कर रही हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट, केंद्रीय साहित्य अकादमी और भारत सरकार का प्रकाशन विभाग जैसे संगठन भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। हिंदी को अनुवाद की केंद्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और भारतीय भाषा साहित्य को उसकी क्षेत्रीय परिधि से निकालकर राष्ट्रीय स्तर पर अथवा अखिल भारतीय स्तर पर स्थापित करने में इनका योगदान उल्लेखनीय है।

प्रकाशन और पत्रकारिता के साथ ही अनुवाद की व्यावसायिकता को बढ़ावा देने वाला और उसे बहुआयामी बनाने वाला क्षेत्र इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का है जिसने पिछले कुछ वर्षों में ही न केवल संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की स्वीकार्यता और लोकप्रियता में वृद्धि की है, बल्कि अनुवाद के ऐसे विविध क्षेत्र और स्वरूप हमारे सामने रखे हैं जिनसे भारत की भाषाएँ तो एक दूसरे के निकट आई ही हैं, विश्व की अनेक भाषाएँ भी अनुवाद की स्रोतभाषा के रूप में अपनी जगह बनाने लगी हैं। इस बात को टेलीविजन के कार्यक्रमों के संदर्भ में रेखाकिंत किया जा सकता है। इसका सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र विज्ञापन का है। विज्ञापन की भाषा अनुवाद-आश्रित होते हुए भी सृजनात्मक स्तर पर सर्वश्रेष्ठ है। एक समय प्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक लीच ने अंग्रेजी विज्ञापनों की भाषा पर एक पुस्तक लिखी थी। हिंदी विज्ञापनों की भाषा पर भी डॉ. सुरेश कुमार ने अंग्रेजी में एक पुस्तक लिखी (हिंदी इन एडवरटाइजिंग)। इन दोनों पुस्तकों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी विज्ञापनों की भाषा विज्ञापित वस्तु के अनुसार अपने को ढालती है। यह भी पता चलता है कि हिंदी भाषा के शैलीगत भेदों को विज्ञापन बड़े ही सटीक प्रयोगों में बाँधकर रखते हैं। यह भी देखा जा सकता है कि संकर शब्दरचना और वाक्यगत कोड मिश्रण के संतुलित विधान द्वारा विज्ञापन की हिंदी कैसे दर्शक-उपभोक्ता की जबान पर चढ़ जाती है और यह भी कि अंग्रेजी से अनूदित हिंदी विज्ञापनों की कितनी सृजनात्मक कोटियाँ हैं तथा वे कितनी तरह से वाग्मितापरक उपकरणों (रहटरिक डिवाइसेज) का प्रयोग करती हैं। टेलीविजन पर प्रसारित हिंदी विज्ञापन अब यह भी सिद्ध कर रहे हैं कि उपभोक्ता वर्ग का बड़ा प्रतिशत अपनी भाषा के प्रति आकर्षित होता है और यह भी कि अंग्रेजी विज्ञापन के माध्यम से दैनंदिन उपयोग की सामान्य वस्तुओं का सामान्य उपभोक्ता तक पहुँचना संभव नहीं है। यह भी सिद्ध हुआ है कि मात्र अंग्रेजी में प्रसारित होने वाले विज्ञापन उन्हीं वस्तुओं तक सीमित कर दिए गए हैं जिनकी खपत अभी अभिजात्य और धनी वर्ग के उपभोक्ताओं तक ही सीमित है जैसे कार, ऑफ्टरशेव, परफ्यूम और फैशनेबुल कपड़े आदि।

टेलीविजन कार्यक्रमों की प्रकृति भी पिछले कुछ वर्षों में बहुभाषिक बनी है। कई कथा-शृंखलाएँ एकाधिक भारतीय भाषाओं में प्रदर्शित की जा रही हैं। रामायण, महाभारत, जय हनुमान, द स्वोर्ड ऑफ टीपू सुल्तान, जुनून और शक्तिमान जैसी कई शृंखलाएँ हिंदी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में भी दिखाई जाती हैं। यह संभावना अनुवाद के ही एक महत्वपूर्ण स्वरूप 'डबिंग' से खुली है। यह अनुवाद-व्यवस्था का भी बड़ा क्षेत्र है। अनेक ऐसे विदेशी भाषाओं में तैयार किए गए कार्यक्रम भी हिंदी और भारतीय भाषाओं में अनूदित होकर आने लगे हैं जिनका मूल उद्देश्य अपने उत्पादों को प्रसारित करना है जिनमें 'ह्वटेली ब्रांड' और 'एशियन स्काई शॉप', 'एमजन' और 'फ्लिपकार्ट' प्रमुख हैं। अब तो पूर्ण रूप से अंग्रेजी में दक्ष दर्शक के लिए निर्मित 'डिस्कवरी चैनल' भी हिंदी में प्रसारित किया जा रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि इन कार्यक्रमों के निर्माता हिंदी भाषी दर्शक के महत्व को तो पहचान ही रहे हैं, यह भी समझ रहे हैं कि हर प्रकार के उच्चतम ज्ञान-विज्ञान को सरलतम ढंग से हिंदी के माध्यम से भी दर्शकों तक पहुँचाया जा सकता है। इस कार्यक्रम का हिंदी रूपांतरण हिंदी भाषा की शक्ति और सामर्थ्य का एक प्रमाण है। यही हाल 'हिस्ट्री चैनल', 'ऐनिमल प्लेनेट', 'नेशनल जियोग्राफिक' आदि का भी है। अन्य कार्यक्रमों में भी तथा समाचार चैनलों पर भी 'डबिंग' की प्रक्रिया अपनाई जा रही है। 'सब-टाइटलिंग' की प्रक्रिया भी समाचारों में तथा मनोरंजन कार्यक्रमों में,

विशेष रूप से विदेशी फिल्मों के साथ अपनाई जा रही है। यह कार्य बड़े पैमाने पर हो रहा है और निरंतर किया जा रहा है। इस कार्य की स्तरीयता और संप्रेषणीयता की इयत्ता ही उनके लोकप्रिय होने का मापदंड है इसलिए इन्हें भी अधिकतर प्राइवेट कंसल्टेंसीज के माध्यम से ही कराया जाता है। इस प्रकार का अनुवाद कार्य एक बड़े व्यवसाय का रूप धारण कर चुका है।

फिल्में पहले से ही व्यवसाय और जनसंचार का सशक्त माध्यम रही हैं। यह भी माना जाता है कि फिल्मों की हिंदी संपर्क भाषा हिंदी का आदर्श रूप है और फिल्मों ने ही संपर्क भाषा के रूप में अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी को लोकप्रिय बनाने का कार्य किया है। भारत सरकार के फिल्म प्रभाग काफी पहले से न्यूज़रील और वृत्तचित्रों (डॉक्युमेंट्रीज) को विभिन्न भारतीय भाषाओं में तैयार करते थे। यहाँ भी 'डबिंग' का सहारा लिया जाता था। लेकिन आज यह प्रक्रिया विस्तृत हो गई है। अंग्रेजी की लोकप्रिय फिल्में किसी भी भारतीय भाषा में आज देखी जा सकती हैं। जेम्स बॉन्ड की कई फिल्में, जुरासिक पार्क, टाइटेनिक आदि हिंदी और भारतीय भाषाओं में पेश की गईं। आज तो लगभग सभी अंग्रेजी फिल्में हिंदी में भी प्रदर्शित की जाने लगी हैं। अब तो पुरानी अंग्रेजी फिल्मों जैसे बेनहर, टेन कमांडमेंट्स, क्लियोपेट्रा के हिंदी-रूपांतर बाजार में उपलब्ध हैं अथवा 'यू-टयूब' पर भी इन्हें देखा जा सकता है। पहले भारतीय भाषाओं की फिल्में हिंदी में 'पुनर्निर्मित' की जाती थीं, आज ये फिल्में एक साथ दो-तीन भाषाओं में प्रदर्शित कर दी जाती हैं रोजा, बांबे जैसी फिल्में मूलत: तमिल भाषा में बनीं और फिर लोकप्रियता के बाद उन्हें हिंदी और तेलुगु में भी प्रदर्शित किया गया। आज तो भिन्न-भिन्न चैनलों पर दक्षिण भारत की चारों भाषाओं की फिल्में हिंदी में डब कर के निरंतर दिखाई जाने लगी हैं। अन्य भारतीय भाषाओं जैसे बांग्ला, मराठी, ओड़िया, असमी आदि की फिल्में सबटाइटिल के साथ टी. वी. चैनलों पर नियमित रूप से प्रदर्शित की जाने लगी हैं। वैश्वीकरण ने फिल्मों के बाजार को विकसित किया है। फिल्म मेले, फिल्म फैस्टिवल विश्व के विभिन्न स्थलों पर आयोजित किए जाते हैं। जिनमें विश्व की लगभग सभी भाषाओं की फिल्में प्रदर्शित की जाती हैं। इनमें 'सबटाइटलिंग' की प्रक्रिया अपनाई जाती है। इस स्तर पर विश्व की भिन्न भाषाओं के बीच अनुवाद की संभावनाएँ प्रबल हुई है। पिछले कुछ वर्षों में हिंदी फिल्मों का अंतरराष्ट्रीय बाजार भी व्यापक हुआ है। इस बाजार के कारण हिंदी फिल्मों की कहानी, निर्माण तकनीक, संगीत आदि सभी स्तरों पर परिवर्तन आया है। पूरी दुनिया में इनका प्रदर्शन भी 'सबटाइटल' लगाकर ही संभव होता है।

व्यवसाय के रूप में अनुवाद को अन्य कई गतिविधियों ने भी प्रोत्साहित किया है। व्यापार जगत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आने से प्रतिस्पर्धा बढ़ी है। इनके विपणन की रणनीति भी बहुत तेजी से बदली है। यही कारण है कि आज इनके उत्पादों की विज्ञापन सामग्री लंबे समय तक एक ही नहीं रहती हैं। ये उत्पादन कंपनियाँ अपने को स्थापित करने के लिए फैशन शो, सौंदर्य प्रतियोगिता और संगीत के लाइव शो प्रायोजित करती हैं। इनकी प्रचार सामग्री प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के द्वारा अलग-अलग भाषाओं में तैयार की जाती है। ऐसे कार्यक्रमों का संचालन भी अब द्विभाषी होने लगा है। हिंदी को व्यवसाय की प्रमुख भाषा के रूप में मान्यता मिल चुकी है और हिंदी में अनुवाद की ये दिशाएँ पूर्णत: व्यावसायिक बनने की ओर अग्रसर हैं।

एक प्रकार से देखा जाए तो अनुवाद के साथ प्रोफेशनलिज्म अब एक अनिवार्यता बनता जा रहा है। वह दिन दूर नहीं जब अनुवाद संबंधी ये सारी गतिविधियाँ एक ही सूत्र से संचालित होंगी और तब अनुवाद एक स्वतंत्र उद्योग के रूप में भी अपनी पहचान निर्मित करेगा। अनुवाद के साथ संबद्ध व्यावसायिकता सरकारी स्तर पर भी एक भिन्न रूप में स्थित है। यह जरूर है कि सरकारी तंत्र होने के कारण इस अनुवाद कार्य को उस रूप में प्रचारित नहीं किया गया, या कहें कि इनकी मार्केटिंग नहीं की गई कि इन्हें विस्तृत बाजार मिल सकता। शब्दावली आयोग के अनेक द्विभाषी कोश, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के त्रिभाषा कोष, संसदीय कार्य मंत्रालय कि विपुल सामग्री और राजभाषा विभाग के प्रकाशन अनुवाद के आधार पर ही तैयार हुए हैं और इनके निर्माण में विषय-विशेषज्ञों तथा भाषाविदों का योगदान रहा है। इस सामग्री का मूल्य भी सामान्य रखा

गया। आज जरूरत है कि भारत सरकार के इस सराहनीय प्रयत्न को 'वेबसाइट' पर लाया जाए और विभिन्न माध्यमों से इनका प्रचार किया जाए।

अनुवाद की व्यावसायिकता को बढ़ावा देने में तकनीकी विकास भी आज अपना योगदान दे सकता है। शिक्षा, सूचना, ज्ञान और मनोरंजन सभी के लिए कंप्यूटर सॉफ्टवेयर और इंटरनेट काफी उपादेय हो सकते हैं। हिंदी शिक्षण के लिए राजभाषा विभाग और सी-डैक ने कुछ सामग्री तैयार की है। इसी तरह केंद्रीय हिंदी निदेशालय, एन.सी.ई.आर.टी. और इग्नू ने भी दृश्य-श्रव्य माध्यम से हिंदी शिक्षण की सामग्री तैयार की है। इनमें अंग्रेजी भाषा को माध्यम और स्रोतभाषा के रूप में रखा गया है। इन्हें कंप्यूटरसाधित शिक्षण सामग्री में बदलना बहुत कठिन नहीं होगा और इससे इस सामग्री की व्यावसायिकता भी बढ़ेगी। सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र भी अनुवाद के व्यावसायिक स्वरूप को विस्तार देगा। अंग्रेजी, हिंदी और भारतीय भाषाएँ इसमें परस्पर अनुवाद की भाषाओं के रूप में इस्तेमाल हो रही हैं लेकिन अभी भारत में इसकी गति बहुत धीमी है। यह भी पहचाना जा चुका है कि विभिन्न भाषाओं के अनुवाद-सॉफ्टवेयर विकसित किए जाएँ। प्राकृतिक भाषा संसाधन की पीठिका के साथ अंग्रेजी को मूल भाषा और भारत की अन्य भाषाओं को लक्ष्य भाषाओं के रूप में रखकर कुछ परियोजनाएँ भी सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की सहायता से चल रही हैं। इसी का परिणाम है कि आज हमें शब्दानुवाद के लिए हिंदी केंद्रित कई वेबसाइट्स उपलब्ध हैं- शब्दकोश. कॉम, डिकहिन खोज. कॉम, शब्दकोश. रफ्तार. इन आदि। आज हमें पाठ (टेक्स्ट) के अनुवाद के लिए भी 'गूगल' जैसी वेबसाइटें भी आसानी से उपलब्ध हैं, जिसके सहारे दुनिया की किसी भाषा से किसी भी भाषा में तत्काल अनूदित पाठ हमारे सामने आ जाता है। ये अनुवाद पूर्णतया सटीक तो नहीं होते, पर इन्हें संदर्भ एवं भाव के अनुरूप मानव द्वारा सरलता से सटीक बनाया जा सकता है।

भारत जैसे बहुभाषी देश में और आधुनिक युग की विस्तृत होती औद्योगिक और तकनीकी दिशाओं में अनुवाद सदैव केंद्र में रहेगा। चुनाव की प्रचार सामग्री और संसदीय कार्यवाही का भाषिक रूपांतरण, आशु अनुवाद, अनुवाद संपादन, अनुवाद समीक्षा और मूल्यांकन जैसे कई क्षेत्र हमें आज दिखाई दे रहे हैं जिनका अस्तित्व अनुवाद के आधार पर ही टिका हुआ है। लेकिन अभी तक इन्हें एक व्यवसाय की तरह सही दिशा नहीं दी गई है। फिर भी कम व्यवस्थित ढंग से ही सही, ये कार्य संपादित हो रहे हैं।

अनुवाद के इस विस्तृत होते और व्यावसायिक कार्य के रूप में बदलते स्वरूप को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आज अनुवाद किसी एक व्यक्ति (अनुवादक) की रुचि या उसके मूड का विषय नहीं है कि वह जैसी सामग्री का चाहे चयन करे, जिस पद्धति से चाहे अनुवाद करे और अनुवाद संबंधी अर्हताओं को अनदेखा करते हुए कच्चा-पक्का लक्ष्यभाषा पाठ तैयार करे। व्यवसाय के रूप में अनुवाद हमेशा एक कौशल के रूप में ही स्वीकार किया जाएगा। जो अनुवादक जितना ही अधिक कौशलयुक्त होगा, वह उतना ही सफल होगा। यहाँ मूलपाठ की प्रकृति के स्थान पर लक्ष्यपाठ की गुणवत्ता और संप्रेषणीयता अधिक महत्वपूर्ण होगी। किसी भी स्तर पर सीमाओं का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाएगा। लक्ष्यभाषा की प्रकृति के अनुसार ही इसकी कसौटी होगी। भारत जिस तरह एक बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, उसी तरह वह एक भाषायी-क्षेत्र (लिंग्विस्टिक एरिया) भी है और अनुवाद-व्यवसाय अथवा अनुवाद-उद्योग उसे एक अनुवाद-क्षेत्र (ट्रांसलेशन एरिया) के आदर्श रूप में स्थापित करेगा। इसकी अनंत संभावनाओं के संकेत मिलने भी लगे हैं जिसके यथार्थ में रूपांतरित होने में अब ज्यादा देर नहीं हैं।

– लुप्तप्राय भाषा केंद्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, लालपुर, अमरकंटक (मध्यप्रदेश)

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. प्रो. गंगा प्रसाद विमल, 112, साउथ पार्क, कालका जी, नई दिल्ली-110019
2. प्रो. एम. वेंकटेश्वर, फ्लैट न. 310, कंचरेला टॉवर्स, मुशीराबाद, हैदराबाद-500020
3. प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, 56 अशोक नगर, आधारताल, जबलपुर-482004 (म. प्र.)
4. डॉ. अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी, मुख्य प्रबंधक (राजभाषा), राजभाषा विभाग, यूको बैंक, प्रधान कार्यालय, 10, बीटीएम सरणी, कोलकाता-700001
5. प्रो. सी. अन्नपूर्णा, हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, गच्चीबाउली, हैदराबाद-46 (तेलंगाना)
6. डॉ. विदुषी शर्मा, एल-108, ऋषि नगर, रानी बाग, दिल्ली-110034
7. सुश्री शिवानी कोहली, अनुवादक, भारत पर्यटन विकास निगम लिमिटेड, नई दिल्ली-110003
8. डॉ. मदन सैनी, वार्ड नं. 28, कालूबास, श्रीडूंगरगढ़ - 331803 (बीकानेर) राजस्थान
9. डॉ. अरविंद कुमार उपाध्याय, सहायक प्रोफेसर, हिंदी, दयावंती पुंज डिग्री कॉलेज, सीतामढ़ी, भदोही (उत्तर प्रदेश), पिन - 221309
10. डॉ. जी. शांति, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्री अबीरामी इल्लम, 2/179 बी-2, वानप्रस्थ रोड, वडवल्लि, कोयंबतूर - 641041 (तमिलनाडु)
11. डॉ. रमाकांत आपरे, हिंदी विभाग, कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, जालना, महाराष्ट्र
12. डॉ. गिरीशसिंह बालाजीसिंह पटेल, प्रधानाध्यापक, गांधी राष्ट्रीय हिंदी विद्यालय, गाडीपुरा, नांदेड, महाराष्ट्र
13. डॉ. करुणा शर्मा, 132, आम्रपाली अपार्टमेंट, प्लाट नं. 56, आई. पी. एक्सटेंशन, नियर हसनपुर डिपो, दिल्ली-110092
14. डॉ. प्रियंजन, 318, सिविल बाजार, दाड़ी रोड, धर्मशाला, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश
15. डॉ. हरीश कुमार सेठी, असिस्टेंट प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, ब्लॉक 15-सी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068
16. डॉ. राजेश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, सेठ पी. सी. बागला (पी. जी.) कालेज, हाथरस- 204101 (उत्तर प्रदेश)
17. डॉ. संध्या वात्स्यायन, एसोसिएट प्रोफेसर, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
18. डॉ. अर्चना झा, विभागाध्यक्ष - हिंदी विभाग, सेंट एन्स कॉलेज फॉर वुमन, मेंहदीपटनम, हैदराबाद

19. श्री अशोक मनोरम, आर. जेड-31, ब्लॉक-X, न्यू रौशनपुरा, नजफगढ़, रिसाल सिंह मार्ग, नई दिल्ली-110043
20. डॉ. नितीन कुंभार, कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, धारूर जिला-बीड़, महाराष्ट्र
21. प्रो. पूरनचंद टंडन, 'संकल्प', डी-67, शुभम एंक्लेव, पश्चिम विहार, नई दिल्ली
22. डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड, अध्यक्षा, हिंदी विभाग, वसुंधरा कला महाविद्यालय, जुले, सोलापुर, महाराष्ट्र
23. प्रो. दिनेश कुमार चौबे, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग
24. डॉ. पी. लता, प्रोफेसर और अध्यक्षा (पूर्व) हिंदी विभाग, सरकारी महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम्
25. डॉ. अनुराग सिंह चौहान, विभागाध्यक्ष (हिंदी) वेदांता स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, रींगस, सीकर (राज.)
26. डॉ. प्रियंका कुमारी सिंह, हिंदी विभाग, प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता
27. डॉ. दिनेश चंद्र दीक्षित, A-601; मयंक अपार्टमैंट्स, प्लॉट नं. 21, सै. - 06, द्वारका, नई दिल्ली- 110075
28. प्रो. दिलीप सिंह, लुप्तप्राय भाषा केंद्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, लालपुर, अमरकंटक (मध्यप्रदेश)

❑❑❑

निदेशालय के महत्वपूर्ण प्रकाशन

शब्द कोश

क्रम सं.	पुस्तकों के शीर्षक
1.	अभिनव हिंदी कोश
2.	भारतीय भाषा कोश
3.	तत्सम शब्द कोश संशोधित संस्करण
4.	समेकित हिंदी संयुक्त राष्ट्रभाषा कोश
5.	हिंदी पारिभाषिक लघुकोश
6.	बृहत हिंदी-हिंदी कोश दो खंडों में

द्विभाषा कोश

7.	हिंदी गुजराती कोश
8.	हिंदी-सिंधी कोश
9.	हिंदी-उर्दू कोश
10.	हिंदी-तमिल कोश
11.	हिंदी-तेलुगु कोश
12.	हिंदी-असमिया कोश
13.	हिंदी-मलयालम कोश
14.	हिंदी-ओडिया कोश
15.	हिंदी-मराठी कोश (पुराना संस्करण)
16.	हिंदी-कश्मीरी कोश
17.	ओडिया-हिंदी कोश
18.	मलयालम-हिंदी कोश
19.	उर्दू-हिंदी कोश
20.	कश्मीरी-हिंदी कोश
21.	पंजाबी-हिंदी कोश
22.	तमिल-हिंदी कोश
23.	गुजराती-हिंदी कोश
24.	व्यावहारिक हिंदी-अंग्रेजी लघु कोश

त्रिभाषा कोश

25.	हिंदी-गुजराती-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III)
26.	हिंदी-तमिल-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III)
27.	हिंदी-मलयालम-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III)
28.	हिंदी-कश्मीरी-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III)
29.	हिंदी-बंगला-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III)
30.	हिंदी-सिंधी-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III)
31.	गुजराती-हिंदी-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III) (पुराना संस्करण)
32.	हिंदी-मराठी-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III)
33.	हिंदी-कन्नड-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III) (पुराना संस्करण)
34.	तमिल-हिंदी-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II)
35.	मराठी-हिंदी-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II)

भाषा ISSN 0523-1418

36. हिंदी-पंजाबी-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III) (नया संस्करण)
37. हिंदी-असमिया-अंग्रेजी कोश, (खंड I-II-III) (पुराना संस्करण)
38. बंगला-हिंदी-अंग्रेजी कोश
39. हिंदी-बोडो-अंग्रेजी कोश

संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य विदेशी भाषा कोश

40. हिंदी-स्पेनी कोश
41. हिंदी-अरबी कोश
42. हिंदी-चीनी कोश
43. हिंदी-फ्रांसीसी कोश
44. चेक-हिंदी कोश (नया संस्करण)
45. जर्मन-हिंदी कोश (भाग 1-2)
46. जर्मन-हिंदी कोश भाग (3-4)
47. हिंदी फारसी कोश
48. हिंदी-इंडोनेशियाई कोश
49. हिंदी-सिंहल कोश
50. हिंदी-बर्मी कोश
51. हिंदी-नेपाली कोश
52. हिंदी-रूसी कोश
53. रूसी-हिंदी कोश
54. स्पेनी-हिंदी कोश
55. अरबी-हिंदी कोश
56. फ्रांसीसी-हिंदी कोश
57. चीनी-हिंदी कोश
58. हिंदी-स्वाहीली कोश
59. चेक-हिंदी कोश (संशोधित संस्करण)
60. नेपाली-हिंदी कोश
61. इंडोनेशियाई-हिंदी कोश

अन्य उपयोगी पुस्तकें

62. ए बेसिक ग्रामर ऑफ मॉडर्न हिंदी
63. सूर-शतक (हिंदी-मराठी)
64. सूर-शतक (हिंदी-तमिल)
65. सूर-शतक (हिंदी-मलयालम)
66. सूर-शतक (हिंदी-कन्नड)
67. भारतीय निबंध
68. भारतीय एकांकी
69. भारतीय उपन्यास
70. भारतीय नाटक एवं रंगमंच
71. भारतीय कविता (1961-1990)
72. भारतीय कहानी
73. भारतीय कविता
74. भारतीय उपन्यास (1991-2000)
75. भारतीय एकांकी
76. भारतीय भाषा परिचय
77. भारतीय कवयित्रियाँ (भाग-1)
78. हिंदी लेखक संदर्भिका
79. भारतीय कविता में राष्ट्रीय चेतना
80. इंदिरा जी का हिंदी प्रेम
81. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य
82. नागरीदास ग्रंथावली
83. हिंदी पाठमाला (खंड 1 व 2)
84. देवनागरी लिपि अभ्यास पुस्तिका
85. देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण

हिंदीतरभाषी विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें

वार्तालाप पुस्तिका

86. हिंदी-अंग्रेजी वार्तालाप पुस्तिका
87. हिंदी-कश्मीरी वार्तालाप पुस्तिका
88. असमिया-हिंदी वार्तालाप पुस्तिका

89. हिंदी-तेलुगु वार्तालाप पुस्तिका
90. हिंदी-तमिल वार्तालाप पुस्तिका
91. मलयालम-हिंदी वार्तालाप पुस्तिका
92. हिंदी-चेक वार्तालाप पुस्तिका
93. हिंदी-रूसी वार्तालाप पुस्तिका (पुराना संस्करण)
94. अंग्रेजी-हिंदी वार्तालाप पुस्तिका
95. तमिल-हिंदी वार्तालाप पुस्तिका
96. हिंदी-बंगला वार्तालाप पुस्तिका
97. बंगला-हिंदी वार्तालाप पुस्तिका
98. हिंदी-मलयालम वार्तालाप पुस्तिका
99. हंगेरियन-हिंदी वार्तालाप पुस्तिका
100. हिंदी-सिंहल वार्तालाप पुस्तिका
101. हिंदी-कोरियाई वार्तालाप पुस्तिका
102. हिंदी-अरबी वार्तालाप पुस्तिका
103. हिंदी-फारसी वार्तालाप पुस्तिका
104. हिंदी-पोलस्की वार्तालाप पुस्तिका
105. हिंदी-रूमानियाई वार्तालाप पुस्तिका
106. हिंदी-बल्गारियाई वार्तालाप पुस्तिका
107. हिंदी-नेपाली वार्तालाप पुस्तिका
108. हिंदी-बोडो वार्तालाप पुस्तिका
109. हिंदी-संस्कृत वार्तालाप पुस्तिका
110. हिंदी-सिंधी वार्तालाप पुस्तिका
111. हिंदी-असमिया वार्तालाप पुस्तिका

स्वयं शिक्षक पुस्तक

112. हिंदी-मलयालम स्वयं शिक्षक
113. हिंदी-तेलुगु स्वयं शिक्षक
114. हिंदी-ओडिया स्वयं शिक्षक
115. हिंदी-तमिल स्वयं शिक्षक
116. मलयालम-हिंदी स्वयं शिक्षक
117. हिंदी-कन्नड स्वयं शिक्षक
118. बंगला-हिंदी स्वयं शिक्षक
119. कन्नड-हिंदी स्वयं शिक्षक

दृश्य श्रव्य सामग्री वार्तालाप पुस्तकों से सी.डी. निर्माण

120. कोंकणी-हिंदी-कोंकणी
121. मैथिली-हिंदी-मैथिली
122. मराठी-हिंदी-मराठी
123. गुजराती-हिंदी-गुजराती
124. पंजाबी-हिंदी-पंजाबी
125. मलयालम-हिंदी-मलयालम
126. ओडिया-हिंदी-ओडिया
127. कन्नड-हिंदी-कन्नड
128. अंग्रेजी-हिंदी-अंग्रेजी
129. बंगला-हिंदी-बंगला
130. हिंदी-तेलुगु-हिंदी
131. मिज़ो-हिंदी-मिज़ो
132. हिंदी-कश्मीरी-हिंदी
133. संथाली-हिंदी-संथाली

विविध विषयों पर आधारित सी.डी.

134. वेलकम टू इंडिया-हिंदी में 'आप', 'तुम' और 'तू' का प्रयोग

135. कर्ता और क्रिया का मेल बीच-बीच में 'ने' का खेल-हिंदी में 'तो', 'भी', और 'ही' का प्रयोग
136. वाक्य में 'को' का प्रयोग-हिंदी में मुहावरों का प्रयोग
137. हिंदी में लिंग का आधार, थोड़ा व्याकरण, थोड़ा व्यवहार
138. मुख्य क्रिया के साथ रंजक क्रिया, मिलकर बनाए संयुक्त क्रिया कर्ता-क्रिया की अन्विति
139. कर्ता-क्रिया की अन्विति-मानक हिंदी वर्तनी
140. लर्न हिंदी
141. संज्ञाओं और विशेषणों के बहुवचन रूप
142. आज्ञार्थक वाक्य संरचना
143. हिंदी में कृदंत
144. हिंदी में काल
145. हिंदी में कारक चिह्न
146. हिंदी का अखिल भारतीय स्वरूप (भाग-1)
147. हिंदी का अखिल भारतीय स्वरूप (भाग-2)
148. लोकगीत
149. हिंदी में समास
150. हिंदी में अलंकार
151. प्रयोजनमूलक हिंदी (भाग-1)
152. प्रयोजनमूलक हिंदी (भाग-2)
153. उपसर्ग और प्रत्यय का तुलनात्मक अध्ययन
154. हिंदी की विकास यात्रा (भाग-1)
155. हिंदी की विकास यात्रा (भाग-2)
156. संज्ञा
157. सर्वनाम
158. विशेषण
159. भक्ति साहित्य की धारा (भाग-1)
160. भक्ति साहित्य की धारा (भाग-2)
161. कहावतें/लोकोक्तियाँ (भाग-1)
162. कहावतें/लोकोक्तियाँ (भाग-2)
163. क्रिया विशेषण
164. शब्द-विचार (भाग-1)
165. शब्द-विचार (भाग-2)
166. हिंदी साहित्य के सांस्कृतिक स्रोत (भाग-1)
167. हिंदी साहित्य के सांस्कृतिक स्रोत (भाग-2)
168. अनुवाद है आगर ज्ञान का सागर (भाग-1)
169. अनुवाद है आगर ज्ञान का सागर (भाग-2)
170. हिंदी में गद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (भाग-1)
171. हिंदी में गद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (भाग-2)
172. हिंदी में गद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (भाग-3)
173. क्रिया (भाग-1)
174. क्रिया (भाग-2)
175. क्रिया (भाग-3)
176. वर्ण-विचार (भाग-1)
177. वर्ण-विचार (भाग-2)
178. वर्ण-विचार (भाग-3)
179. कर्ता और क्रिया का मेल, बीच-बीच में 'ने' का खेल-हिंदी में लिंग का आधार, बंगला माध्यम में।

180. कर्ता और क्रिया का मेल, बीच-बीच में 'ने' का खेल-हिंदी में लिंग का आधार, तमिल माध्यम में।

181. कर्ता और क्रिया का मेल, बीच-बीच में 'ने' का खेल-हिंदी में लिंग का आधार, मलयालम माध्यम से

182. शब्द कोश एक परिचय (भाग-1)

183. शब्द कोश एक परिचय (भाग-2)

184. शब्द कोश एक परिचय (भाग-3)

185. संधि (भाग-1)

186. संधि (भाग-2)

187. संधि (भाग-3)

188. हिंदी के बढ़ते कदम (भाग-1)

189. हिंदी के बढ़ते कदम (भाग-2)

190. हिंदी के बढ़ते कदम (भाग-3)

191. पारिभाषिक शब्दावली की विकास यात्रा (भाग-1)

192. पारिभाषिक शब्दावली की विकास यात्रा (भाग-2)

193. पारिभाषिक शब्दावली की विकास यात्रा (भाग-3)

194. वाक्य-विचार (भाग-1)

195. वाक्य-विचार (भाग-2)

196. वाक्य-विचार (भाग-3)

197. केंद्रीय हिंदी निदेशालय : एक परिचय

198. आधुनिक हिंदी पद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ भारतेंदु एवं द्विवेदी युग

199. आधुनिक हिंदी पद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ: छायावादी काव्य

200. आधुनिक हिंदी पद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ: प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद

201. राजभाषा हिंदी-सांविधानिक व्यवस्था

202. राजभाषा हिंदी-नीति कार्यान्वयन

203. राजभाषा हिंदी-संस्थागत प्रयत्न

204. इंग्लिश कमेंट्री (भाग 1-2)

205. मलयालम कमेंट्री (भाग 1-2)

206. ओडिया कमेंट्री (भाग 1-2)

207. तेलुगु कमेंट्री (भाग 1-2)

208. कन्नड कमेंट्री (भाग 1-2)

209. बंगला कमेंट्री (भाग 1-2)

210. कोंकणी कमेंट्री (भाग 1-2)

211. तमिल कमेंट्री (भाग 1-2)

212. वेलकम टू इंडिया-लर्न हिंदी

213. बातें करें शुरू 'आप', 'तुम' और 'तू'

214. कर्ता और क्रिया का मेल, बीच-बीच में 'ने' का खेल

215. वाक्य में 'को' का प्रयोग प्रकट करे विविध प्रयोग

216. हिंदी में लिंग का आधार, थोड़ा व्याकरण थोड़ा व्यवहार

217. हिंदी में 'तो', 'भी' और 'ही' प्रयोग कीजिए सही-सही

218. मुख्य क्रिया के साथ रंजक क्रिया, मिलकर बनाए संयुक्त क्रिया

219. कर्ता, क्रिया की अन्विति, अन्विति से बनता शुद्ध वाक्य अन्यथा बन जाता अशुद्ध वाक्य

220. मानक हिंदी वर्तनी-यदि हो सही वर्तनी का ज्ञान, हिंदी सीखना बेहद आसान

221. हिंदी में मुहावरों का सही प्रयोग

❑❑❑

'भाषा' पत्रिका के महत्वपूर्ण विशेषांक

1. शांति रक्षा अंक (1964)
2. द्विवेदी स्मृति अंक (1964)
3. लिपि विशेषांक (1968)
4. हिंदी भाषाविज्ञान अंक (1973)
5. विश्व हिंदी सम्मेलन अंक (1975)
6. बाल विशेषांक (1979)
7. प्रेमचंद विशेषांक (1981)
8. रजत जयंती विशेषांक (1985)
9. संत कबीर विशेषांक (1998)
10. संपर्क भाषा हिंदी के पचास वर्ष (2000)
11. डॉ. नगेंद्र स्मृति अंक (2001)
12. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान विशेषांक (2001)
13. सूचना प्रौद्योगिकी एवं भारतीय भाषाएँ विशेषांक (2002)
14. विदेशों में हिंदी साहित्य विशेषांक (2003)
15. उत्तर-पूर्वी साहित्य विशेषांक (नवंबर-दिसंबर, 2004)
16. भारतीय लोक साहित्य विशेषांक (2005)
17. भारतीय यायावर साहित्य विशेषांक (2006)
18. अज्ञेय विशेषांक (2011)
19. उपेंद्रनाथ अश्क और फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ पर विशेष सामग्री (2011)
20. बाल साहित्य विशेषांक मई-जून 2007
21. रामविलास शर्मा विशेषांक (2013)
22. विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक (2015)
23. अभिनवगुप्त और भारतीय साहित्य विशेषांक (2016)
24. डॉ. अंबेडकर विशेषांक (2017)
25. भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना विशेषांक (2017)
26. डॉ. दीनदयाल उपाध्याय विशेषांक (2017)
27. प्रवासी साहित्य विशेषांक (2018)
28. भारतीय आत्मकथा साहित्य विशेषांक (2018)
29. विश्व हिंदी समेलन, मॉरीशस केंद्रित विशेषांक (2018)
30. गांधी : समग्र विचार दर्शन विशेषांक (2018)

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम - 110066

ई-मेल chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. - 011 - 26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया

कृपया मुझे **भाषा** (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए / दस वर्ष के लिए / बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें । मैं पत्रिका का वार्षिक / पंचवर्षीय / दस वर्षीय / बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/ रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएं ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

मोबाईल/दूरभाष : .....

ई-मेल : .....

संबद्धता / व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर : .....

पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	**शुल्क डाक खर्च सहित**
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट **निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए** । कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखे ।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट: कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें ।

चीन में हिंदी के प्रचार–प्रसार को लेकर अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

चीन में हिंदी के प्रचार–प्रसार को लेकर शनिवार को शंघाई में अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस दौरान चीन में हिंदी शिक्षण, अनुवाद और संचार माध्यमों में हिंदी के विकास, संभावनाओं और चुनौतियों पर विचार–विमर्श किया गया। इसमें हिंदी के क्षेत्र में काम करने वाले विशेषज्ञों और प्रतिनिधियों सहित कई प्रतिभागियों ने शिरकत की।

उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता भारतीय कौंसिल जनरल अनिल कुमार राय ने की। उन्होंने कहा कि पिछले एक दशक में हिंदी शिक्षण का दायरा बढ़ रहा है। इसके साथ ही चीन में भी भारतीय भाषाओं का विस्तार हो रहा है। इस तरह की कोशिशें जारी रहें तो एक–दूसरे को समझने में आसानी होगी। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष व केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक प्रो. अवनीश कुमार ने कहा कि व्यावहारिक रूप से हिंदी भारत की संपर्क भाषा बन चुकी है। भारत के साथ संपर्क रखने वाली विदेशी सरकारें भी हिंदी की आवश्यकता महसूस करने लगी हैं। राष्ट्रपति भवन के विशेष कार्याधिकारी डॉ. राकेश दुबे ने जोर देकर हिंदी और प्राचीन भारतीय भाषा और संस्कृति के महत्व को समझाया।

कार्यक्रम के संचालक प्रो. नवीन चंद्र लोहनी ने कहा कि इस संगोष्ठी के माध्यम से भारत और चीन को जोड़ने की कोशिश की गई है। इसमें सभी प्रतिभागियों ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया, यह अपने तरह की पहली संगोष्ठी है, जिसमें मीडिया, प्राथमिक शिक्षा, विश्वविद्यालय शिक्षा, अनुवाद, तकनीक, राजभाषा हिंदी के प्रयोग सहित तमाम अहम् मुद्दों पर विचार–विमर्श किया गया।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-3-2019
700

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित